वर्ष 44, अंक 5, सितंबर-अक्टूबर 2021

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

आज़ादी का अमृत महोत्सव

राजभाषा कीर्ति पुरस्कार 2020-2021

जयंती स्मरण

रामधारी सिंह 'दिनकर'

23 सितम्बर 1908

रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद

रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद,
आदमी भी क्या अनोखा जीव होता है!
उलझनें अपनी बनाकर आप ही फँसता,
और फिर बेचैन हो जगता, न सोता है।

जानता है तू कि मैं कितना पुराना हूँ?
मैं चुका हूँ देख मनु को जनमते-मरते;
और लाखों बार तुझ-से पागलों को भी
चाँदनी में बैठ स्वप्नों पर सही करते।

आदमी का स्वप्न? है वह बुलबुला जल का;
आज उठता और कल फिर फूट जाता है;
किन्तु, फिर भी धन्य; ठहरा आदमी ही तो?
बुलबुलों से खेलता, कविता बनाता है।

मैं न बोला, किन्तु, मेरी रागिनी बोली,
देख फिर से, चाँद! मुझको जानता है तू?
स्वप्न मेरे बुलबुले हैं? है यही पानी?
आग को भी क्या नहीं पहचानता है तू?

मैं न वह जो स्वप्न पर केवल सही करते,
आग में उसको गला लोहा बनाती हूँ,
और उस पर नींव रखती हूँ नये घर की,
इस तरह दीवार फौलादी उठाती हूँ।

मनु नहीं, मनु-पुत्र है यह सामने, जिसकी
कल्पना की जीभ में भी धार होती है,
वाण ही होते विचारों के नहीं केवल,
स्वप्न के भी हाथ में तलवार होती है।

स्वर्ग के सम्राट को जाकर खबर कर दे,
"रोज ही आकाश चढ़ते जा रहे हैं वे,
रोकिये, जैसे बने इन स्वप्नवालों को,
स्वर्ग की ही ओर बढ़ते आ रहे हैं वे।"

-रामधारी सिंह 'दिनकर'

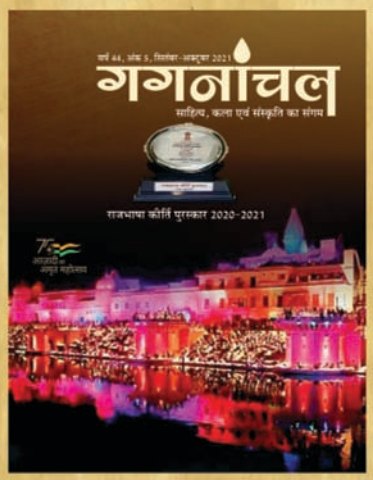

प्रकाशक

दिनेश कुमार पटनायक

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,

नई दिल्ली-110002

ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध
http://www.iccr.gov.in/Publication/Gagananchal
पर क्लिक करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	₹ 500
		यू.एस $ 100
त्रैवार्षिक	:	₹ 1200
		यू.एस. $ 250

उपर्युक्त सदस्यता शुल्क का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रण : स्पेस 4 बिजनेस सोल्यूशन्स प्रा. लि. दिल्ली

ISSN : 0971-1430

वर्ष 44, अंक 5, सितंबर-अक्टूबर 2021

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

इस अंक के आकर्षण

गोदान में परंपरा और आधुनिकता

साहित्य की ज़मीं पर सिनेमा का आकाश

राष्ट्रवाद की अवधारणा और 'भारत-भारती'

दिनकर की उर्वशी और विवाद संवाद की संस्कृति

रामचंद्र शुक्ल का आलोचना कर्म और भारतीयता

समकालीन हिंदी कहानी: भाषा का बदलता स्वरूप

गाँधी संस्कृति, विश्वबंधुत्व एवं भारत का भविष्य

भारतीय ज्ञान परंपरा और बनारस का सांस्कृतिक महत्त्व

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

अनुक्रम

गगनांचल
वर्ष 44, अंक 5, सितम्बर-अक्टूबर 2021

प्रकाशकीय

3 **लोक संस्कृति भारतीय परंपराओं की संवाहक**
दिनेश कुमार पटनायक

संपादकीय

4 **साहित्य: राष्ट्र के सामाजिक भावों की अभिव्यक्ति**
डॉ. आशीष कंधवे

साहित्य-चिंतन

7 **दिनकर की उर्वशी और विवाद संवाद की संस्कृति**
प्रो. कुमुद शर्मा

कथा-सागर

12 **माँ**
आदित्य अभिनव

17 **रामचंद्र शुक्ल का आलोचना कर्म और भारतीयता**
कृष्ण बिहारी पाठक

संस्कृति-संवाद

23 **राष्ट्रवाद की अवधारणा और 'भारत-भारती'**
प्रो. निरंजन कुमार

कथा-सागर

28 **तारा**
पारमिता शतपथी

34 **समकालीन हिंदी कहानी: भाषा का बदलता स्वरूप**
डॉ. शैलजा

सिनेमा-संसार

39 **साहित्य की ज़मीं पर सिनेमा का आकाश**
डॉ. पुनीत बिसारिया

गाँधी जयंती विशेष

47 **गाँधी संस्कृति, विश्वबंधुत्व एवं भारत का भविष्य**
डॉ. कन्हैया त्रिपाठी

शोध संसार

51 **गोदान में परंपरा और आधुनिकता**
डॉ. सुनीता रानी घोष

55 **मीनाक्षी स्वामी के कथा साहित्य में स्त्री सशक्तिकरण**
डॉ. मृगेन्द्र राय

60 **नई शिक्षा नीति और पर्यावरण**
प्रदीप कुमार ठाकुर

63 **'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ उपन्यास' में आदिवासी जीवन की चुनौतियाँ**
डॉ. कमलेश कुमारी

68 **औपनिवेशिक युग में प्रयागराज के पत्र-पत्रिकाओं की विकास यात्रा**
पूजा

लोक-संस्कृति

74 **भारतीय ज्ञान परंपरा और बनारस का सांस्कृतिक महत्त्व**
दिनेश अहिरवार

व्यक्ति-विशेष

77 **शंकरदेव का 'कीर्तन घोषा'**
डॉ अनुशब्द

पुस्तक-समीक्षा

82 डॉ. राकेश शुक्ल

लघुकथा-कलश

84 धनेश द्विवेदी
85 अनुपमा अरोड़ा

काव्य-मधुवन

86 शिवानंद सिंह सहयोगी
87 संतोष खन्ना
88 रंजीता
89 प्रिया राणा
90 जावेद आलम खान
91 दिलीप कुमार

92 **गतिविधियाँ : आई.सी.सी.आर.**

प्रकाशकीय

दिनेश कुमार पटनायक
महानिदेशक

लोक संस्कृति भारतीय परंपराओं की संवाहक

जैसा कि हम सब जानते हैं साहित्य समाज का दर्पण होता है, परंतु हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सभी समाज के भीतर अपनी एक संस्कृति निहित होती है। यही कारण है कि जब हम समाज का चित्रण करते हैं तो उसके साहित्य का चित्रण होता है और जब हम साहित्यिक प्रवृत्तियों का चित्रण करते हैं तो समाज का चित्रण स्वत: ही हो जाता है। मानव मन की आंतरिक एवं बाह्य प्रवृत्तियाँ लोक परंपराओं एवं लोक साहित्यों के माध्यम से सर्वसाधारण में जीवित रहती हैं। लोक संस्कृति भारतीय परंपराओं की संवाहक बनकर रोजमर्रा के जीवन से हमें परिचित कराती है। यही विशेषता भारतीय संस्कृति और साहित्य को जागृत रखने में मुख्य भूमिका निभाती है। भारतीय परंपराओं में तो जीवन-मरण, सुख-दुख, हर्ष-विषाद, लाभ-हानि आदि सभी महत्त्वपूर्ण सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भाषाई पृष्ठभूमि को संरक्षित रखती है। यही वो वैशिष्टय है जो प्रवृत्तियों के रूप में प्रतीक का काम करती है तथा समाज को परिष्कृत, परिमार्जित एवं परिभाषित करती है। नित्य प्रति व्यवहार में आने वाली कहावतें, लोकोक्तियाँ, गीत, कथा आदि अपने प्रभावशाली उपस्थिति के कारण भारतीयता के उन सभी पक्षों को व्यवहार में लाती है, जो हमें वैश्विक स्तर पर विशिष्ट बना देता है। लोक की भाषा हमेशा जन की भाषा होती है इसलिए लोकजीवन में प्रयुक्त होने वाली भाषा चरित्रों, भावों और प्रभावों तक ही सीमित न रहकर एक ऐसे वातावरण का निर्माण करती है जो सामाजिक समरसता के लिए उत्तरदायी है।

संस्कृति का मूल आधार करुणा और मानवीय प्रेम होता है। प्राणियों के प्रति सहज निश्छल अनुराग, श्रेष्ठ जनों के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास, जड़ चेतन एवं प्रकृति से प्राकृतिक व्यवस्था के अनुरूप व्यवहार ही संस्कृति के विस्तार और बचाव का मूल कारण है। संसार में दुख है, संसार में घृणा है, संसार में अलगाव है, संसार में वितृष्णा है, लेकिन इसी संसार में सुख भी है, प्रेम भी है, अपनापन और समर्पण भी। सामाजिक और आंतरिक कोलाहलों से ऊपर उठकर जब किसी राष्ट्र में रहने वाले लोग अपनी चेतना का विस्तार करते हैं, भोग को त्याग कर योग के प्रति आकर्षित होते हैं, कर्मयोगी बनते हैं, तो एक ऐसी गतिशीलता आती है जिससे समाज में सकारात्मक ऊर्जा का प्रभाव बढ़ता है।

वस्तुत: संस्कृति ही हमारी समृद्धि को परिभाषित करती है इसलिए यह जरूरी है कि सांस्कृतिक समृद्धि को परिभाषित करने के लिए एक समृद्ध भाषा हो। ऐसी ही परिकल्पना को मूर्त रूप देने के लिए वर्तमान सरकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति को देश में लेकर आयी है। इस शिक्षा नीति के माध्यम से हमें अपनी राष्ट्रभाषा अथवा मातृभाषा अथवा राजभाषा में शिक्षा ग्रहण करने की सुविधा प्राप्त होगी जिससे न सिर्फ हमारे भाषाई संस्कार बचेंगे बल्कि नई पीढ़ी अपनी सांस्कृतिक चेतना से भी परिचित हो पाएगी।

गगनांचल के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद वैश्विक स्तर पर अपनी भाषा, संस्कृति और कला से विश्व को परिचित कराती है तथा अन्य देशों के साथ सांस्कृतिक संबंधों की स्थापना करती है।

शुभकामनाएँ।

दिनेश कुमार पटनायक

संपादकीय

डॉ. आशीष कंधवे
संपादक

साहित्य : राष्ट्र के सामाजिक भावों की अभिव्यक्ति

नवजागरण काल में साहित्य के प्रति उभरे नवीन दृष्टिकोण ने यह आवश्यक कर दिया था कि अतीत के गौरव के रूप में साहित्य की उन्नत परम्परा की पुन: प्रतिष्ठा की जाए। बालकृष्ण भट्ट ने 'साहित्य को जनसमूह के हृदय का विकास' कहते हुए, इसे जनता के भावों की अभिव्यक्ति बताया। उनका मानना था कि जैसे कोई भी मनुष्य अपनी परिस्थिति के अनुसार 'शोक-संकुल' क्रोध से उद्दीप्त या चिन्तामग्न रहता है, तो हाव-भाव भी मलिन या उदासीनता को प्रकट करने वाले होते हैं। जब वह सुख या आनन्द में डूबा रहता है, तब उसकी हँसी, चुस्ती, नृत्य आदि भंगिमाएँ उसके भावों को प्रकट करती हैं। साहित्य को भावों की अभिव्यक्ति करने वाला सामाजिक क्रम मानने की दृष्टि से बालकृष्ण भट्ट कहते हैं कि किसी मनुष्य की परिस्थितिजन्य भावाभिव्यक्ति की तरह ही साहित्य समाज के भावों को प्रकट करता है। उनके शब्दों में- मनुष्य के संबंध में इस अनुल्लंघनीय प्राकृतिक नियम का अनुसरण प्रत्येक देश का साहित्य भी करता है, जिसमें कभी को क्रोधपूर्ण अयंगरगर्जन, कभी प्रेम का उच्छवास, कभी शोक और परितापजनित हृदयविदारी करुणा निस्वन, कभी वीरता, गर्व..... आदि अनेक प्रकार के भावों का उद्‌गार देखा जाता है। साहित्य के द्वारा देश के समाज भावों की अभिव्यक्ति करना, उसे इतिहास से बेहतर उपादान बना देती है। क्योंकि साहित्य में समाज के मन को उद्दीप्त करने वाली सामाजिक घटनाओं का जिक्र तो होता ही है, उससे अधिक वह समाज के भावों को प्रकट करने में भी सक्षम होता है। जहाँ तक इतिहास की बात है, वह केवल बाहरी घटनाओं तक ही सीमित रहता है। इतिहास समाज के चित्त की झाँकी नहीं दिखा पाता है। इसी दृष्टि से साहित्य और इतिहास के अंतर को स्पष्ट करते हुए बालकृष्ण भट्ट कहते हैं-"इसीलिए साहित्य को यदि जनसमूह के चित्त का चित्रपट कहा जाए तो संगत है। किसी देश का इतिहास पढ़ने से हम उस देश का केवल बाहरी हाल जान सकते हैं, पर साहित्य के अनुशीलन से कौम में समय-समय के आभ्यांतरिक भाव हममें प्रस्फुटित हो सकते हैं।" बालकृष्ण भट्ट मानते हैं कि किसी भी देश के मनुष्यों के हृदय को जानने का श्रेष्ठ माध्यम उसका साहित्य है। किसी समय के, किसी समाज के भावों को जानना हो, तो उस काल के साहित्य की 'समालोचना' से यह संभव है।

सुप्रसिद्ध विचारक, समाजकर्मी और भाषा वैज्ञानिक नॉम चाम्सकी के शिष्य जॉन लायन्स का कहना है कि 'साहित्य का सम्पूर्ण स्थापत्य यदि एक साहित्यिक-समालोचक की पसन्द बनता है, तो इसका कारण है कि उसे साहित्य की शैली या शिल्प....और कविता में तो भाषा इस प्रकार बँट जाती है कि वह वाक्य के तमाम सीमान्तरों को तोड़कर एक प्रकार से ध्यानमग्न समाधि में चली जाती है'। इस ध्यानमग्न समाधि की गहनतम भाषा को यदि पाठक मूल पाठ में पहचानने या समझने या उसका आनन्द लेने में कठिनाई महसूस करता है, तो आलोचना उस गम्भीरता का अन्वेषण कर उसके पाठ का विवेचन करती है, व्याख्या करती है। अनेक उत्तर-आधुनिक आलोचक तो इस प्रकार के विवेचन या व्याख्या से भी असहमत हैं क्योंकि वे मानते हैं कि पाठ की व्याख्या हो नहीं सकती।

सृजन चाहे जायसी, तुलसी, सूर, कबीर का हो, या निराला, अज्ञेय से लेकर हिन्दी के किसी युवतम कवि का, कथाकार या उपन्यासकार प्रेमचन्द या जैनेन्द्र का हो, या ऐतिहासिक से लेकर आज के नवीन प्रयोगशील कथाकारों तक का, वह अपनी भाषा, अपने शिल्प, अपने विचार और अपनी अनुभूति की गहनता में कभी सरल नहीं होता। पाठक उसकी जटिलता में ही आनन्द लेता है और उस जटिलता को अपने आनन्द या सौन्दर्यबोध के अनुरूप बना लेने से सन्तुष्ट होता है। भाषा-विज्ञान पढ़ने वाले, भाषा-विज्ञान की ही भाषा से

कितने उलझते हैं, विज्ञान पढ़ने वाले विज्ञान की भाषा से टकराते रहते हैं, दर्शन पढ़ने वाले तो दर्शन की भाषा में डूब-डूब जाते हैं, फिर ऐसा क्या है कि साहित्य की भाषा से साहित्य का पाठक उलझना, टकराना या उसमें डूबना नहीं चाहता ? सोचना यह है कि समय एक सर्जक के लिए है क्या ? सर्जक जब भी कुछ रचता है, क्या वह समय-सापेक्ष होता है ?समय एक प्रकार से हमारे समूचे जीवन का गणित-शास्त्र-सा बन गया है। यदि हमारा समूचा जीवन-क्रम समय-क्रम में निहित है, या उससे संचालित है, तो साहित्य समयगत या समय में क्यों नहीं हो सकता ? समय की एक अवधारणा काल-सम्बद्ध भी है जिसे पीरियड कहा जाता है। ऐसे समय रचना में ऐतिहासिक-समय बनकर घटित होता है यदि रचना किसी समय विशेष का प्रयोग करती है, फिर चाहे वह अतीत का समय हो, या वर्तमान का, तो वह कालान्तर में एक ऐतिहासिक-समय की रचना मान ली जाती है और जो रचना अपने वर्तमान में बनती है, वह सामयिक या समकालीन कहलाने लगती है।

जब नामवर सिंह यह कहते हैं कि 'आलोचना अपनी कोख से ही, आलोचनात्मक रही है,' तो यह एक सरल और स्पष्ट वाक्य तो नहीं है। जब तक इस सूत्र-वाक्य के अन्तर्निहित आशयों का उद्घाटन करने की जिज्ञासा एक साहित्यिक पाठक में नहीं होती, वह इस वाक्य को जटिल, अस्पष्ट और भ्रमपूर्ण कहकर निरस्त कर सकता है। यदि स्व. रामस्वरूप चतुर्वेदी 'कामायनी का पुनर्मूल्यांकन' अपनी आलोचना के जरिये करते हैं, तो इसका तात्पर्य यह नहीं कि कामायनी की जटिलता को वे सरल कर रहे हैं बल्कि वे कामायनी की गहनता का अन्वेषण कर रहे हैं। कापरा ने अपनी पुस्तक 'टर्निंग पाइण्ट' में सही कहा था कि हम एक ऐसी सदी में प्रवेश कर रहे हैं जहाँ ज्ञानबोध का संकट एक प्रकार से यूटोपिया और डायसपोरिया के बीच टकराहट के रूप में नजर आएगा। हिन्दी के साथ भी शायद यही संकट है, क्योंकि हिन्दी पाठक एक प्रकार से ऐसी साहित्यिक सरलता के यूटोपिया में जी रहा है कि वह विचार और दर्शन, ज्ञान और साहित्य की गहन चुनौतियों से टकराना नहीं चाहता। यदि सरलता के नाम पर हम चलताऊ बाजारू साहित्य की माँग करते रहे हैं, तो जैसा नीत्शे से किसी ने पूछा था कि 'ईश्वर कहाँ चला गया है ?' तो उसने जवाब दिया था कि उसकी हमने हत्या कर दी है। उसी तरह जब हम यह पूछेंगे कि 'वेद, पुराण, रामायण, महाभारत के देश का साहित्य कहाँ चला गया है ?' तो कहीं हमें यह न कहना पड़े कि उसकी हमने हत्या कर दी है। हत्या हुई हो या नहीं, मगर अब वी.एस.नायपाल जैसे नोबेल सर्जक भी साहित्य की मौत घोषित कर रहे हैं।

हमें इस बात को याद रखना होगा कि धर्म और दर्शन की अधोगति के इस युग में साहित्य और साहित्यलोचन पर एक अतिरिक्त जिम्मेदारी अनिवार्यत: आ पड़ी है, साहित्य में पुनर्रचित जीवन के स्पन्दों को मानवता के अन्त:प्रमाण को युगीन विचार-प्रवाह के भरे-पूरे परिप्रेक्ष्य में देखने-परखने की। आलोचक हैरल्ड ब्लूम का तो स्पष्ट ही अभिमत है कि 'चूँकि आज के हमारे सांस्कृतिक दृश्य में दार्शनिक मनीषा लगभग गायब हो गयी है, अत: साहित्यालोचक अपने स्वधर्म से ही अन्तर्विवश है उस रिक्त स्थान की पूर्ति करने और समाज को शिक्षित करने का वह सांस्कृतिक कर्म अपने हाथ में लेने को, जिसे कभी दार्शनिक लोग निभाया करते थे।'

साहित्य जीवन की पुनर्रचना है तो आलोचना साहित्य की पुनर्रचना है! साहित्य के इतिहास को तब जीवन, साहित्य और आलोचना की गति तथा उनके आपसी रिश्तों को समझना तथा व्याख्यायित करना है! रचना से पुनर्रचना के इन स्वचेतन होते क्रमिक चरणों में वैचारिकता का संपर्क बढ़ता जाये तो यह स्वाभाविक है! इस स्थिति में कह सकते हैं कि साहित्य का इतिहास अनुभव और विचार की अंतर-क्रिया की पुनर्रचना है! और उसके लिए सबसे बड़ी समस्या और चुनौती यह है कि हम स्वयं इतिहास की प्रक्रिया में अंगीकृत हों! 'इतिहास और आलोचक-दृष्टि' में हिंदी साहित्य के इतिहास का एक नये स्तर पर अनुभावन और विवेचन संभव हुआ है। पूरे अध्ययन में दो प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती हैं! एक ओर तो ख्यात आलोचकों के वैशिष्ट्य का रूप उभरता है, और दूसरी ओर उनके द्वारा विवेचित अलग-अलग इतिहास-युगों का चित्र स्पष्टतर होता चलता है। इतिहास और आलोचना का हिंदी साहित्य के सन्दर्भ में ऐसा संपृक्त और द्वंद्वात्मक रूप अब देखने को मिलता है। कविता-यात्रा और गद्य की सत्ता के विविध रूपों के विवेचन और भाषिक सर्जनात्मक अन्वेषण के बाद अगले चरण में इतिहास- आलोचना की विशिष्ट प्रक्रिया विकास-क्रम में उसकी प्रामाणिकता को प्रशस्त करेगी।

आइये हिंदी इतिहास के कुछ ऐतेहासिक संदर्भों को जानते है-

यह वह समय था जब अंगरेजी, उर्दू और फारसी का बोलबाला था तथा हिन्दी का प्रयोग करने वाले बड़े हेय दृष्टि से देखे जाते थे। अत: नगरी प्रचारणि सभा को अपनी उद्देश्यपूर्ति के लिए आरम्भ से ही प्रतिकूलताओं के बीच अपना मार्ग निकालना पड़ा। ना० प्र० सभा हिंदी लेखकों का सबसे बड़ा मंच था। देखते ही देखते उसके सैकड़ों सदस्य हो गए और 'नागरी' के प्रचार-प्रसार में अपने को लगा दिया। 1894 ई० में राधाकृष्ण दास ने 'नागरीदास का जीवन-चरित्र' नामक एक लेख लिखा और उसे सभा के सदस्यों के बीच पढ़कर सुनाया।

1896 ई० में मिर्जापुर के प्रसिद्ध लेखक गदाधर सिंह ने एक बड़ा पुस्तकालय स्थापित किया था। केदारनाथ पाठक ने उनसे आग्रह किया कि इसे वे सभा को दान कर दें। उन्हीं पुस्तकों से सभा का पुस्तकालय आरंभ हुआ और नाम रखा गया – 'आर्यभाषा पुस्तकालय'। इसी वर्ष सभा के द्वारा 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन शुरू हुआ। इस पत्रिका के जून, 1898 ई० में महावीर प्रसाद द्विवेदी की लम्बी कविता 'नागरी ! तेरी यह दशा !!' प्रकाशित हुई –

श्रीयुक्त नागरि ! निहारी दशा तिहारी, / होवै विषाद मन माहि अतीव भारी।
हा ! हन्त लोग कत मातु तुम्हैं बिसारी, / सेवैं अजान उरदू उर माहिं धारी।

ह्तात्पर्य यह कि ऐ नागरी ! श्री संपंन होते हुए भी तुम्हारी दशा देखकर मन में अत्यधिक विषाद होता है। यह कितने दुर्भाग्य की बात है कि मातृ स्वरूप होते हुए भी तुम्हें विस्मृत कर लोग अनजानी उर्दू को हृदय में बसाकर सेवा कर रहे हैं। इसी कविता में आगे उन्होंने लिखा –ह्न

तेरी समान रुचिरा, सरला, रसाला, / शोभायुता, सुमधुरा, सगुणा, विशाला।
भाषा न अन्य यहि काल अहो दिखाई, / बोलें निशंक हम यों स्वभुजा उठाई।

तात्पर्य यह कि मैं बिना किसी शंका के अपनी भुजाएँ उठाकर यह कहता हूँ कि हे नागरी, तुम्हारी जैसी रुचिर, सरल, सरस, शोभायुक्त, मधुर गुणों से भरी हुई महान भाषा इस समय कहीं भी दिखलाई नहीं पड़ती।ह्न

14 मई 1899 के 'भारत जीवन' नामक साप्ताहिक पत्रिका में महावीर प्रसाद द्विवेदी की इसी विषय पर 'नागरी का विनय पत्र' शीर्षक कविता प्रकाशित हुई, जिसके अंत में उन्होंने मदनमोहन मालवीय से प्रार्थना की है कि वे मैकडोनल के यहाँ 'नागरी' को राजकाज की एवं अदालतों की भाषा में व्यवहार करवाने के लिए इस विनय पत्र को साथ ले जाएँ।ह्न

जयपुर वासी मिस्टर जैन वैद्य ने महावीर प्रसाद द्विवेदी की चार कविताओं – नागरी ! तेरी यह दशा, प्रार्थना, नागरी का विनय-पत्र एवं कतज्ञता-प्रकाश – को मिलाकर 'नागरी' नामक संकलन संपादित-प्रकाशित किया था। इस पुस्तक को बाद में ना० प्र० सभा ने कई हजार प्रतियाँ छपाकर वितरित की। 1898 ई० में हिन्दी के कई पक्षधर एवं प्रभावशाली व्यक्तियों के साथ पं० मदन मोहन मालवीय ने लाट साहब मैकडॉनल से मिलकर 'नागरी' को राजकाज की भाषा के रूप में में स्वीकृत करने का प्रतिवेदन दिया और इस प्रकार 'नागरी' का प्रवेश राजकीय भाषा के रूप में 1900 ई० में हुआ, साथ ही प्राथमिक विद्यालयों में हिन्दी की पढ़ाई का समुचित प्रबन्ध हुआ।ह्न

जोरदार शब्दों में मदनमोहन मालवीय की अंग्रेजी भाषा में लिखी पुस्तक 'अदालती लिपि और प्राइमरी शिक्षा', जिसमें नागरी को अदालतों और पाठशालाओं से दूर रखने के दुष्परिणामों की विस्तृत चर्चा थी, का सर मैकडोनेल साहब पर काफी प्रभाव पड़ा था। मदनमोहन मालवीय का हिन्दू और हिंदी के लिए वही स्थान था, जो मुसलमान और उर्दू के लिए सैयद अहमद का था। सैयद अहमद को अंग्रेजों ने 'सर' की उपाधि दी थी और मालवीय जी को हिंदू जनता ने महामना की। उस समय के प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्य के उर्दू शायर अकबर इलाहाबादी ने सैयद अहमद के देहावसान के बाद कहा था-

हमारी बातें ही बातें हैं, – सैयद काम करता था / भूलो फर्क जो है, कहने वाले करने वालें में।ह्न

सर सैयद अहमद ने अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय की स्थापना की थी और उर्दू को सरकारी दर्जा दिलवाया था। महामना मदन मोहन मालवीय ने नागरी लिपि और भाषा को सरकारी दर्जा दिलवाया और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना की। उनका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि अकबर इलाहाबादी ने उनपर भी एक शेर कहा है –

बढ़ा ली शेख ने दाढ़ी अगर्चे सन की-सीह्न/ मगर वो बात कहाँ मालवी मदन की-सी।ह्न

'हिन्दी भाषा' जो भारतेन्दु के लिए 'निज भाषा थीं, डॉ० ग्रियर्सन ने जिसे 'मॉडर्न वर्नाकुलर' अर्थात आधुनिक देशज भाषा कहा, फिर उसके लिए 'आर्य भाषा' और 'नागरी' का प्रयोग हुआ, लाला सीताराम ने कालिदास की कृतियों के अनुवाद-क्रम में सिर्फ 'भाषा' कहा, वह अब खड़ी बोली नहीं रह गई थी।

सभी रचनाकारों एवं पाठकों को दुर्गा पूजा, दीपावली, छठ आदि समस्त त्योहारों की हार्दिक शुभकामनाएं।

डॉ. आशीष कंधवे
मोबाइल : +91-9811184393
ई-मेल : editor.gagananchal@gmail.com

दिनकर की उर्वशी और विवाद संवाद की संस्कृति

प्रो. कुमुद शर्मा

'उर्वशी' विवाद को उस समय की प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका 'कल्पना' ने ऐतिहासिक विवाद बना दिया। दिनकर ने उर्वशी की भूमिका में लिखा है कि -"पुरुरवा उर्वशी का आख्यान, भावना, हृदय, कला और निरुद्देश्य आनंद की महिमा का आख्यान है।" कल्पना के पन्नों पर 'निरुद्देश्य आनंद की महिमा का आख्यान' को कल्पना पत्रिका ने सोद्देश्य विवाद के आनंद का आख्यान बना दिया। इस विवाद की शुरुआत भगवतशरण उपाध्याय के लेख से हुई जो कल्पना के 138 वें अंक में सन् 1963 में प्रकाशित हुआ था। इस लेख के कारण भगवत शरण उपाध्याय के साथ साथ कल्पना पत्रिका के संपादक भी आलोचकों के निशाने पर आ गये। इस लेख के प्रकाशित होते ही उस पर प्रतिक्रियाओं का लम्बा सिलसिला चल पड़ा। कल्पना के अंक 140, 141. और 144 में इस पर प्रतिक्रियाएँ प्रकाशित हुईं। उर्वशी की चर्चा ने ज़ोर पकड़ा। यह सब देखकर कल्पना के संपादक ने इस पर वैचारिक परिचर्चा कराने के उद्देश्य से जनवरी 1964 का अंक उर्वशी पर केन्द्रित कर दिया।

1961 में नई कविता के दौर में जब रामधारी सिंह दिनकर की काव्यकृति 'उर्वशी' प्रकाशित हुई तो साहित्य जगत चौंका। दिनकर ने स्वयं कभी घोषणा की थी कि ' जाग्रत युग के स्वप्न फूलों से नहीं, चिनगारियों से सजाए जाते हैं'। महादेवी वर्मा उन्हें 'अग्नि -संभव' कवि कहती थीं। पौरुष का प्रतीक माने जानेवाले दिनकर का क्रांतिकारी व्यक्तित्व 'उर्वशी' में प्रेम की रागात्मकता भूमि पर एक विशिष्ट 'कामाध्यात्म' में रूपान्तरित हो गया। आशय यह है कि जाग्रत चेतना का जो कवि क्रांति के गीत रचने के लिए जाना जाता हो उस क्रांतिकारी कवि से शृंगार की ऐसे रसप्रवण काव्य की उम्मीद नहीं थी। प्रेम और काम का ऐसा उद्दाम आवेग ! प्रेम के सन्दर्भ में ऐसे उद्विग्न करने वाले प्रश्न ! इस अप्रत्याशित मोड़ ने उत्सुकता और जिज्ञासा को जन्म दिया। दिनकर ने जिज्ञासाओं को शान्त करते हुए कहा -" माचा पर बैठे-बैठे टीन बजाते-बजाते थक गया हूँ। अब कुछ ऐसा लिखना चाहता हूँ जिसमें आत्मा का रस अधिक हो।"

दिनकर ने रेडियो के रूपक में 'उर्वशी' का लेखन किया। एक अंक में उर्वशी की कथा को समुचित विस्तार की कठिनाई देखकर पाँच अंकों में 'संवाद काव्य' के स्वरूप में उर्वशी की रचना की। 1972 में 'उर्वशी' पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। लेकिन इस कृति के प्रकाशन के बाद 'उर्वशी' को लेकर हुई जो बहस , उस पर जो विवाद उठे , चर्चाओं में आलोचक जिस तरह एक दूसरे के आमने-सामने हुए उसने इस कृति के प्रति पाठकों की उत्कंठा को कई गुना बढ़ा दिया। 'उर्वशी' में रूपसी नारी के स्वर्णांचल को सातों अम्बर में फैलाकर सौन्दर्य की लहरों का जो दर्शन दिनकर ने कराया , प्रेम और काम पर जो सूक्तियाँ रची उस पर कुछ आलोचक रीझे तो कुछ खीजे। रचनाकारों के बीच अन्तरंग संवादों में भी 'उर्वशी' मौजूद रही।

उर्वशी की कथा स्त्री पुरुष संबंधों की अन्तरंगता के फलक पर प्रेम और काम के विविध स्वरूपों की भावात्मक और चिंतनपरक अभिव्यक्ति से बुनी गयी है। दिनकर ने 'पुरुरवा को सनातन नर का उर्वशी को सनातन नारी का प्रतीक ' मानते हुए इस काव्य की सृष्टि की है। प्रेम और सौंदर्य के बिम्बों की झड़ियों से 'उर्वशी' की रचना सम्पन्न हुई है-

"उतर रही है ये नूतन पंक्तियाँ किसी कविता की
नयी अर्चियों -सी समाधि के झिलमिल अँधियाले में ?
या वसन्त के सपनों की तस्वीरें घूम रही हैं
तारों भरे गगन में फूलों -भरी धरा के भ्रम में।" (दिनकर, उर्वशी)

इस कृति ने अपने कलेवर में प्रेम और काम को लेकर कुछ ज्वलंत प्रश्न खड़े किए, जैसे-प्रेम क्या है? क्या प्रेम मात्र शारीरिक सुख का दूसरा रुप है ? क्या देह ही प्रेम की जन्मभूमि है। प्रेम की सार्थकता के मायने

क्या है? रूप की आराधना का मार्ग क्या है ? प्रेम और काम के किस रूप की स्वीकार्यता होनी चाहिए ? प्रेम की आत्यंतिकता के छोर क्या हैं? प्रेयसी, पत्नीत्व, मातृत्व के द्वन्द्व क्या हो सकते हैं? प्रेम और काम के धरातल पर भोग, उपभोग, तृष्णा, तुष्टि के विविध आयाम क्या हैं? लेकिन कवि प्रश्नों के समाधान के लिए कविता नहीं लिखता। वह तो प्रेम की यातना के तनाव और दबाव को पहचानता है। जैसा कि दिनकर 'उर्वशी ' की भूमिका में लिखते हैं- प्रश्नों के उत्तर , रोगों के समाधान मनुष्यों के नेता दिया करते हैं। कविता की भूमि केवल दर्द को जानती है, केवल बेचैनी को जानती है, केवल वासना की लहर और रुधिर के उत्ताप को पहचानती है।" ('उर्वशी' की भूमिका से उद्धृत)

दिनकर ने कामसुख के कल्पनात्मक चित्रों से उर्वशी की सृजनात्मक सृष्टि कर 'इन्द्रियों के मार्ग से अतीन्द्रिय धरातल' के स्पर्श को 'प्रेम की आध्यात्मिक महिमा' बताया। (उर्वशी -रामधारी सिंह दिनकर , तृतीय अंक) उर्वशी की भूमिका में कृति की मूल संवेदना की समझ के लिए बहुत सारे संकेत और सूत्र दिए। काम के अध्यात्म में बदलने का हल्का सा संकेत भी भूमिका में दिया-" काम -शक्ति पशु जगत् में आवश्यकता और उपयोग की सीमा में है। मनुष्य में आकर वह ऐसे आनंद का कारण बन गई है, जो निष्प्रयोजन, निस्सीम और निरुद्देश्य है। वह नित्य नए-नए पुलकों की रचना करती है, नई-नई कल्पनाओं को जन्म देती है, और मनुष्य को नित्य नवीन स्फुरणों से अनुप्राणित रखती है। यह सच है कि काम के क्षेत्र में पशुओं को जो स्वाधीनता प्राप्त है वह मनुष्य को नहीं है। किंतु कामजन्य स्फुरणों , प्रेरणाओं और सुखों का जो अनंतव्यापी प्रसार मनुष्य में है वह कल्पनाहीन जंतुओं में नहीं हो सकता। और मनुष्यों में भी जो लोग पशुता से जितनी दूर हैं , वे काम के सूक्ष्म सुखों का स्वाद उतना ही अधिक जानते हैं।" (दिनांक, उर्वशी, भूमिका?)

'उर्वशी' की भूमिका में उर्वशी और पुरुरवा के किस रूप को उकेरा गया है उसका संकेत करते हुए लिखा है- ' उर्वशी चक्षुना, रस घ्राण, त्वक तथा श्रोत की कामनाओं की प्रतीक है ; पुरुरवा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द से मिलनेवाले सुखों से उद्वेलित मनुष्य।" दिनकर ने इस कृति के प्रणयन को कामायनीकार के आख्यान का विस्तार बताते हुए कहा- "सृष्टि की जिस प्रक्रिया के कर्तव्य-पक्ष का प्रतीक मनु और इड़ा का आख्यान है ; उसी प्रक्रिया का भावना -पक्ष पुरुरवा और उर्वशी की कथा में कहा गया है।"

जब यह कृति सामने आयी वह मूल्य संक्रमण का दौर था। उर्वशी विवाद में भी शील-अश्लील के प्रश्न और इंद्रिय -अतीन्द्रिय के द्वन्द्व को घेरकर आरोप-प्रत्यारोप का जो सिलसिला चला उसमें संयत समझे जानेवाले आलोचकों के बीच 'विचारों की टकराहट' की टंकार सुनाई दी कुछ इसकी सीमाओं और कमियों को गिनाते रहे तो कुछ इसके राग-विराग जनित द्वन्द पर न्यौछावर होते रहे। किसी ने प्रसाद की कृति 'कामायनी' के तुलनात्मक निकष पर 'उर्वशी' के मूल्यांकन का प्रयास किया। किसी ने इसकी दार्शनिक सीमाएँ भी गिनायीं। किसी ने इसे युग की संचेतना का काव्य माना तो किसी ने एलान किया कि -" उर्वशी ऐसा काव्य नहीं जिसकी सीप में युग का मौत पूरे का पूरा ढल सका हो" (विजेन्द्रनारायण सिंह, उर्वशी : उपलब्धि और सीमा, पृ .133)

उर्वशी' विवाद को उस समय की प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका 'कल्पना' ने ऐतिहासिक विवाद बना दिया। दिनकर ने उर्वशी की भूमिका में लिखा है कि -"पुरुरवा उर्वशी का आख्यान, भावना,हृदय, कला और निरुद्देश्य आनंद की महिमा का आख्यान है।" कल्पना के पन्नों पर 'निरुद्देश्य आनंद की महिमा का आख्यान' को कल्पना पत्रिका ने सोद्देश्य विवाद के आनंद का आख्यान बना दिया। इस विवाद की शुरुआत भगवतशरण उपाध्याय के लेख से हुई जो कल्पना के 138 वें अंक में सन् 1963 में प्रकाशित हुआ था। इस लेख के कारण भगवत शरण उपाध्याय के साथ-साथ कल्पना पत्रिका के संपादक भी आलोचकों के निशाने पर आ गये। इस लेख के प्रकाशित होते ही उस पर प्रतिक्रियाओं का लम्बा सिलसिला चल पड़ा। कल्पना के अंक 140, 141 और 144 में इस पर प्रतिक्रियाएँ प्रकाशित हुईं। उर्वशी की चर्चा ने ज़ोर पकड़ा। यह सब देखकर कल्पना के संपादक ने इस पर वैचारिक परिचर्चा कराने के उद्देश्य से जनवरी 1964 का अंक उर्वशी पर केन्द्रित कर दिया।

'उर्वशी' परिचर्चा' के रूप में प्रकाशित इस विशेषांक ने तत्कालीन प्रसिद्ध कवियों और आलोचकों की प्रतिक्रियाओं, टिप्पणियों और लेखों को शामिल किया गया। इसमें मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, नेमिचंद्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, अज्ञेय, देवीशंकर अवस्थी, धर्मवीर भारती, कुँवरनारायण , बच्चन सिंह, शिवप्रसाद सिंह जैसे रचनाकारों ने अपना-अपना पक्ष रखा। किसी को भगवतशरण उपाध्याय के लेख में साहसिक और निर्भीक समीक्षा का परियायत लगा। किसी ने उनके लेख को ' स्कैण्डल' माना , किसी ने इसे 'पूर्वनियोजित' कहकर प्रायोजित

मामला माना। किसी ने लेखक को 'भाषणबाज' की संज्ञा दी। किसी ने चेतावनी की मुद्रा में कहा लेखक को ध्यान रखना चाहिए कि 'उत्तेजना में स्वर असांस्कृतिक न लगे। किसी ने भगवत शरण उपाध्याय के लेख को विवेकहीनता का परिणाम समझकर 'विवेक के इस्तेमाल' का परामर्श दे डाला।

रोचक बात यह है कि भगवतशरण उपाध्याय अपने लेख में उर्वशी के लेखक को जिन कारणों से आरोपों के कटघरे में खड़ा कर रहे थे उसी कारण से उनकी आलोचना भी प्रश्नचिन्हों के घेरे में आयी- "उपाध्याय जी ने बार-बार बल देकर और अपने वर्णन में मज़ा लेकर 'नंगेपन' की चर्चा की है, चित्र उतने नंगे नहीं जितनी कि इस लम्बी चर्चा में लेखक की अपनी मनोवृत्ति गंदी है।" (अज्ञेय, कल्पना , अंक -147, जनवरी , 1964, पृ-63)

भगवतशरण उपाध्याय के लेख के बाद उर्वशी विशेषांक में प्रकाशित मुक्तिबोध के लेख ने गम्भीर चर्चा के लिए सूत्र दिए। उन्होंने लिखा- भगवतशरण जी उपाध्याय ने 'कल्पना' के अप्रैल अंक (63) में जो आलोचना में प्रस्तुत की है , वह बाहर से भीतर की ओर यात्रा है और इस प्रकार की यात्रा के जो ख़तरे होते हैं वे भी उसमें हैं। सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के जो आडम्बरपूर्ण दृश्य हमें यत्र -तत्र दिखायी देते हैं, उनसे विचलित होकर यह आलोचना प्रस्तुत की गई है। (कल्पना, अंक-147, जनवरी, 1964, पृ-35)

मुक्तिबोध इस कामाध्यात्म की अप्रासंगिकता सिद्ध करने में अपनी तर्क शक्ति का प्रमाण देते हुए कहते हैं कि-"एक दुर्निवार कामुक अहं ने अस्वाभाविक ढंग से आध्यात्मिक मुकुट पहनने की कोशिश की है।" मुक्तिबोध ने कृति में 'मनोवैज्ञानिक कृत्रिमता' का आरोप मढ़ते हुए "काम -लीला की 'परम अवस्था' को सवाक् और आडम्बरपूर्ण " बताया। उर्वशी में चित्रित उर्वशी -पुरुरवा की प्रेम कथा की आध्यात्मिक ऊँचाई नापनेवालों को मानो जबाव देते हुए कह रहे हैं कि-" कामात्मक इंद्रिय- संवेदनाओं के जाल में खो जाने के क्षणों में उनका आध्यात्मिकीकरण नहीं किया जा सकता। न ही किसी दार्शनिक भावना का , न ही धर्म -भावना का बोध हमें उस समय होता है।"

अपनी पुस्तक 'देव की दीपशिखा' में पं विद्यानिवास मिश्र ने लिखा था- " काम और कामुकता में जो अन्तर न कर पाये वह कहीं न कहीं स्वयं किसी ग्रंथि से कुंठित रहता है। सहज जीवन की अभिव्यक्ति के रूप में काम कभी भी भारतीय साहित्य के लिए हेय नहीं रहा।" मगर उर्वशी में काम का आध्यात्म में रूपान्तरण उन्हें रास नहीं आता। वे उर्वशी विवाद में अपनी प्रतिक्रिया देते हुए कहते हैं कि "काम का आध्यात्मिकीकरण उतना ही धोखा प्रयोजन है, जितनी तुलसी को कामग्रस्त सिद्ध करने के लिए 'रामचरितमानस' का मनोवैज्ञानिक अध्ययन। "संभवत: इस तरह की प्रतिक्रियाओं को देखकर ही दिनकर मानते रहे कि आलोचकों ने कृति में 'कामोपभोग से अध्यात्म , समाधि-दशा तक पहुँचने की स्थापना को जिस तरह समझाया है उससे विवेचन विश्लेषण की दिशा गड़बड़ा गई।

उर्वशी और पुरुरवा की मिथकीय संरचना को महज़ 'यौन सुख' के कल्पनात्मक बिम्ब समझकर दिनकर पर आरोपों की बौछार शुरू हो गयी जबकि दिनकर और उर्वशी के प्रशंसक अध्यात्म के कवच से कभी बचाव तो कभी प्रशंसा की मुद्रा में आते रहे। साहित्यिक जगत में उर्वशी की चर्चा गंभीर विचार विमर्श के साथ-साथ परस्पर व्यंग्य विनोद और चुहलबाजी का माध्यम भी बनी।

डॉ रामविलास शर्मा और मुक्तिबोध जैसे प्रखर चिंतकों और आलोचकों ने उर्वशी विवाद को हिन्दी साहित्य का अत्यन्त प्रसिद्ध विवाद बना दिया। रामविलास शर्मा ने उर्वशी का हृदय से स्वागत किया। उन्होंने घोषणा कर डाली कि -"निराला के बाद मुझे किसी कवि की रचना में ऐसा मेघमन्द्र स्वर सुनने को नहीं मिला जैसे दिनकर की 'उर्वशी' में। इस काव्य में जीवन संबंधी ऐसे अनेक प्रश्न प्रस्तुत किए गये हैं, जिन्हें वर्तमान युग का कवि ही प्रस्तुत कर सकता था। उर्वशी में नारी सौंदर्य के अभिनन्दन के अतिरिक्त मातृत्व की प्रतिष्ठा भी है"। (कल्पना, अंक, जनवरी, 1964), पृ- 76)। डॉ रामविलास शर्मा ने उर्वशी की भूरि -भूरि प्रशंसा के लिए और भी तर्क दिए -" कल्पना और यथार्थ ,दर्शन और शृंगार के अद्भुत सम्मिश्रण के कारण यह ग्रंथ प्रत्येक मनीषी कवि और काव्य प्रेमी के चिंतन और रसास्वादन का केन्द्र बनेगा।" उन्होंने इसे केवल दिनकर का कीर्ति स्तम्भ न कहकर समूचे हिन्दी काव्य का कीर्ति स्तम्भ कहा-" आनंद की आकांक्षा के साथ अतृप्ति के उद्वेग को व्यक्त करने के कारण , निरपेक्ष ज्ञान की तृष्णा के साथ सापेक्ष ज्ञान की उदात्त अभिव्यंजना के कारण 'उर्वशी' हिन्दी काव्य का कीर्ति स्तम्भ है।"

उर्वशी विवाद में उर्वशी का तृतीय अंक सर्वाधिक बहस के केन्द्र में रहा। कल्पना के पूरे विवाद में इसी अंक पर आलोचकों ने अपना ध्यान अधिक केन्द्रित किया। ऐसा स्वाभाविक भी था क्योंकि यही

अंक कवि दृष्टि के विविध आयामों से जुड़ता भी है। यही अंक ही कामाध्यात्म के चिंतन की भूमि को खोलता है। किसी ने इस अंक को 'रति चित्रों का एलबम' कहा तो किसी ने रीझते हुए लिखा कि " उर्वशी का यह तृतीय अंक स्वर्ग और मर्त्य, कल्पनालोक और वास्तविकता वेग और विराम के द्वन्द्व का अद्भुत गाँव है।....उर्वशी का तृतीय अंक कवि के प्राणों को भेदकर उसका समग्र रस आत्मसात् करके निकली हुई काव्यलता का सर्वाधिक कमनीय कुसुम है।—रंगीन , मादक, शामक, ...,यह कवि की विराट शक्ति , आश्चर्यजनक संमूर्तन-कौशल और समाहित चित्त की समृद्धि का प्रमाण है।" (हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, आजकल , अक्टूबर 1961)

कुछ प्रतिक्रियाओं का स्वर यह समझकर आक्रामक हुआ कि कवि ने उर्वशी और पुरुरवा को आदर्श बनाकर प्रस्तुत किया है। उन्हें गौरवान्वित किया है। जबकि एक साक्षात्कार में कवि ने 'औशीनरी और सुकन्या को गौरव की अधिकारिणी'बताया है। (साहित्यिक साक्षात्कार, डॉ रणवीर रांग्रा -पृ-160)। वस्तुत: इन दोनों चरित्रों को दिनकर ने सुख दु:ख के बीच भावी स्त्री के जीवन की मंगलकामना से जोड़ा है। दिनकर मानते रहे कि आलोचकों ने कृति में 'कामोपभोग से अध्यात्म , समाधि-दशा तक पहुँचने की स्थापना को जिस तरह समझाया है उससे विवेचन विश्लेषण की दिशा गड़बड़ा गई।

" हम तो चलीं भोग उसको जो सुख-दु:ख हमें बदा था ,
मिले अधिक उज्ज्वल उदार युग , आगे की ललना को।"

उर्वशी विवाद हिन्दी साहित्य का स्मरणीय विवाद बनकर परवर्ती आलोचकों के विमर्श की ज़मीन भी बनता रहा। नामवर सिंह ने 'कविता के नए प्रतिमान' में उर्वशी विवाद पर पूरा एक लेख लिखा है। इसे उन्होंने मूल्यों के टकराव का नाम दिया और निष्कर्ष स्वरुप रामविलास शर्मा और मुक्तिबोध में स्वयं को मुक्तिबोध के पक्ष में खड़ा करते हैं।

'कल्पना' पत्रिका में चले विवाद से पहले साहित्य के दो महारथियों के पत्र भी उर्वशी की वाद विवाद संवाद का हिस्सा हैं। उन्हें भी इस दृष्टि से देखा जाना चाहिए। आचार्य रामविलास शर्मा साहित्य के मंच पर लेखकों, पाठकों के समक्ष मुक्तिबोध से उलझते हुए 'उर्वशी' के लेखक के पैरवी में अपने पूरे अस्त्र-शस्त्र के साथ सामने आये। लेकिन उससे पहले वे 'उर्वशी' की वकालत में अपने बेहद आत्मीय कवि मित्र केदारनाथ अग्रवाल से किस तरह टकराये? प्रेम का मादक आख्यान दो साहित्यकार मित्रों के पत्रों में किस तरह अनौपचारिक बहस का ज़रिया बना? यह देखना कम दिलचस्प नहीं है। बाँदा से 16 मार्च 1962 को केदारनाथ अग्रवाल ने आचार्य रामविलास शर्मा को लिखे पत्र में उर्वशी पर रामविलास जी के लेख पर अपनी असहमति जताते हुए उसे 'टकसाली माल' मानने से इंकार करते हुए एक संक्षिप्त पत्र लिखा। 24 मार्च 1962 को इस पत्र के प्रत्युत्तर में अपने पत्र में रामविलास शर्मा ने लिखा 'नयी कविता के झाड़-झखांड़ देखो, फिर उर्वशी के कवि की पीठ ठोंको।'

इस पत्र के जवाब में 26मार्च 1962 को उन्होंने रामविलास जी को लिखे पत्र में मीठे मगर प्रभाव में गहरे हास्य व्यंग्य की बौछारों से 'उर्वशी' को लेकर अपनी मतभिन्नता को उजागर किया है। इस पत्र की शैली हास्य व्यंग्य का अद्भुत नमूना है।

" श्रीपत्री जोगलिखी बांदा से लाला केदारनाथ की जै गोपाल पहलवान श्री रामविलास आगरावाले को पहुँचे। चिट्ठी आपकी आई। समाचार जाना। आपका पोस्टकार्ड नारद महाराज की तरह आ धमका। हम ठहरे लाला। सो हमने उसका हृदय से स्वागत किया। डर गए कहीं दिनकर का हिमायती पहलवान न इसके अन्दर से पेट फाड़कर निकल आये।..... हम उर्वशी पढ़ चुके पर पहलवान जी आपकी तरह नहीं। आपने तो वैसे ही पढ़ा जैसे हमारे डी. जी. सी. (सरकारी वकील) जल्दी जल्दी में हनुमान चालीसा पढ़ते हैं। आप नयी कविता के झाड़-झंखाड़ से ऊबे थे। तभी तो आपको उर्वशी में मज़ा आ गय। किताब नशीली है। ज़मीन से आसमान की ओर ले जाती है। शून्य में सपने दिखाता है। ऐसे -ऐसे प्रश्न और उत्तर सुनती-सुनाती है जैसे न कोई आदमी करता है न कोई स्त्री करती है। न कोई अप्सरा करती है आप कहते हैं कि तृतीय अंक शिखर अंक है। ज़रूर है। कारण भी बहुत साफ़ है। पहला तो यही है, कि न पुरुरवा ने कोई कसर उठा रखी है , न उर्वशी ने। मेरा मतलब बोर करने से। दोनों एक दूसरे से लम्बी बात करने में एक दूसरे के कान काटते हैं। अजीब है दोनों कि संतुलन जानते ही नहीं। जीभ है कि कैंची। खचाखच चली तो चलती ही गयी। रुकती ही नहीं। यानि कि दोनों एक दूसरे को खूब फौक्स बनाते हैं। भाई, प्रेमी और प्रेमिका भी तो हैं कि एक दूसरे को चाव से सुनते भी रहते हैं। हम हों तो घोड़ी की लगाम खींच दें। ऐसा लगता है कि दो दार्शनिक -दो वकील -दो बौझक-दो बकवासी-

दो मंत्री -एक दूसरे से बाज़ी मार ले जाना चाहते हैं। तर्क भी तंत्र -मंत्र की तरह कहीं- कहीं तान तुक पर चलते हैं। ज़्यादातर तो वही पुराना 'धोबियापछार' किया गया है। यह सब रूप और प्रेम के नाम पर सदा से होता आया है और जनाब बजे अदीब साहब दिनकर ने भी यही किया है। हम दाद देते हैं कि उन्होंने आपको मौक़ा दिया है कि आपने उर्वशी को भुजाओं में भर लिया।" मित्र संवाद-पृ-275)

केदारनाथ अग्रवाल ने 'राम की शक्ति पूजा' की श्रेष्ठता का दावा करते हुए 'उर्वशी' को मापने के अपने पैमाने का संकेत देते हुए मित्र को लिखा- "राम की शक्ति पूजा अकेली है। वहीं जनता के साथ जीती है। हम उसका लोहा मानते हैं। उसके साथ उर्वशी कहाँ ठहरेगी। वह तो ख़्याल की रंगीनियों की छलना है जो स्वस्थ सौंदर्य के साथ घर-बाहर हाट-बाट में ठहर ही नहीं सकती।" (मित्र संवाद -पृ- 275)

इस मित्र संवाद का वैशिष्ट्य यह था कि पत्र के कलेवर में केदारनाथ अग्रवाल युगीन कृतियों के बीच उर्वशी को महत्व नहीं दे पा रहे थे। जबकि रामविलास शर्मा पत्रों में बार बार दिनकर को दाद दे रहे थे। 14 अप्रैल 1962 को लिखे पत्र में उर्वशी की ये पंक्तियाँ उद्धृत कीं-

"रक्त की उत्तप्त लहरों की परिधि के पार
कोई सत्य हो तो , चाहता हूँ , भेद उसका जान लूँ।
पंथ हो सौंदर्य की आराधना का व्यौम में यदि
शून्य की उस रेख को पहचान लूँ।"

इन पंक्तियों के उद्धृत करने के बाद के डॉ॰ रामविलास शर्मा ने अपनी प्रशंसात्मक टिप्पणी को हास्य व्यंग्य की धार में लपेटकर लिखा- "भगवान क़सम तुम ये पंक्तियाँ लिखते तो मुख चुम्बन के लिए हलवा छोड़कर तुरंत बाँदा चल पड़ता।"

उर्वशी को केन्द्र में रखकर दोनों मित्र आपस में ही एक दूसरे से प्रेम की परिभाषा पर बहस कर रहे थे। अपनी व्यंग्योक्तियों से उर्वशी संबंधी अवधारणाओं पर अपने-अपने तर्कों और व्यंग्योक्तियों से एक दूसरे को ललकार रहे थे। केदारनाथ अग्रवाल नैतिकता के प्रहरी की भूमिका में कला और कविता धर्म समझा रहे थे, उर्वशी के बिम्ब विधान और भाषा पर प्रहार कर रहे थे। 'उर्वशी' की भाषा पर चुटकी लेते हुए उन्होंने लिखा--"हमारी हिन्दी राष्ट्र के कोने -कोने में अभी तक राष्ट्रभाषा न बन सकी, वह इस काव्य में अप्सराओं की बड़ी प्रौढ़ भाषा बन सकी। बधाई है कवि को।" (मित्र संवाद पृ-278) केदारनाथ अग्रवाल इस कृति को मनोविनोद और वाग्विलास के अतिरिक्त और कुछ मानने के लिए तैयार नहीं हुए। इसे उन्होंने अच्छी दिलचस्प गुफ़्तगू अवश्य माना। अन्तत: थक हारकर रामविलास जी ने मिलने पर इस पर चर्चा करने की बात कहकर पत्र संवाद में उर्वशी चर्चा को विराम दे दिया।

उर्वशी विवाद हिन्दी साहित्य का स्मरणीय विवाद बनकर परवर्ती आलोचकों के विमर्श की ज़मीन भी बनता रहा। नामवर सिंह ने 'कविता के नए प्रतिमान' में उर्वशी विवाद पर पूरा एक लेख लिखा है। इसे उन्होंने मूल्यों के टकराव का नाम दिया और निष्कर्षस्वरूप रामविलास शर्मा और मुक्तिबोध में मुक्तिबोध की दिशा को सही माना।

विवाद की भूमि पर तरह-तरह से उर्वशी को परखा गया। कवि के द्वारा भूमिका में दिया गया 'निराकार झंकृतियों के उदात्तीकरण के सूक्ष्म सोपान' का संकेत कृति की आन्तरिक बुनावट में उतरा या नहीं? 'मानवता ही मनुष्य की वेदना का सर्वोत्तम नाम है' के आलोक में 'उर्वशी' के निहितार्थ किस तरह खुले हैं? प्रेम और काम के धरातल पर भाव सम्पन्न बिम्बों की शृंखला का , भाव सामंजस्य का कोई संतुलित बिम्ब बना पायी है या नहीं ? कामावस्था की आध्यात्मिक परिणति संभव है? इन सब प्रश्नों को लेकर आलोचकों में मतभिन्नता और दुविधा बनी रही। असमंजस दूर नहीं हो सका। केदारनाथ अग्रवाल और रामविलास शर्मा के पत्रों में भी उर्वशी पर चली बहस किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सकी। इसका कारण भी है। पुरुष संबंधों का कोई नैतिक पैरामीटर बन नहीं सका है। स्त्री-पुरुष संबंधों में गणित की तरह एक जमा एक दो नहीं होता। कभी-कभी स्त्री-पुरुष के बीच पनपनेवाले प्रेम और काम की परिणति अत्यन्त जटिल भी हो सकती है। वास्तविकता यह है कि स्त्री पुरुष संबंधों के व्याकरण में इतने उलझाव होते हैं कि उस पर ठीक-ठीक किसी निष्कर्ष पर पहुँचना आसान नहीं होता। उर्वशी में स्त्री पुरुष प्रेम और काम के वैविध्यमय रंगों को आलोचकों नें अपने-अपने नज़रिए से पहचाना। लम्बे समय तक विवादी स्वरों में उपस्थित रही यह कृति दिनकर के काव्यात्मक उत्कर्ष का सेतु बन गयी।

188 नेशनल मीडिया सेंटर एन एच-8,
गुरुग्राम-122002 मोबाइल न: 9811719898

माँ

आदित्य अभिनव

" कुछ नहीं बबुआ!... मैंने इस भगोना में चाय बनाया... तो किचेन में आ बड़बड़ाने लगी... सब... बरतन में चाय बनाकर ... जला-जला कर – करिया – करलौठ कर देंगी ... कितनी बार कहा कि एक ही बरतन टिफिन में बनाएँ... लेकिन – काहे को मानेगी... जो माँजता है उसको न पता चलता है ... मुझसे जब न रहा गया ... तो मैंने कहा कि... मैं धो दूँगी... त्तो हमक कर बोली... जहाँ-तहाँ घुमने-छिछियाने से फुरसत होगा तब न... बबुआ... हो – बबुआ ... हमार ये घर में दाई-लौड़ी के बराबर भी मोल नईखे... फिर ... जब हम कहनी कि... हम चली जाएब अपना बेटी के पास... तो बोली... दूर... दूर तुम को कौन बेटी... पूछती है... कवनो... ना... पूछेगी... कवनो... ना... ।'' यह वह वहीं बैठकर कहकर माथे पर हाथ रख फफक-फफक कर रोने लगी।

"जा... जा... देखते हैं... कौन बेटी रखती है –तुमको... दस दिन भी गुजारा नहीं होगा... ।'' बहू प्रिया ने हाथ चमकाते हुए कहा।

"जाओ—जाओ – तुम अपना दिन झखो... बड़का-बड़का का घमण्ड नहीं रहा... रावण – जैसे बली का घमंड नहीं रहा... तू कवन खेत की मुरई हो... बहुत बड़का का मुँह चीरा हुआ है... ।'' कहकर कांती देवी मुँह में आँचल डालकर फफक-फफक कर रोने लगी।

यह आए दिन होने वाला गृह-कलह एक साल पहले श्रीमती नारायणी देवी महाविद्यालय, अम्बिकापुर में सहायक प्राध्यापक के पद पर नियुक्त डॉ. आनंद सहाय के यहाँ का है। वे पिछले साल ही केंद्रीय विद्यालय, न. 1 भुवनेश्वर में पी. जी. टी. (हिंदी) के पद से त्याग-पत्र दे यहाँ कमीशन से नियुक्त होकर आए हैं। हर तीसरे-चौथे दिन सास-बहु का बतकुच्चन आम बात है।

डॉ. आनंद कांती देवी की पहली संतान हैं। उनके पिता स्व. कमलेश्वर सहाय की दूसरी पत्नी हैं कांती देवी। शादी के समय उनकी उम्र मात्र सोलह वर्ष थी जबकि कमलेश्वर सहाय की थी सताईस साल। उनकी पहली पत्नी कमला देवी दूसरी संतान को जन्म देने के सात दिन बाद ही चल बसी थी। कमलेश्वर ने तो पहले दूसरी शादी से आना-कानी किया लेकिन लोगों के यह समझाने के बाद कि वंश बढ़ाने के लिए पुत्र तो होना ही चाहिए वे शादी के लिए राजी हो गए। उनकी बड़ी बेटी प्रमिला तब-तक ढाई साल हो चुकी थी। सहाय जी का परिवार अच्छा खाता-पीता परिवार था। दस कोस के चौफेरा में उनके परिवार का नाम था। उनके दादा जी अंग्रेजों के जमाने के मिडिल पास थे और डाक विभाग में जिला सुपरिंटेंडेंट के पद से रिटायर हुए थे। पहले से भी बाप-दादा की चली आ रही छोटी-सी जमींदारी भी थी जो उनके पिता श्री सुखदेव सहाय सम्भालते थे।

इधर कांती देवी अपने परिवार की सबसे छोटी बेटी थीं। उनके पिता राम सिन्हासन लाल ज्यादा पढ़े-लिखे न थे। अत: खेती-किसानी से घर का पालन-पोषण करते थे। बीच में कुछ समय के लिए चटकल फैक्ट्री में काम करने के लिए कलकत्ता गए थे। 1947 में जब बंगाल में दंगा भड़का तो हमलावर मुसलमानों की टोली को फरसा से चीरते हुए भाग निकले। कहते थे कि उन्होंने अपने फरसे से सात मुसलमानों को काट गिराया था। इसके बाद घर छोड़कर कही नहीं गए। परिवार में

उनके पाँच बेटियों और दो बेटों के अतिरिक्त उनके स्वर्गीय बड़े भाई की भी तीन बेटियाँ थी जिनका शादी-ब्याह भी इन्होंने ही किया। सबसे छोटी बेटी कांती देवी के ब्याह के समय उनकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो चुकी थी। अत: अपनी सबसे दुलारी बेटी का विवाह दोआह वर से करना पड़ रहा था। वैसे तो कांती देवी की उम्र तो अभी पढ़ने की थी लेकिन उस जमाने के हिसाब से शादी के लिए ज्यादा ही माना जायेगा क्योंकि उनकी बड़ी बहनों की शादी-तेरह-चौदह साल की उम्र में ही हो गई थी।

शादी के बाद कांती देवी जब ससुराल आई तो आते ही गोद में डेढ़ महीने की निभा को देते हुए सास शकुंतला ने कहा " लो ... संभालो – अपनी... बिटिया... ।''

इस प्रकार नवविवाहिता का सुख उनके भाग्य में नहीं था सो डोली से उतरते ही सौत की दुधमुँही बिटिया को पालने-पोषने और गू- मूत करने में लग गई। यदि प्रमिला और निभा नहीं होती तो शायद एक-डेढ़ साल नई-नवेली दुल्हन का सुख मिल पाता। खैर, सब नसीब का खेल होता है।

डॉ. आनंद ने प्रतिदिन की भाँति संध्या के समय टहलने गए थे। अभी घर में प्रवेश ही किया था कि माँ ने कहा "बबुआ... हो... बबुआ... हम... अब – इहाँ – ना – रहब... हमरा के घरे पहुँचा... द... तोहरा – मेहरारू के आगे हमार... कुत्ता–कौवा के मोल भी – नईखे... हे... बबुआ... ।'' इसके साथ ही वह पुक्काफाड़ कर रोने लगी।

आनंद ने पत्नी से कहा "प्रिया! क्या हुआ... तुमको कितनी बार समझाया कि माँ से झगड़ा न किया करो... लेकिन – फिर भी ... तुम...।''

"मैंने नहीं इसी ने किया है... यह – डोमरहो... ये तो चाहती है कि टोला-मोहल्ला में... आपका नाम बदनाम हो... इसीलिए छोटी-छोटी बात पर कलकान... शुरु कर देती है...।''

"मैंने कहा है न कि माँ को समझ नहीं है... तुझे तो समझ है... तुम –समझा करो... रात-दिन का कलह ठीक नहीं होता...।'' आनंद ने क्रोध से झुझलाते हुए कहा।

"अरे... कलह... मैं नहीं आपकी माँ नाँधती हैं... एक नम्बर की कलही... डोमिन... है... नचनी– ... है... नचनी... हाथ चमका...

चमका... कर... दरवाजे... पर जा... जा कर... सब को सुना... कर फेटा कस – कर लड़ती है... मैं – तो खुद... इससे बचना चाहती हूँ... गुह पर ढेला फेकने पर छिटा अपने ऊपर ही पड़ता है... भकठिन... कलहिन...।'' कहकर प्रिया ने अपने तीन साल के बेटे अभिनव को लेकर ऐंठते हुए अपने कमरे में चली गई और दरवाजा बंद कर लिया।

आनंद ने माँ से पूछा "क्या हुआ था... अम्मा ! ...क्या बात है ?''

" कुछ नहीं बबुआ!... मैंने इस भगोना में चाय बनाया... तो किचेन में आ बड़बड़ाने लगी... सब... बरतन में चाय बनाकर ... जला-जला कर – करिया – करलौठ कर देंगी ... कितनी बार कहा कि एक ही बरतन टिफिन में बनाएँ ... लेकिन – काहे को मानेगी... जो माँजता है उसको न पता चलता है ... मुझसे जब न रहा गया ... तो मैंने कहा कि... मैं धो दूँगी... त्तो हमक कर बोली... जहाँ-तहाँ घुमने-छिछियाने से फुरसत होगा तब न... बबुआ... हो – बबुआ ... हमार ये घर में दाई-लौड़ी के बराबर भी मोल नईखे... फिर ... जब हम कहनी कि... हम चली जाएब अपना बेटी के पास... तो बोली... दूर... दूर तुम को कौन बेटी... पूछती है... कवनो... ना... पूछेगी... कवनो... ना... ।'' यह वह वहीं बैठकर कहकर माथे पर हाथ रख फफक-फफक कर रोने लगी।

"आज हमार... ई – गति ... दूर ... दूर ... बिल... बिल... दु-दु गो बेटा... गवाँ ... देनी... भतार... चल... गईले... त... हमार... ई... दुर्गति ... ऐ... बबुआ –हो... बबुआ...।'' कहते हुए छाती पीट-पीट कर बिलख-बिलख कर रोने लगी।

आनंद ने अपने बाँहों मे समेट कर ढाढ़स –दिलासा देते हुए कहा "अम्मा ! मत घबराओ... शांत हो जाओ... कुछ- कुछ व्यवस्था करता हूँ ... अम्मा... करता हूँ ... ।'' माँ को उसके कमरे में ले जाकर बेड पर लेटाकर खुद ड्रॉइंग रूम में आ सोफे पर बैठ दोनों हाथों से चेहरे को ढक चिंता निमग्न हो गए।

डॉ. आनंद अपने अतीत के धुँधलकों में खो गए। उन्हें अपना बचपन याद आने लगा... उनकी माँ लम्बे – काले – घुँघराले बालों वाली... पतल-छरहरी... सूती साड़ी पहने हुए... वह उसके साड़ी को पकड़े... जहाँ – जहाँ – जाती... वहाँ–वहाँ... जाता... माँ किसी से बात भी करती तो तीन साल का बालक साड़ी पकड़े रहता... माँ कहती... तुन जाओ... मैं – चाची से बात करके आती हूँ... लेकिन - वह साड़ी नहीं छोड़ता...

घर में दो बहनों के बाद उसका जन्म हुआ था। पूरे परिवार का दुलारा था। उसके दादा उसे सदा अपने साथ रखते... वह अपनी माँ की पहली संतान था... माँ के जिगर का टुकड़ा था... दोनों बड़ी बहनों का प्यारा छोटा भाई था... हर छोटी –छोटी बातों पर जिद कर बैठता... ये नहीं खाऊँगा... वो नहीं खाऊँगा... माँ आस-पास से माँग कर लाती... जिद पूरा करती... अत्यधिक प्यार-दुलार ने उसे उदंड और शरारती बना दिया था... जरा- जरा-सी बात पर वह बहनों पर हाथ चला देता...

धीरे-धीरे परिवार बढ़ता गया... अब परिवार पाँच बहनों और तीन भाइयों का हो चुका था... साथ में दादा-दादी जी भी थे। कुल बारह लोगों का परिवार। सभी बच्चें उम्र के साथ बढ़ने वाले... सबके पढ़ाई-लिखाई का खर्च... आमदनी के नाम पर पिता जी की पाँच-छ: महीने की सुगर-फैक्ट्री की प्राइवेट नौकरी... । खेती भी ज्यादा नहीं थी क्योंकि तब-तक जमीन का बँटवारा हो गया था और उसके बाबा के हिस्से में दो बिघा जमीन ही आई थी। खेती से मुश्किल से चार-पाँच महीनें के लिए अन्न हो पाता था। ये तो अच्छा था कि पिताजी के भाइयों के बीच आपस में जमीन का बँटवारा नहीं हुआ था अन्यथा और मुश्किल स्थिति हो जाती। माँ इन परिस्थितियों में घर चला रही थी। सुबह से शाम तक सारा काम करती... बच्चों को तैयार कर स्कूल भेजना... दादा-दादी जी का सेवा-टहल... खेती-गृहस्थी के पचास काम हुआ करते... माँ कभी थकती नहीं... ।

एक दिन दोपहर में वह अपने मित्र अखिलेश साह के यहाँ पढ़ने गया था। पाँच बजे शाम को जब घर आया तो पता चला कि नौ साल के छोटे भाई सुजित का हाथ खेलते समय सहजन के पेड़ से गिरने से टूट गया है। पिता जी पांडिचेरी अपने नौकरी पर थे। वहाँ वे सुगर-फैक्ट्री में पैनमैन का काम करते थे। जब-तक गन्ना की पैदावार होती तब-तक फैक्ट्री चलती थी। लगभग छ: महीनें काम होता, छ: महीनें घर पर रहना होता। वह अपने बाबा के साथ सुजित को लेकर छपरा सदर अस्पताल गया। वहाँ प्लास्टर चढ़ा था। सही ढंग से प्लास्टर नहीं हुआ। हाथ टेढ़ा हो गया था। पिता जी जब आए तो सबसे छोटे वाले चाचा जो बेगुसराय की जानी –मानी डॉक्टर प्रमिला श्रीवास्तव के कंपाउंडर थे के यहाँ ले गए। कुछ दिन तक पैराफिन पिघला कर चढ़ाया गया और एक्सरसाइज कराया गया। कुछ लाभ नहीं हुआ। वही एक नौसिखिया डॉक्टर बोला कि नस में इंजेक्शन देने से नस चालू हो जायेगा। हाथ ठीक हो जायेगा। इंजेक्शन दिया गया तो पूरे शरीर में प्वाइजन फैल गया। भाई का लाश भी वही मोकामा घाट पर दफना दिया गया था।

माँ को जीवन में पहली बार इतनी बड़ी चोट लगी थी। अब उसके दो बेटे ही बच गए थे। बाबा-ओझाओं ने इस अवसर का लाभ उठाया था। माँ को भरमा कर बहुत ठगा था इन बाबाओं और ओझाओं ने। समय बीतता गया... धीरे-धीरे माँ घर-परिवार में रम गई। तब-तक मेरी नौकरी भारतीय वायु सेना में लग चुकी थी। तीन बहनों की शादियाँ भी हो गई थी। मेरा छोटा भाई नीरज की बी. ए. फाइनल की परीक्षा हो गई थी। गाँव के कुछ लड़के करनाल में डाइंग मास्टर का काम करते थे। अच्छी आमदनी थी उनकी। वह उनके साथ डाइंग मास्टर का काम सीखने के लिए साथ हो लिया। लेकिन किसको पता था कि उसका करनाल जाना हम सब को सदा के लिए छोड़ जाना होगा। मेरी तब-तक शादी भी हो गई थी। कुछ दिन पहले ही मेरी पोस्टिंग जोधपुर में हुई थी।

रोड एक्सीडेंट का फोन आया था मेरे पास। फिर पता चला कि मेरा भाई नहीं रहा। भाई की मृत्यु की खबर ने मुझे इतना विह्वल-व्यथित कर दिया कि मैं अर्ध- विक्षिप्त की अवस्था में पहुँच गया था। उस समय पत्नी प्रिया ने स्थिति को यदि न संभाला होता तो शायद मैं इस सदमे से उबर नहीं पाता। पिता जी उस समय रिटायर्ड हो गए थे। उन्हें कालाजार हो गया था। यह हृदयविदारक सूचना जब घर पहुँची तो माँ कि स्थिति का वर्णन करना संभव नहीं था। वह रोते-रोते धम्म से जमीन पर गिर पड़ती। छाती को पीट पीट कर लहूलुहान कर चुकी थी।

पिताजी सदमे से उबर नहीं पा रहे थे। लगता था कि पुत्रशोक इनके मृत्यु का कारण बन जायेगा। बड़ी मुश्किल से उनको बचाया गया। मैं करनाल में ही उसका अंतिम संस्कार कर जब घर आया तो माँ का विलाप सुन मैं भी अधीर की भाँति रोने लगा था। माँ ने मुझे बाँहों में भर लिया और प्रलाप करते हुए बोली "बबुआ... हो... बबुआ... तोहार दहिना बाँहवाँ टूट गएल हो बबुआ... '' वह मुर्छित हो कर गिर पड़ी थी।

माँ के मुसीबतों का अंत का यही नहीं हुआ। भाई के श्राद्ध कर्म के बाद पिता जी मेरे साथ जोधपुर आए थे। वहाँ मैंने मिलीटरी हॉस्पीटल, जोधपुर में उनको हुए कालाजार का विधिवत इलाज करवाया था। दो महीने बाद ही वे घर जाने की जिद करने लगे। एक मित्र जो कानपुर जा रहे थे उनके साथ मैंने उन्हें घर भेज दिया। ट्रेन पर बिठा कर मैं क्वाटर आया था। पिता जी यह मेरा अंतिम दर्शन था। एक सप्ताह बाद घर से खबर आई थी कि पिता जी पटना पी. एम. सी. एच. में भर्ती है। सिवियर हार्ट अटैक हुआ था। मुझे विश्वास था की पिताजी को मैं बचा लूँगा लेकिन मेरे पहुँचने के पहले ही पिता जी हम सब को छोड़कर जा चुके थे। माँ के जीवन का यह तीसरा और सबसे ज्यादा पीड़ादायक आघात था। मैं घर पहुँचा तो पिता जी के शव को बर्फ में रखा पाया था। माँ मुझसे लिपटकर बिलख- बिलख कर रोने लगी। वह बार-बार मुझसे कह रही थी "बबुआ हो... बबुआ... तू... टूअर हो गईल... हो बबुआ...। वह पिता जी के लाश पर दहाड़ मार कर गिर पड़ी थी।

अब माँ के जीवन का एकमात्र सहारा मैं ही था। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि स्त्री का हृदय जितना सहनशील होता है। शायद यहीं कारण है कि स्त्री की तुलना धरती से की जाती है। हर तरह के मुसिबतों को सहकर भी अपने संतान के लिए मंगल-कामना स्त्री ही कर सकती है... एक माँ ही कर सकती है...। मेरे ऊपर जिम्मेवारियों का पहाड़ आ पड़ा था लेकिन माँ हमेशा कहती "तुम चिंता मत करो – बेटा... मैं हूँ ना...।

आज उस माँ की यह दयनीय दशा... मेरे ही घर में ... अपने बेटे के घर में ... मेरे ही सामने... मुझे याद आता है... डेढ़ साल पहले की एक घटना ... प्रिया और माँ के बीच वाकयुद्ध अपने चरम पर था। मुझसे नहीं रहा गया तो मैं प्रिया को शांत करने के लिए बलप्रयोग पर उतर आया था। फिर क्या था उसने भी चप्पल चला दिया था माँ पर... मैं तो सन्न... रह गया था... माँ का इतना अपमान... प्रिया... स्वयं एक स्त्री होकर... अपने... माँ... सासू माँ... का ऐसा अपमान... इस प्रकार दुर्व्यवहार... करेगी... मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। सब सहती रहती थी। मैं भी परिवार चलाने के नाम पर मूक बना हुआ था। पिताजी के मरने के बादे मैंने माँ के चेहरे पर कभी खुशी नहीं देखी थी... मुझे अपना बचपन याद आता है... होली... लम्बा-चौड़ा आँगन... माँ कीचड़ – काँदो और रंग-अबीर-गुलाल से सनी हुई अपने देवरों के साथ उल्लास पूर्वक होली खेल रही है –... दिवाली में टोले-मुहल्ले के लोगों को गुजिया-मिठाई- दही-बाड़ा परोस रही है... दुर्गापूजा के समय नवरात्रि का आयोजन का धुमधाम... थाली में पुरियाँ - अंकुरित चना और मिठाइयाँ रख माँ भक्तिभाव में डूबी मैया का गीत गाते पूजन करने जा रही है... सारे-सारे दृश्य मेरे आँखों के सामने नाँचने लगते हैं... वहीं अब एक मायूसी-खामोशी हमेशा चेहरे पर छायी रहती है।

मैं तीसरे दिन माँ को लेकर अपने गाँव आया था। वहाँ दो दिन रूक कर वापस अम्बिकापुर आ गया था। मैं हर महीने 2000-2500 रुपये भेजकर अपने-आप को जिम्मेवारियों से मुक्त कर लेता था। लेकिन माँ का दर्द-पीड़ा उसे भीतर ही भीतर खाये जा रहा था। मेरी सबसे छोटी बहन कल्पना जिसकी शादी माँ के देखे-परखे लड़के से मैंने की थी, वह शराबी निकला था। बहन का सारा गहना बेचकर पी गया। माँ उसके चिंता में घुलती रहती। मेरी बहन अब मेरे घर आ कर रहने लगी थी। समय बीतते गया। मैं माँ से दो-तीन दिन पर बात कर लेता था। हर महीने रुपये भेज देता था। माँ से ही सभी बहनों का हाल-चाल पता चल

जाता था। उससे बात करने पर लगता कि वह मेरे पास आना चाहती है लेकिन प्रिया के कारण अपने-आप को जबरदस्ती रोक लेती है। उसका मन हमेशा मुझमें ही लगा रहता। प्रणाम करने पर ढेरों आशीस देती। लेकिन यहाँ प्रिया के मन में उसके प्रति विष-बेल बढ़ता ही जा रहा था। मेरा बेटा अभिनव भी अपने माँ के सिखाए शब्दों से दादी को सम्बोधित करता "पगली दादी... कुत्ती दादी... दुष्ट दादी... ।'' मैं उसे डाँटता तो मुझे भी वह बुरा... दुष्ट... गंदा बोलता। कहीं-न-कहीं माँ से आया विष उसमें फल रहा था।

एक दिन कॉलेज से आया ही था कि प्रिया ने कहा " बड़ी दीदी का फोन आया था , बता रही थींकि आपकी माँ ने गाँव का सब खेत बेच दिया और रुपयें पियक्कड़ दामाद को दे दिया... ।''

" घर के जमीन का लफड़ा चल रहा था... चलो अच्छा हुआ कि न जमीन बेच दिया नहीं तो जमीन किए चक्कर में मर-मुकदमा करना-लड़ना पड़ता।'' मैंने ठंढ़ी साँस लेते हुए कहा।

"लेकिन ये तो देखिए बाप-दादे की सम्पत्ति पर आने वाली पीढ़ियों का हक होता है... हमारा हक है... हमारा पैसा है... और दे दिया पियक्कड़ दामाद को... वाह भाई – ... वाह... गजब...।'' प्रिया का चेहरा रोष से तमतमाया हुआ था।

तभी बीच में बेटा अभिनव बोल उठा "दुष्ट दादी... पगली दादी... कुत्ती दादी... मैं उसे आने नहीं दूँगा...।''

मैंने कहा " चुप रहो तुम लोग... पिताजी की सम्पत्ति थी, उसको जो मन में आए करे...।''

लेकिन इस बात का मेरे मन में भी कहीं-न-कहीं पहुँचा था। माँ को मुझे बताना चाहिए था... पैसा मुझे देना चाहिए था... खैर... ।

वक्त गुजरता गया। जनवरी का महीना था। ठण्ढ अपने चरम पर था। एक दिन कल्पना का फोन आया "माँ की स्थिति बहुत खराब है। जल्दी आओ... ।''

मैं प्रिया और अभिनव के साथ घर पहुँचा। प्रिया के मन का रोष अभी भी कम नहीं हुआ था। घर पहुँचने पर मैंने देखा कि माँ बिछवन पर मरणासन्न पड़ी है। जाते ही कल्पना मुझे पकड़कर रोने लगी। मैंने उसे ढाढ़स दिया और माँ का सिर गोद में लेकर बैठ गया। टोले-मुहल्ले की महिलायें आई हुई थीं । सब कहने लगी "तुम्हारा ही नाम रटती थी... बार-बार... बबुआ... बबुआ... करती थी... तुम आ गए हो... अपने हाथ से गंगाजल पिला दो... ।''

मैं माँ के चेहरे को ध्यान से देख रहा था... उसका चेहरा झुर्रियों का झोला बन चुका था। शरीर में मात्र हड्डी-चमड़ी ही बचा था। आँखें बंद थी। कभी-कभी पलकों में हलचल –सी होती। शायद माँ आँखें खोलकर मुझे देखना चाहती थी। उसने एक बार आँखें खोली और धीरे से कहा "...बबुआ...।''

मैंने कहा "हाँ... अम्मा... मैं... तुम्हारा... बबुआ... ।''

उसने हाथ से कुछ पिलाने का इशारा किया। मैंने उसके मुँह में गंगाजल डाल दिया। एक हिचकी आई और वह एकदम शांत हो गई।

माँ के श्राद्ध के बाद भाई का भोज होना था। सभी रिश्तेदार मौजुद थे। सभी बहनें भी आई थीं। कल-परसो में सब चली जायेंगी। सबने कहा कि माँ का बक्सा खोला जाए , जिसको वह हमेशा बंद रखती थी। मँझली दीदी ने बक्सा खोला... बक्सा में साड़ी... साया... ब्लाऊज... का एक सेट था... जो कि बहुत पुराना लग रहा था। शायद माँ के शादी का जोड़ा था। साथ में कंधावर भी था। शायद पिता जी ने शादी के समय कंधे पर रखा होगा। इन सबके बीच एक फोटो मिला था जिसमें मैं नंगा बैठा था और पीछे से पिता जी पकड़े हुए थे। बक्से के एक कोने में पुरानी लाल रंग की गांधी डायरी पड़ी थी। डायरी को खोला गया। उसके अंदर पड़ोस के गाँव तरैया के स्टेट बैंक का पासबुक था जिसके बीच में एक फिक्स डिपोजिट का कागज था... फिक्स एमाउण्ट... पाँच लाख... नोमिनी... आनंद सहय... । एक कोने में पुराने कपड़े का एक गोला पड़ा था। शायद कोई चीज हिफाजत के लिए लपेट कर रखी हुई हो। कपड़े को को हटाया गया। उसमें से एक डिब्बा था जिसमे पुराने ढंग का सोने का भारी-भरकम माँगटीका था जो तीन तोले से ज्यादा ही वजन का था । उसमे एक धागा बँधा था जिसमें कागज लगा हुआ था जिसपर लिखा था --- बहू के लिए। लिखावट माँ की थी।

उर्फ डॉ. चुम्मन प्रसाद श्रीवास्तव, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
भवंस मेहता महाविद्यालय, भरवारी, कौशाम्बी, यूपी- 212201
मो. 7972465770, 7767031429

रामचंद्र शुक्ल का आलोचना कर्म और भारतीयता

कृष्ण बिहारी पाठक

बच्चन सिंह ने अपनी बात में बहुत स्पष्ट शब्दों में रेखांकित किया है कि शुक्ल जी के विरोध के लिए परवर्ती विद्वानों ने विदेशी लटकों को आधार बनाया। यह बात ध्यान देने योग्य है। साहित्य के मूल्यांकन के लिए भारतीय विचार सरणियों को उनके सर्वश्रेष्ठ रूप में समग्रता के साथ अपनी विचार पद्धति में अभिनिवेश करने वाले शुक्ल जी के सामने आने के लिए विदेशी लटकों के अलावा उन समीक्षकों के पास दूसरा रास्ता ही क्या था? यह बात और है कि वे अपने संपूर्ण प्रयासों के बावजूद शुक्ल जी के आलोचना प्रतिमानों तथा उनके विनियोगों को सूत भर भी नहीं हिला सके। शुक्ल जी का अवदान विरोधियों से भरे इस दरबार में पुरजोर खींचतान के बाद भी अंगद के पाँव की तरह आज भी अविचल है, अडिग है। आलोचना की भारतीय विचार सरणियों को अपनाना एक बात है और पाश्चात्य पद्धति का विरोध करना दूसरी। शुक्ल जी को इस विरोध की आवश्यकता क्यों महसूस हुई ? वे पाश्चात्य का खंडन किये बिना भी भारतीयता का मंडन कर सकते थे।

आज सौ वर्षों के बाद यह चर्चा कितनी सम्यक, प्रासंगिक और संदर्भपूर्ण होगी कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल के आलोचना कर्म में भारतीयता का कितना आग्रह है?

इस आग्रह के मूल कारण क्या है, और इस आग्रह का विनियोग किस प्रकार उनके आलोचना कर्म में रेखांकित किया गया है?

क्या वाकई रामचंद्र शुक्ल द्वारा स्थापित आलोचना के प्रतिमानों तथा उनके विनियोगों की अक्षय कीर्ति के मूल में उनकी चिंतन पद्धति में निहित भारतीयता और उस भारतीयता के प्रति उनका उत्कट आग्रह है?

मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि जिस प्रकार किसी देश की विचार पद्धति, चिंतन शैली और सांस्कृतिक परंपरा में रचा - बसा साहित्य ही, कालचक्र को भेदकर पुनर्नवा और चिर-प्रासंगिक बना रहता है उसी प्रकार उस साहित्य का मूल्यांकन करने वाली वे ही विचार पद्धति कालजयी सिद्ध हो सकती हैं जो उस साहित्य का मूल्यांकन उसकी निर्मात्री विचार पद्धतियों, चिंतन शैली और सांस्कृतिक परंपराओं की कसौटी पर कसकर करती हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा स्थापित आलोचनात्मक प्रतिमान और उनके विनियोग यदि आज भी उतने ही प्रासंगिक, उतने ही अर्थवान बने हुए हैं तो इसका एकमात्र कारण उनकी अंतर्वर्ती चेतना और रचना प्रक्रिया में निहित भारतीयता ही है।

यह बात जितनी आसानी से कही गई है उतनी आसानी से स्वीकार नहीं की जाएगी। इस स्थापना की पीठ पर ही यह प्रश्न उठ खड़ा होगा कि तत्कालीन उपलब्ध श्रेष्ठतम पाश्चात्य साहित्य का अनुशीलन करने वाले, पाश्चात्य साहित्य में प्रचलित मान्यताओं का मंथन करने वाले, पाश्चात्य साहित्यकारों के मूल्यवान साहित्य को अनूदित करने वाले और अपने निबंध साहित्य में यथास्थान उनके प्रभाव और प्रेरणा को स्थान देने वाले नीर क्षीर विवेकी आचार्यप्रवर के लिए यह कैसे संभव हुआ कि वे अपने आलोचना कर्म में पाश्चात्य प्रभाव और प्रेरणा से निर्द्वन्द्व रहते हुए केवल व केवल विशुद्ध भारतीय विचार सरणियों को अपनाकर आलोचना के कालजयी प्रतिमान गढ़ते गए?

इस प्रश्न का उत्तर बहुत सहज और स्वाभाविक है। वैयक्तिक संस्कार और राष्ट्रीय - सांस्कृतिक चेतना के चलते शुक्ल जी में भारतीयता के प्रति आग्रह स्वाभाविक था ही, परंतु भारतीय चिंतन, विचार पद्धति और संस्कृति के प्रति स्वाभिमान, आत्मगौरव, जातीय गौरव और श्रेष्ठता का भाव उनमें भारतीय और पाश्चात्य साहित्य की तुलना से ही विकसित हुआ, जिसके चलते उन्होंने भारतीयता को केंद्र में रखते हुए अपने आलोचनात्मक प्रतिमान विकसित किये।

यहाँ दो बातें महत्वपूर्ण हैं। प्रथम तो यह कि साहित्य तथा साहित्यकार के मूल्य निर्धारण की सभी रीतियों, पद्धतियों और प्रणालियों का पूर्ण विकसित एवं समर्थ रूप भारतीय ज्ञान परंपरा में देखकर उन्हें यह निश्चय हो गया था कि भारतीय ज्ञान परंपरा और विचार सरणियों में किसी भी साहित्य के मूल्यांकन के सर्वश्रेष्ठ उपागम उपलब्ध हैं। अपने साहित्येतिहास में वे सप्रमाण उन लोगों की आँखें खोलते हैं जो बिना सोचे-समझे ज्ञान विज्ञान की सारी अग्रगामिता का प्रवर्तक यूरोप को मानकर मुग्ध भाव से उसके अनुकरण को ही आधुनिकता मान बैठे हैं -

"यह कुछ आवश्यक नहीं कि हम हर कदम उसी के पीछे रखें। अब यह आदत छोड़नी चाहिए कि कहीं हार्डी का कोई उपन्यास पढ़ा और उसमें अवसाद या 'दुःखवाद' की गंभीर छाया देखी तो चट बोल उठे कि अभी हिंदी के उपन्यासों को यहाँ तक पहुँचने में बहुत देर है। बौद्धों के दुःखवाद का संस्कार किस प्रकार जर्मनी के शोपनहावर से होता हुआ हार्डी तक पहुँचा, यह भी जानना चाहिए।"1

कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय ज्ञान विज्ञान और चिंतन की मौलिक प्राचीनता और विश्व साहित्य में उसकी स्वीकार्यता का बहुत कुछ अनुभव शुक्ल जी को पाश्चात्य साहित्य के अनुशीलन से ही हुआ, जिसके बल पर वे पश्चिम के अनुकरण को उपेक्षित कर साहित्यिक स्वावलंबन और स्वाधीन चेतना को मुखरित करने में तत्पर हुए।

दूसरे यह कि पाश्चात्य विद्वानों से लेकर भारतीय मनीषियों तक यह सर्वमान्य, सर्वस्वीकृत अभिमत है कि किसी देश विशेष के साहित्य का मूल्यांकन उस देश विशेष के विशेषकों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। उधर अंग्रेजी के समर्थ साहित्यकार इलियट का कहना है कि रचनाकार की मौलिकता अपनी जातीय चेतना अथवा परंपरा में निहित होती है और इधर साहित्य तथा साहित्येतिहास के संदर्भ में रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रस्तुत परिभाषा के केंद्र में भी जनता की संचित चित्तवृत्ति पर ही बल है -

"जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।... जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है।"2

जनता की चित्तवृत्ति के संचित प्रतिबिंब को साहित्य के रूप में परिभाषित करने वाला यदि उस चित्तवृत्ति को ही आधार बनाकर उस साहित्य के गुण - दोष, औचित्य और श्रेणीकरण आदि का निर्धारण करता है तो इसमें अप्रत्याशित क्या है।

भारतीयता का प्रबल आग्रह एक ओर शुक्ल जी के आलोचना कर्म की चिरंतन प्रासंगिकता का मूल है तो वहीं दूसरी ओर विदेशी विचार पद्धतियों से सद्भाव रखने वाले अन्यान्य आलोचकों की स्पर्धा और ईर्ष्या का कारण भी। आलोचक और आलोचना शीर्षक पुस्तक में बच्चन सिंह लिखते हैं -

"ज्यों-ज्यों समय बीतता है त्यों- त्यों शुक्ल जी की मान्यताओं, स्थापनाओं और आलोचना की सर्वांगीण पद्धति के प्रति लोगों की आस्था बढ़ती जाती है। यह शुक्ल जी की प्रौढ़ता, सूक्ष्म विवेक, गहन विश्लेषण शक्ति का परिणाम है। आलोचना के क्षेत्र में आने के साथ-साथ प्रत्येक महत्वाकांक्षी आलोचक के मन में शुक्ल जी से टकराने की आकांक्षा जोर मारती है। आज भी समय-समय पर विदेशी लटकों के आधार पर शुक्ल जी का विरोध करने से हम बाज नहीं आते। सारे विरोधों के बावजूद शुक्ल जी की महत्ता घटने की जगह बढ़ती ही गयी है।"3

बच्चन सिंह ने अपनी बात में बहुत स्पष्ट शब्दों में रेखांकित किया है कि शुक्ल जी के विरोध के लिए परवर्ती विद्वानों ने विदेशी लटकों को आधार बनाया। यह बात ध्यान देने योग्य है। साहित्य के मूल्यांकन के लिए भारतीय विचार सरणियों को उनके सर्वश्रेष्ठ रूप में समग्रता के साथ अपनी विचार पद्धति में अभिनिवेश करने वाले शुक्ल जी के सामने आने के लिए विदेशी लटकों के अलावा उन समीक्षकों के पास दूसरा रास्ता ही क्या था? यह बात और है कि वे अपने संपूर्ण प्रयासों के बावजूद शुक्ल जी के आलोचना प्रतिमानों तथा उनके विनियोगों को सूत भर भी नहीं हिला सके। शुक्ल जी का अवदान विरोधियों से भरे इस दरबार में पुरजोर खींचतान के बाद भी अंगद के पाँव की तरह आज भी अविचल है, अडिग है।

आलोचना की भारतीय विचार सरणियों को अपनाना एक बात है और पाश्चात्य पद्धति का विरोध करना दूसरी। शुक्ल जी को इस विरोध की आवश्यकता क्यों महसूस हुई ? वे पाश्चात्य का खंडन किये बिना भी भारतीयता का मंडन कर सकते थे।

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में यूरोप के प्रभाव से हिंदी साहित्य में विभिन्न साहित्यिक विधाओं के आगमन को साहित्यिक भूमि का व्यापक विस्तार मानते हुए शुभ संकेत मानने वाले इस आचार्य ने आगे चलकर पाश्चात्य प्रभावों के विरोध में अपनी आवाज बुलंद की तो उसका एकमात्र कारण भी भारतीय विचार पद्धतियों के प्रति आत्म बोध और साहित्य में स्वाधीन चेतना का भाव था।

विविध आगत विधाओं में रचित भारतीय साहित्य का अध्ययन और विश्लेषण करते हुए शुक्ल जी ने यह लक्ष्य किया कि ये आगत विधाएँ अपने संरचनात्मक प्रभाव से आगे बढ़कर रचनाकारों की मौलिक रचना प्रक्रिया पर भी हावी होते हुए उसे प्रभावित करने लगी थी। दूसरे शब्दों में यह साहित्यिक उपनिवेशीकरण की शुरुआत थी। इस औपनिवेशिकता पर प्रहार करने के उद्देश्य से ही शुक्ल जी ने लिखा है -

"केवल पाश्चात्य साहित्य के किसी कोने में आँख खोलने वाले और योरप की हर एक नई - पुरानी बात को 'आधुनिकता' कहकर चिल्लाने वाले लोगों के द्वारा बहुत कुछ अनधिकार चर्चा-बहुत सी अनाड़ीपन की बातें भी फैल चलीं। इस दूसरे ढांचे के लोग योरप की... उक्तियों के टेढ़े - सीधे अनुवाद की उद्धरणी करके ही अपने को हमारे वास्तविक साहित्य - निर्माताओं से दस हाथ आगे बता चले।.. क्या नाटक, क्या उपन्यास, क्या निबंध, क्या समालोचना, क्या काव्य - स्वरूप मीमांसा, सब क्षेत्रों के भीतर कुछ विलायती मंत्रों का उच्चारण सुनाई पड़ता आ रहा है।"4

साहित्य में आयातित इन सभी विधाओं में उपनिवेशीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति को लक्ष्य कर वे भारतीय साहित्य परंपरा को इस प्रदूषण से बचाना चाहते थे। इस प्रकरण में ऐसे समीक्षकों की शुक्ल जी ने अच्छी पड़ताल की है जो अपनी बेसिरपैर की मान्यताओं से प्रेमचंद को टॉलस्टाय से और प्रसाद को बर्नार्ड शा से भिड़ाकर देखते हैं।

विज्ञान, तकनीकी और पुनर्जागरण के क्षेत्र में यूरोप के अवदान से शुक्ल जी का विरोध नहीं, विरोध भारतीय लोगों द्वारा किये जाने वाले विवेकहीन, परावलंबी अंधानुकरण से है, इसीलिए वे क्रुद्ध-क्षुब्ध होकर कह उठते हैं -

" युग का सारा रूप- विधान योरप ही करे और हम आराम से जीवन के सब क्षेत्रों में उसी के दिए हुए रूपों को ले लेकर रूपवान बनते चलें? क्या अपने स्वतंत्र स्वरूप विकास की हमारी शक्ति सब दिन के लिए मारी गई?"5

परिस्थितियों पर ध्यान दिए बगैर, चर्चा, विचार और मंथन किये बिना ही किसी विचार पद्धति को अपना लेना उसे सिर पर चढ़ा लेना कहाँ तक संगत है। ऐसी असंगत विसंगति को शुक्ल जी ने अनाड़ीपन और जंगलीपन कहा है। अपने देश की परिस्थितियों और विचार पद्धतियों में सहजता से समाविष्ट होनी वाली आगत प्रवृतियों के प्रति वे स्वागत भाव रखते हैं। यह स्वागत भाव वहीं तक मर्यादित है जहाँ तक हमारी जातीयता, मौलिकता और विचार सरणियाँ प्रदूषण मुक्त रह सकें। आधुनिक युग में हिंदी समीक्षा में यह प्रदूषण देखकर वे क्षुब्ध होकर यह कहते हैं कि -

"इस प्रकार की समीक्षा के चलन ने अध्ययन, चिंतन और प्रकृत समीक्षा का रास्ता ही छेंक लिया।"6

विदेशियों द्वारा साहित्य के उपनिवेशीकरण की सोची समझी गई रणनीति को शुक्ल जी किसी भी सूरत में जमने देना नहीं चाहते थे। हिंदी भाषा के प्रसंगों में वे इसीलिए गार्सा द तासी की भर्त्सना करते हैं और फ्रेडरिक पिन्कॉट का अभिनंदन।

हिंदी आलोचना की इसी पृष्ठभूमि में पाश्चात्य समीक्षकों से आतंकित हुए बगैर शुक्ल जी ने समीक्षा का अध्ययन, चिंतन पर आधारित प्रकृत रास्ता ही अपनाया। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह प्रकृत रास्ता भारतीयता का रास्ता था। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की यह सम्मति यहाँ उल्लेखनीय है -

"एक ओर तो हिंदी में शुक्ल जी आलोचना का विस्तृत भारतीय मार्ग खोलते हुए दिखाई पड़े और दूसरी ओर विलायती स्वांग भरने वाले अपनी चटक-मटक दिखाने के लिए कुछ टेढ़ा - सीधा लिखते रहे।" 7

आचार्य मिश्र ने इस प्रकृत रास्ते का अर्थ विदेशीपन से मुक्ति के अर्थ में लिया है। शुक्ल जी आलोचना पद्धति में विदेशी प्रभाव खोजने वाले वर्ग को लक्ष्य करते हुए लिखते हैं -

" हिंदी में इस प्रकार की तर्कसिद्ध, गूढ़, गंभीर एवं मार्मिक समीक्षा पद्धति के प्रवर्तक स्वर्गीय आचार्य रामचंद्र शुक्ल हैं। जो लोग यह समझते हैं कि उनकी आलोचनाएँ विदेशी समीक्षा शास्त्र पर आधृत हैं वे भ्रम में हैं। अब तक उनकी जितनी आलोचनाएँ निकली हैं वे भारतीय मानदंड को ही लेकर चली हैं। उनमें स्थान - स्थान पर देशी - विदेशी सिद्धांतों का उल्लेख उन-उन विषयों का ठीक-ठीक बोध कराने के लिए अर्थात देशी विदेशी का भेद निर्दिष्ट करने के लिए हुआ है। किसी विदेशी समीक्षा पद्धति से प्रभावित न होकर उनकी मीमांसा निरपेक्ष बुद्धि से संग्रह एवं त्याग करने वाली है।"8

साहित्य में विदेशी प्रभाव से असंबद्ध होकर केवल भारतीय विचार सरणियों का आधार लेकर चलने वाले इस आलोचक के प्रति एक और आपत्ति यह हो सकती है कि अरब - फारस की सूफी पद्धति पर काव्य रचने वाले कवियों की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए सूफी कवि मलिक मोहम्मद जायसी के पद्मावत पर विशद आलोचना लिखते समय क्या भारतीयता का बोध तिरोहित हो गया था? उत्तर है नहीं!..

बल्कि यह कहना अतिशय न होगा कि सूफी कवियों की प्रशंसा के मूल में सूफी कवियों की रचनाओं में निहित भारतीयता का आग्रह ही आलोचक के आकर्षण का मूल है।

ऊपरी भेदभावों को भूलकर मानव मानव के बीच एकत्व की स्थापना, और समरसता भारतीय संस्कृति और चिंतन पद्धति की वे महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं जिन्हें सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से पूरे मनोयोग से पुनः प्रतिष्ठित करते हुए प्रचारित - प्रसारित किया। जायसी ग्रंथावली की भूमिका में शुक्ल जी ने कहा है -

"इन कवियों ने यह दिखला दिया कि एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूपरंग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है।" 9

मानव मात्र में ही नहीं प्राणिमात्र, और यहाँ तक कि जड़ चेतन और चराचर जगत से एकात्मकता एवं अभिन्नता का भारतीय प्रतिमान शुक्ल जी के आलोचना कर्म का एक महत्वपूर्ण प्रतिमान है।

भारतीयता अर्थात भारत से जुड़ने का भाव जिसमें भारतीय विचार पद्धति , चिंतन शैली और सांस्कृतिक परंपराओं का बोध, संरक्षण, उत्थान और हस्तांतरण निहित है, शुक्ल जी के आलोचना कर्म के केंद्र में रहा।

भारतीयता शब्द में वे सभी विशेषक शामिल हैं जो समग्र रूप में भारतीय शील का बोध कराते हैं। वसुधैव कुटुम्बकम, उदात्त जीवन मूल्य, विश्व कल्याण, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना ,राष्ट्र प्रेम, सांस्कृतिक अखंडता, चराचर जगत से एकात्मकता, प्रकृति प्रेम, जीवदया, अहिंसा, समन्वय, प्रेम, मानवता का उत्थान, लोकमंगल, त्याग, करुणा सहित सभी मानवीय भावों का पूर्ण विकसित और परिष्कृत रूप भारतीय शील के प्रमुख विशेषक हैं।

इसी भारतीयता को शुक्ल जी ने अपने आलोचना कर्म में रेखांकित किया। दुखद तथ्य तो यह है कि परवर्ती आलोचकों द्वारा इस रेखांकन को मिटाने के साथ साथ शुक्ल जी और भारतीयता को लगातार काटने के प्रयास जारी हैं। बच्चन सिंह की यह सम्मति यहाँ उल्लेखनीय है -

"शुक्ल ने हिंदी की आलोचना को अपनी जीवंत शास्त्रीय परंपरा और लोक से संबद्ध किया। विडंबना तो यह है कि इधर की हिंदी आलोचना अपनी परंपरा से कटती हुई पश्चिमी औजारों से काम चला रही है। इसके साथ शुक्ल जी को काटते जाने का प्रयास भी हो रहा है। इस उधार खाते से कब तक काम चलेगा?... आलोचना के क्षेत्र में वे भारतीय अस्मिता को पुष्ट धरातल पर स्थापित करने के पक्षधर हैं।"10

साहित्यिक विधाओं के उपनिवेशीकरण और भारतीयता के हाशियेकरण की प्रवृत्ति के बीच शुक्ल जी की आलोचना किस प्रकार मानदंड की तरह अविचल है यह बात ध्यान देने योग्य है। कवि और कवि-कर्म के मान मूल्यांकन में वे भारतीय विचार पद्धतियों की आधारभूमि लेकर चलते हैं।

मानव- मानव के बीच एकात्मक अभिन्नता और समरसता की बात हम ऊपर सूफी कवियों के संदर्भ में कर आए हैं। शुक्ल जी कवि के व्यक्तित्व - कृतित्व को भारतीयता के चश्मे से देखते हैं। भारत में काव्य को कला के कौतुहल, चमत्कार और मनोरंजन से ऊपर उद्देश्यपरकता, चिंतन और मूल्य निर्माण के महत उद्देश्यों से जोड़ा गया है। इसीलिए बेखटके वे केशवदास ऐसे आचार्य के लिए कह उठते हैं -

"केशव को कवि हृदय नहीं मिला था। उनमें वह सहृदयता और भावुकता न थी जो एक कवि में होनी चाहिए।...केशव केवल उक्ति वैचित्र्य और शब्द क्रीड़ा के प्रेमी थे। जीवन के नाना गंभीर पक्षों पर उनकी दृष्टि नहीं थी। चारों ओर फैली हुई प्रकृति के नाना रूपों के साथ केशव के हृदय का सामंजस्य कुछ भी न था।"11

भावों की प्रकृत व्यंजना, सच्चा हृदयग्राही वस्तु वर्णन, सहृदयता, भावुकता, जीवन के गंभीर यथार्थ का चित्रण और प्रकृति से आत्मीयता, ये सभी वे भारतीय विचार सरणियाँ हैं जो केशवदास से कहीं न कहीं छूट गई हैं।

सहृदयता और भावुकता भारतीय विचार पद्धति और सांस्कृतिक चेतना के दो बड़े संप्रत्यय हैं जो कवि के लिए अपरिहार्य हैं। चराचर जगत से अभिन्न एकात्मकता, अद्वैतभाव और व्यक्ति हृदय में विश्व हृदय की उद्भावना का संबंध सहृदयता से है तो विविध भावों के संपूर्ण उत्कर्ष और उदात्त भूमि पर विस्तार का संबंध भावुकता से है। जायसी, तुलसी और सूर की आलोचना में शुक्ल जी ने इन विशेषकों को विशेष रूप से लक्ष्य किया है।

जायसी के रचनाकर्म में निहित भावुकता और सहृदयता के विशेषकों को लक्ष्य कर वे बड़े मुग्ध भाव से कहते हैं -

"वीरता, धीरता, ऐश्वर्य, रूप, गुण, शील सबके उत्कर्ष पर मुग्ध होने वाला हृदय उन्हें प्राप्त था।...उन्होंने सामान्य हृदय तत्व की सृष्टि व्यापिनी भावना द्वारा मनुष्य और पशु पक्षी सब को एक जीवन सूत्र में बद्ध देखा है।"12

शुक्ल जी ने जायसी के हृदय को जिन गुणों पर मुग्ध होते लक्ष्य किया है वे भारतीय जीवन मूल्य हैं जो पद्मावत की पूरी कथा में फूल में सुगंध की तरह बिखरे हुए हैं।

”

सूर की आलोचना भी वे सहृदयता, भावुकता, वाकचातुर्य और वाग्विदग्धता की कसौटी पर करते हैं। सूर ने अपनी कविता में मनुष्यता के सौंदर्य और माधुर्य पक्ष को दिखाया है।

भारतवर्ष यदि अपनी समृद्ध ज्ञान परंपरा के चलते विश्वगुरू के रूप में प्रतिष्ठित हुआ तो उसका कारण यही है कि यहाँ के मनीषियों ने किसी विषय, विचार या भाव को उसकी संपूर्ण अर्थवत्ता के साथ विस्तार की व्यापक संभावनाओं में अपनी मौलिक प्रतिभा और प्रगल्भ प्रज्ञा से अभूतपूर्व उत्कर्ष प्रदान किया। सूर को ही लीजिए, शुक्ल जी के सूर वात्सल्य और शृंगार का कोना - कोना झांक आए हैं। परवर्ती कवियों के लिए केवल जूठन ही बच जाना संभावनाओं की संपूर्णता का ही तो स्पर्श है-

“अगले कवियों की शृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ इनकी जूठी जान पड़ती हैं।” 13

शृंगार को रसराज कहना और बात है, सिद्ध करना और। शुक्ल जी ने सूरसागर को रससागर कहते हुए किसी रस की पूर्ण सिद्धि करने की भारतीय मनीषा की काव्यात्मक शक्ति को रेखांकित करते हुए कहा है -

“हिंदी साहित्य में शृंगार का रसराजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया तो सूर ने।”14

संयोग सुख के जितने प्रकार के क्रीड़ा विधान हो सकते हैं वे सब सूर ने इकट्ठे कर दिए हैं, फिर भी इस रस के दो पक्षों में से अकेले वियोग या विप्रलंभ की बात करें तो भी सूर तक पहुँचना आज तक भी परवर्ती रचनाकारों के लिए दूर की कौड़ी है। शुक्ल जी ने रचनाकर्म की इस सर्वांगपूर्णता को कवि की पहुँच कहा है -

“यदि सूर के केवल विप्रलंभ को ही लें.. तो न जाने कितने प्रकार की मानसिक दशाएँ ऐसी मिलेंगी जिनके नामकरण तक नहीं हुए हैं। मैं इसी को कवियों की पहुँच कहता हूँ।... वियोग की जितनी अंतर्दशाएँ हो सकती हैं, जितने ढंग से उन दशाओं का साहित्य में वर्णन हुआ है और सामान्यतः हो सकता है, वे सब उसके भीतर मौजूद हैं।”15

सूर द्वारा कृष्ण की मुरली पर कही गई उक्तियों में शुक्ल जी ने भारतीय संस्कृति में निहित जड़ - चेतन और चराचर जगत से मानव की संबंध भावना और एकात्मकता का आभास कराया है -

“ मुरली पर कही गई उक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य हैं, क्योंकि उनसे प्रेम की सजीवता टपकती है। यह वह सजीवता है जो भरे हुए हृदय से छलक कर निर्जीव वस्तुओं पर भी अपना रंग चढ़ाती है।.. हृदय के पारखी सूर ने संबंध- भावना की शक्ति का अच्छा प्रसार दिखाया है।”16

यह भारतीय चिंतन परंपरा और प्रज्ञा की तेजस्वी गरिमा है जो ज्ञान के एक - एक कण को बटोर लेने की ललक से शुरू होकर चराचर जगत के हित साधन के लिए निष्काम वितरण पर पूर्ण होती है। धर्म की व्यावहारिकता और वृत्तियों की उदात्तता के भारतीय प्रतिमान तुलसी के काव्य में संपूर्ण वैभव पर हैं। चित्रकूट सभा को आध्यात्मिक घटना कहते हुए शुक्ल जी ने इसी ओर संकेत किया है -

“उस समाज के भीतर नीति, स्नेह, शील, विनय, त्याग आदि के संघर्ष से जो धर्म-ज्योति फूटी उससे आस पास का सारा प्रदेश जगमगा उठा।... धर्म के इतने स्वरूपों की एक साथ योजना, हृदय की इतनी उदात्त वृत्तियों की एक साथ उद्भावना तुलसी के ही विशाल ‘मानस’ में संभव थी।.. भारतीय शिष्टता और सभ्यता का चित्र यदि देखना हो तो इस राज - समाज में देखिए।”17

सांस्कृतिक अक्षुण्णता और अखंड एकसूत्रीयता का भारतीय प्रतिमान भी शुक्ल जी के चिंतन के केंद्रीय तत्वों में से एक है। जायसी ग्रंथावली में वे बंग देश से गुजरात तक चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य और रामानंद के प्रभाव से प्रवाहित वैष्णव धर्म की अखंडता में भारत की एकसूत्रीयता दर्शाते हैं तो भ्रमरगीत सार की भूमिका में जयदेव, विद्यापति और सूर को एक सूत्र में बाँधकर भारत की सांस्कृतिक अक्षुण्णता का दिग्दर्शन कराते हैं।

भारतीय विचार सरणियों में निहित इस अक्षुण्णता के बल पर ही वे उत्तर - दक्षिण के फेर में पड़े बिना विदेशी शासन से हताश पराजित मनोवृत्ति में भक्ति आंदोलन का उद्भव देखते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ऐसे संस्कृतिचेता विचारक द्वारा शुक्ल जी की इस उद्भावना का यह कहते हुए खंडन किया जाना कि मुसलमानों का आगमन उत्तर भारत में हुआ तो भक्ति आंदोलन भी उत्तर से ही उठना चाहिये था, एक नयी बहस को जन्म देता है। सुधी विद्वान सत्यदेव मिश्र ने इस पर अपनी प्रतिक्रिया देते हुए कहा है -

“आचार्य शुक्ल के इस कारण-कार्यमूलक, युग - सापेक्ष धारणा पर डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने गंभीर आपत्ति की है और उसे ‘अत्यंत हास्यास्पद’ बताया।... संस्कृतिचेता विचारक होते हुए भी यहाँ द्विवेदी जी के बोध से भारत की सांस्कृतिक अखंडता का स्वरूप तिरोहित हो गया, अन्यथा वे उत्तर दक्षिण का प्रश्न न उठाते।”18

हिंदी साहित्य के इतिहास में विवेचित रचनाकारों के साथ-साथ विशेषतः सूर, तुलसी और जायसी की आलोचना करते हुए शुक्ल जी ने उनके रचनाकर्म में निहित भारतीय प्रतिमानों का संधान किया। शुक्ल जी की कविता संबंधी मान्यता हृदय की मुक्तावस्था तथा शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक संबंधों की रक्षा से संबद्ध है।

अकेले प्रेम अथवा प्रेम के वियोग पक्ष को लेकर आचार्य शुक्ल जी ने जितनी विविधता और संपूर्णता के साथ इन कवियों के रचनाकर्म में भारतीय विचार सरणियों को चिह्नित किया है वह अभूतपूर्व है।

नागमती की मुक्त हृदय पुकार पर पक्षियों का द्रवित होना चराचर जगत से एकात्मकता है, राम को अधर्मियों का नाश कर पृथ्वी का भार उतारने की प्रेरणा देने वाला सीता का वियोग लोक से संबद्धता और सनातन मूल्यों का प्रतिष्ठापक है, प्रेम की तुष्टि न होने पर भी प्रिय के बाल भी बांका न होने की गोपियों की अभिलाषा में हृदय की निश्छल उदारता और उदात्तता है।

घनानंद के प्रेम की पीर और मौनमधि पुकार में , लहनासिंह के उदात्त त्याग और बलिदान में भी प्रेम के उदात्तीकरण की भारतीय संचेतना है। प्रेम की सफलता-असफलता के बीच भी कर्म सौंदर्य पर मुग्ध करने वाली प्रवृत्तिमूलक भारतीय दृष्टि अभिनंदनीय है।

मानव जीवन और प्रकृति के सभी रूपों की व्यापक स्वीकृति केवल भारतीय दृष्टि में ही संभव है।

नकारात्मक से नकारात्मक भाव-रूपों में भारतीय दृष्टि उद्देश्यपरक सकारात्मकता विकसित कर सकती है यह बात शुक्ल जी ने अपनी आलोचना में गहरी स्याही से अंकित की है। दशवदननिधनकारी राम के क्रोध का सौंदर्य, कैकेयी के प्रति भरत के अमर्ष की निष्कलुषता, मातृभूमि की रूपमाधुरी पर मोहित प्राणियों के लोभ की सुंदरता इसी के प्रमाण हैं।

अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए प्रसन्नता से प्राणों की बलि देने वाले वीरों की रासो गाथाओं में, लोक के सुख- दुख, हर्ष - अमर्ष के बीच से संसार में प्रवृत्त रहकर भी भक्ति का मार्ग दिखाने वाले भक्त कवियों की वाणी में, अन्याय दमन में तत्पर वीरों की प्रशस्ति लिखने वाले भूषण आदि कवियों के कवित्तों में, रीतिबद्ध कवियों की स्वच्छंद उन्मुक्तता में, साहित्य को जीवन और जगत से जोड़ने वाली भारतेंदु युगीन कविता में, द्विवेदीयुगीन भाषायी संस्कार और चेतना में, प्रसाद कृत कामायनी के सामरस्यमूलक आनंदवाद में और निराला कृत तुलसीदास के युगबोध और मानस विस्तार के समृद्ध संसार में जैसे शुक्ल जी खुद हाथ पकड़कर सुधी पाठक को भारतीयता की पहचान कराते हुए लाते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भारतीय आलोचना पद्धति के राजोद्यान को उपनिवेशीकरण और विदेशी आग्रह की खरपतवार,तथा वैचारिक प्रदूषण की झाड़ झंखाड़ से मुक्त करके भारतीय साहित्य पर बड़ा भारी उपकार किया है। भारतीय विचार पद्धति की विराट तरुछाया में , चिंतन शैली की शीतलता और सांस्कृतिक परंपराओं की सुगंध से सुवासित इस राजोद्यान की चिरंतन हरीतिमा के लिए भारतीयता की निर्मल वैचारिक धारा से इसका निरंतर अभिसिंचन अनिवार्य है।

संदर्भ -

1. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण-1942 ई., पृष्ठ 540
2. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण-1942 ई., पृष्ठ 1
3. सिंह, डॉ बच्चन, आलोचक और आलोचना,नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, संस्करण-1992 ई., पृष्ठ 175
4. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण-1942 ई., पृष्ठ532, 533
5. पूर्वोक्त, पृष्ठ 534
6. पूर्वोक्त, पृष्ठ 564
7. मिश्र, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद, वाङ्मय विमर्श, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, 1942 ई., पृष्ठ 188
8. पूर्वोक्त, पृष्ठ 242,243
9. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, 1935 ई., पृष्ठ 2
10. सिंह, डॉ बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण - 2014 ई., पृष्ठ 390-391
11. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण-1942 ई., पृष्ठ 209-211
12. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र,1935 ई., जायसी ग्रंथावली, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, पृष्ठ 14-55
13. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, भ्रमरगीत सार, साहित्य सेवा सदन बनारस, 1934 ई., पृष्ठ 11
14. पूर्वोक्त, पृष्ठ 3
15. पूर्वोक्त, पृष्ठ 3 एवं 22
16. पूर्वोक्त, पृष्ठ 19-20
17. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, गोस्वामी तुलसीदास, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, 1935 ई., पृष्ठ 91
18. मिश्र, प्रो. सत्यदेव, रामचंद्र शुक्ल, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ, 2003 ई., पृष्ठ 59

व्याख्याता हिंदी
तिरूपति नगर, हिंडौन सिटी, जिला करौली राजस्थान, पिन 322230
मो. 9887202097 ईमेल kpathakhnd6@gmail.com

राष्ट्रवाद की अवधारणा और भारत-भारती

प्रो. निरंजन कुमार

'भारत-भारती' में समग्र राष्ट्र की कल्पना:- ***भारत-भारती मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्र को समर्पित सबसे महत्वपूर्ण रचना है। जिसका सृजन राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के उस दौर में किया गया था जब सम्पूर्ण राष्ट्र में देशभक्ति की लहर चल रही थी। ऐसे समय में मैथिलीशरणगुप्त का भारत-भारती जैसी काव्यकृति के माध्यम से भारत के गौरवमयी अतीत का व्याख्यान समाज को केवल अपने राष्ट्रीय सांस्कृतिक गौरव और प्रतिष्ठाओं से ही परिचित नहीं कराता अपितु समाज को समग्र राष्ट्र की परिकल्पना के साथ भी जोड़ता है। भारत-भारती को राष्ट्रीयता का पोषक भी कहा जा सकता है क्योंकि वह इस काव्यकृति को तीन खंडों में बाँट कर प्रथम खंड में भारत के ऐतिहासिक राष्ट्रीय अतीत की कथा बताते हैं। दूसरे खंड में भारत की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करते हुए तीसरे खंड में इसके भविष्य की परिकल्पना पर भी विचार करते हैं।***

पिछले कुछ वर्षों में बौद्धिक- वैचारिक विमर्शों में जो विषय सबसे अधिक चर्चा में रहे हैं, उनमें राष्ट्रवाद भी एक है। यह बात इस मायने में ऐतिहासिक है कि स्वाधीनता आन्दोलन के के बाद पहली बार राष्ट्रवाद पुनः राजनैतिक और बौद्धिक विमर्श के केंद्र में आया है। अभी तक के वैचारिक विमर्शों में तथाकथित उदारवादियों, मार्क्सवादियों और पश्चिम से आक्रांत बुद्धिजीवियों ने राष्ट्रवाद को तिरस्कार और घृणा से देखते हुए इसे कूड़े में फेंक देने जैसा भाव बना रखा है। दरअसल राष्ट्रवाद के प्रति इस घृणा के पीछे जो समझ है वह यूरोप में जन्मे राष्ट्रवाद के प्रभाव में बनी है, जिसका जन्म युद्धों के दौरान हुआ और जो अपनी प्रकृति में ही अन्ध एवं आक्रामक, उदारवादी मूल्यों से रहित और जनता के वास्तविक मुद्दों से दूर होती है। लेकिन इन तथाकथित बुद्धिजीवियों की यह सीमा है कि वे इतिहास और घटनाओं को जड़ता में देखने के अभ्यस्त हैं। जबकि भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणा अति प्राचीन और अत्यंत व्यापक रही है। पश्चिम परस्त तथाकथित बुद्धिजीवियों को इस संदर्भ में पश्चिम के ही एक विचारक और हावर्ड यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर स्टीफन मार्टिन वाल्ट के विचारों से सब लेना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के यथार्थवादी धारा के समर्थक प्रोफेसर स्टीफन वाल्ट अपने एक आलेख में एक सवाल उठाते हैं कि संसार में सबसे शक्तिशाली शक्ति क्या है ? फिर वे खुद ही इसका जवाब देते हैं कि न तो यह वित्तीय शक्ति बाज़ार है, और न ही धार्मिक पुनरुत्थान। न तो इंटरनेट और न ही परमाणु अस्त्र। उदाहरणों और आंकड़ों से प्रोफेसर वाल्ट प्रतिपादित करते हैं कि राष्ट्रवाद दुनिया का सबसे शक्तिशाली विचार और शक्ति है, जो व्यक्ति, समाज और देश के लिए सर्वाधिक लाभकारी है। वे आगे कहते हैं कि राष्ट्रवाद एक तरफ भ्रष्टाचार, गरीबी, बेरोजगारी आदि समस्याओं से लड़ने में मददगार होता है तो दूसरी ओर राष्ट्रवाद देश की आर्थिक प्रगति में भी अहम भूमिका निभाता है। अमेरिका तथा यूरोपीय देशों के अतिरिक्त जापान, चीन और कोरिया आदि की अभूतपूर्व आर्थिक प्रगति के पीछे राष्ट्रवाद और पूरे राष्ट्र को ध्यान में रखकर बनाई गई आर्थिक नीतियों और कार्यक्रमों की बड़ी भूमिका रही है। यही नहीं विदेशी आक्रमण और विदेशी गुलामी से बचाने में भी राष्ट्रवाद बहुत कारगर सिद्ध हुआ है। प्रो॰ वाल्ट वियतनाम जैसे देशों की मिसाल देते हैं जिसके सामने अमेरिका जैसे महाशक्तिशाली देश को मुँह की खानी पड़ी थी। प्रो॰ वाल्ट की इस व्याख्या में जो बात अंतर्निहित है, वह यह कि राष्ट्रवाद का विचार राष्ट्र में रहने वाले सभी लोगों के कल्याण की कामना से अनुप्राणित होता है, बिना किसी भेदभाव के, बिना किसी पक्षपात के। और, यह कि राष्ट्र की प्रगति सभी लोगों की तरक्की से जुड़ी होती है। हिंदी साहित्य के संदर्भ में विचार करें तो राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रवाद के आरम्भिक पुरोधाओं में से हैं, और उनका काव्य 'भारत-भारती' साहित्यिक धरातल पर राष्ट्रवाद का प्रथम समग्र आख्यान।

"हम कौन थे, क्या हो
गये हैं, और क्या होंगे अभी
आओ विचारें आज मिल कर, यह समस्याएँ सभी"

'भारत-भारती' में उल्लिखित उपरोक्त पंक्तियों के रचयिता मैथिलीशरण गुप्त जिस काव्य के कारण जनता के प्राणों में रचबस- 'राष्ट्रकवि' कहलाए, वह कृति भारत-भारती ही है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में पहले-पहल हिंदी प्रेमियों का सबसे अधिक ध्यान खींचने वाली पुस्तक भी यही है। इसकी लोकप्रियता का आलम यह रहा है कि इसकी प्रतियाँ रातोंरात खरीदी गईं। प्रभात फेरियों, राष्ट्रीय आंदोलनों, शिक्षासंस्थानों, प्रातःकालीन प्रार्थनाओं में 'भारत- भारती' के पद गाँवों-नगरों में गाये जाने लगे।

'भारत-भारती' में समग्र राष्ट्र की कल्पना:- भारत-भारती मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्र को समर्पित सबसे महत्वपूर्ण रचना है। जिसका सृजन राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के उस दौर में किया गया था जब सम्पूर्ण राष्ट्र में देशभक्ति की लहर चल रही थी। ऐसे समय में मैथिलीशरणगुप्त का भारत-भारती जैसी काव्यकृति के माध्यम से भारत के गौरवमयी अतीत का व्याख्यान समाज को केवल अपने राष्ट्रीय सांस्कृतिक गौरव और प्रतिष्ठाओं से ही परिचित नहीं कराता अपितु समाज को समग्र राष्ट्र की परिकल्पना के साथ भी जोड़ता है। भारत-भारती को राष्ट्रीयता का पोषक भी कहा जा सकता है क्योंकि वह इस काव्यकृति को तीन खंडों में बाँट कर प्रथम खंड में भारत के ऐतिहासिक राष्ट्रीय अतीत की कथा बताते हैं। दूसरे खंड में भारत की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करते हुए तीसरे खंड में इसके भविष्य की परिकल्पना पर भी विचार करते हैं। सन 1912 में लिखा गया भारत-भारती देश में राष्ट्रव्यापी आंदोलन को खड़ा करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। गुप्त जी ने भारत-भारती की रचना के विषय में स्वयं प्रस्तावना में लिखा है कि "यह बात मानी हुई है कि भारत की पूर्व और वर्तमान दशा में बड़ा भारी अन्तर है। अन्तर न कहकर इसे वैपरीत्य कहना चाहिए। एक वह समय था कि यह देश विद्या, कला-कौशल और सभ्यता में संसार का शिरोमणि था और एक यह समय है कि इन्हीं बातों का इसमें शोचनीय अभाव हो गया है। जो आर्य जाति कभी सारे संसार को शिक्षा देती थी वही आज पद-पद पर पराया मुँह ताक रही है! ठीक है, जिसका जैसा उत्थान, उसका वैसा हीं पतन! परन्तु क्या हम लोग सदा अवनति में ही पड़े रहेंगे? हमारे देखते-देखते जंगली जातियाँ तक उठकर हमसे आगे बढ़ जाएँ और हम वैसे ही पड़े रहेंगे?"

गुप्त जी रचना की शुरुआत ही पावन राष्ट्र के गुणगान के साथ करते हैं-

"मानस-भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती-
भगवान! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती।"

कृष्णदत्त पालीवाल, मैथिलीशरण गुप्त रचनावली में लिखते हैं कि "भारत-भारती में भारतीय नवजागरण का सूर्य उदित हो गया है। ध्यान देने की बात यह भी है कि इस रचना के पीछे 'मुसद्दस-ए-हाली' की प्रेरणा भी सक्रिय थी। कवि हाली के इस नवजागरण-काव्य ने युग को हिला दिया। इस प्रेरणा के साथ ही गुप्त जी ने कैफ़ी के 'भारत दर्पण' से भी राष्ट्रीयता का नया विश्वास पाया। इन दोनों कौमी नज़्मों ने गुप्त जी के देशप्रेमी मन को नई दृष्टि दी और वह 'भारतवर्ष में गूँजे हमारा भारती' का आह्वान करने लगे।"

गुप्त जी भारत के अतीत की व्याख्या में भारत की श्रेष्ठता, हमारा उद्भव, हमारे पूर्वजों, आदर्शों, सभ्यताओं, भारतीय अवतारों हिंदू धर्म, आत्माभिमान आदि विषयों पर खुल कर लिखते हैं। वह भारत को भारत के संस्कृति बहुल राष्ट्र का दर्पण दिखाते हैं-

"भू-लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरी हिमालय और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है।
उसका कि जो ऋषिभूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है।"

यह स्वदेश-प्रेम को दर्शाते हुए वर्तमान और भावी दुर्दशा से उबरने के लिए समाधान खोजने का एक सफल प्रयोग है। भारतवर्ष के संक्षिप्त दर्शन की काव्यात्मक प्रस्तुति "भारत-भारती" निश्चित रूप से किसी शोध रचना से कम नहीं है। गुप्तजी की सृजनता की दक्षता का परिचय देनेवाली यह काव्यकृति कई सामाजिक आयामों पर विचार करने को विवश करती है। भारतीय साहित्य में भारत-भारती सांस्कृतिक नवजागरण का ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में प्रकट होती है। गुप्त जी इस रचना में एक ऐसे राष्ट्र के अतीत को दिखाते हैं जो अपने में सम्पन्न राष्ट्र था और पूर्व का एक ऐसा देश था जहाँ से विश्व ने विकास सीखा। वह लिखते हैं कि पश्चिम सदा से भारत से ज्ञान और कला सीखता रहा है। सभी कलाओं और सभ्यताओं के साथ भारत शुरू से ही विश्व गुरु रहा है-

"है आज पश्चिम में प्रभा जो पूर्व से ही है गई,
हरते अँधेरा यदि ना हम होती ना खोज नई नई।
इस बात की साक्षी प्रकृति भी है अभी तक सब कहाँ,
होता प्रभाकर पूर्व से ही उदित, पश्चिम से नहीं।"

बाबू गुलाबराय का मत है कि- "गुप्त जी की कविता में राष्ट्रीयता और गांधीवाद की प्रधानता है।" उनकी रचनाओं में सत्याग्रह, मानवतावाद, अहिंसा, विश्व-प्रेम और श्रमजीवियों के प्रति सम्मान का

भाव मिलता है। अपने युग को नवीन स्फूर्ति प्रदान करते हुए गुप्त जी ने जनता को जाग्रत करने में अपनी भूमिका का सफल निर्वाह किया है।

डॉ. सत्येन्द्र ने उनके विषय में लिखा है- "राष्ट्रीयता गुप्त जी का उद्देश्य है, पर संस्कृति शून्य राष्ट्रीयता उन्हें ग्राह्य नहीं है।" निःसन्देह गुप्त जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीयता से उद्दीप्त भाव को जन-जन के हृदय में भरने का प्रयास किया और उन्हें पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त होने की प्रेरणा दी। उदाहरणस्वरूप कुछ अन्य पंक्तियों को देखा जा सकता है-

संसार को पहले हमीं ने ज्ञान-शिक्षा दान की,
आचार की, व्यापार की, व्यवहार की, विज्ञान की।

भारत-भारती में स्त्री; अतीत और वर्तमान :- गुप्त जी ने समाज में नारी को काव्य का केंद्र बनाकर अनेक रचनाएँ लिखी हैं। भारत-भारती में भी गुप्त जी अनेक स्थानों पर स्त्रियों को भारतीय समाज का महत्वपूर्ण अंग घोषित करते हैं। भारत के अतीत की व्याख्या में वह बताते हैं कि भारतीय समाज की स्त्रियाँ शुरुआत से ही सशक्त भूमिका में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलती आई हैं। वह उदाहरण देकर बताते हैं कि भारतीय समाज में स्त्रियों को बराबर के हक़ प्राप्त थे और उनकी स्थिति बहुत मज़बूत हुआ करती थी-

"केवल पुरुष ही थे न वे जिनका जगत को गर्व था,
गृह-देवियाँ भी थीं हमारी देवियाँ ही सर्वथा।
था अत्रि-अनुसूया-सदृश्य गार्हस्थ्य दुर्लभ स्वर्ग में,
दाम्पत्य में वह सौख्य था जो सौख्य था अपर्ग में।"

'वर्तमान खंड' में वह लिखते हैं कि किस प्रकार बाहरी प्रभाव के कारण भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति ख़राब होती चली गई। स्त्रियाँ अनेक कुप्रथाओं में बँध कर समाज के हाशिए पर खड़ी कर दी गईं :

"प्रतिवर्ष विधवा-वृंद की संख्या निरंतर बढ़ रही,
रोता कभी आकाश है, फटती कभी हिल कर मही।
हाँ ! देख सकता कौन ऐसे दग्धकारी दाह को,
फिर भी नहीं हम छोड़ते हैं बाल्य-वृद्ध-विवाह को।"

भारतीय समाज में स्त्रियाँ मुख्यधारा से अलग हो जाती हैं और समाज उन्हें उठाने की बजाय धकेलने का काम करता है-

"बिकता कहीं वर है यहाँ बिकती कहीं कन्या कहीं,
क्या अर्थ के आगे हमें अब इष्ट आत्मा भी नहीं।"

"ऐसी उपेक्षा नारियों की जब स्वयं हम कर रहे,
अपना किया अपराध उनके शीश पर है धार रहे।"

गुप्त जी यहाँ अतीत के गौरव से निकल कर वर्तमान में उपेक्षित स्त्री के जीवन के इर्द-गिर्द कुछ लकीरें खींच कर समाज में उसकी स्थिति का विश्लेषण ही नहीं करते अपितु उसे दोबारा मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास भी करते हैं। उन्होंने भारतीय अतीत की प्रशंसा करते हुए लिखा है-

"आये नहीं थे स्वप्न में भी, जो किसी के ध्यान में,
वे प्रश्न हल हुए थे, एक हिन्दुस्तान में।"

भारत-भारती में सामाजिक समस्या :- राष्ट्रवाद समाज निरपेक्ष नहीं होता, और इससे प्रभावित कोई भी रचना अपने समय और समाज की परिस्थितियों से कटी नहीं होती। क्योंकि कवि अपनी रचना समाज में ही करता है। आदिकाल हो या मध्यकाल या आधुनिककाल सभी कालों में समाज की उपस्थिति रहती है। भारत-भारती भी इस प्रभाव से अछूता नहीं है। समाज में चलने वाली अनेक कुप्रथाओं और उनके दुष्प्रभाव को हम गुप्त जी की काव्यकृति में देख सकते हैं। पुनर्जागरण काल मुख्य रूप से समाज सुधारों का समय भी रहा जब राजा राम मोहन राय जैसे समाज-सुधारक समाज में बाल-विवाह और विधवा-विवाह जैसी अनेक कुप्रथाओं को समाज में जड़ से समाप्त करने का प्रयास कर रहे थे। ऐसे समय में गुप्त जी की लेखनी भी भारत में उपस्थित अनेक समस्याओं पर प्रहार करती है। गुप्त जी भारत में बाहर से आने वाले विदेशी आक्रमणकारियों का भी पुरज़ोर विरोध करते हैं। जिन्होंने भारत में आकर इस समाज पर अपना नकारात्मक प्रभाव डाला-

"हिंदू समाज कुरीतियों का केंद्र जा सकता कहा,
ध्रुव धर्म-पथ में कु-प्रथा का जाल सा है बिछ रहा।
सु-विचार के साम्राज्य में कु-विचार की अब क्रांति है,
सर्वत्र पद पद पर हमारी प्रकट होती भ्रांति है।"

भारत-भारती में गुप्त जी की दृष्टि समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़े उस दलित व्यक्ति पर भी जाती है जिसकी दशा और खराब होती जा रही है। वह कहते हैं कि जब कुशासन काल में सभी वर्ण बुरी परिस्थितियों में घिरे हुए हैं तो शूद्र कुल का तो हाल सबसे बुरा होगा-

"जब मुख्य वर्ण जातियों का हाल ऐसा है यहाँ,
तब क्या कहें उस शूद्र-कुल का हाल कैसा है यहाँ?"

गुप्त जी ने भारतीय किसान को समाज का प्रमुख अंग माना है। किसान को भारतीय समाज की रीढ़ की हड्डी माना गया है। वह सभी के लिए अन्न उगाता है और ख़ुद ही अन्न नहीं खा पाता। कृषि भारतीयों का प्रमुख रोज़गार रहा है परंतु अंग्रेजी शासन में कृषक की स्थिति अत्यंत दयनीय हो गयी है। कवि कहते हैं कि हे विधाता कृषक होने से अच्छा तो तू उसे भिक्षुक बना दे-

"कृषि कर्म की उत्कर्षता सर्वत्र विश्रुत है सही,
पर देख अपने कृषकों को चित में आता यही -
हाँ दैव ! क्या जीते हुए आजन्म मरना था उन्हें?
भिक्षुक बनाते पर विधें ! कृषक ना करना था उन्हें।"

मैथिलीशरण गुप्त ने भारत-भारती में भारतीय संस्कृति से संबंधित आस्था को व्यक्त किया है। भारतीय संस्कृति में गाय का महत्व बहुत अधिक है। गाय दूध देने के अलावा अन्य कार्यों में भी हमारी सहायता करती है। जैसे खेतों में हल चलाने वाले बैल गाय से ही मिलते हैं, गाय से प्राप्त पंचगव्य मानव-मात्र के लिए अधिक लाभदायक है। कवि ने वैज्ञानिक-तकनीकी उपकरणों के बढ़ते प्रयोगों पर व्यंग्य किया है-

"यदि तुम कहो-अब हम कलों से काम लेंगे सभी;
तो पूछती हैं हम कि क्या वे दूध भी देंगी कभी"।

गुप्त जी ने वैज्ञानिक तकनीकी उपकरणों के दूरगामी परिणाम पहले से समझ लिया था। आधुनिक समय में उपकरणों की महत्ता अधिक होने से भारतीय संस्कृति में गाय व बैलों की कमी होती चली गई। जहाँ गाय का शुद्ध दूध, मक्खन, घी आदि प्राप्त होते थे वहाँ आधुनिक उपकरणों के तहत् मिलावटी दूध, घी आदि मिलते हैं जिससे व्यक्ति के स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ रहे हैं तथा नई-नई बीमारियाँ जन्म ले रही हैं।

भारत-भारती में कवि ने भारतीय संस्कृति में बदलते हुए मूल्यों को चित्रित किया है। समाज में विवाह का बहुत अधिक महत्व है। विवाह होने के बाद नारी अनेक प्रकार के सुहाग चिह्नों का प्रयोग करती है। मैथिलीशरण गुप्त भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव को दिखाते हुए स्वदेशी के महत्व को अप्रत्यक्ष रूप से दर्शाते हैं-

वे चूड़ियाँ तक हैं विदेशी, देख लो बस हो चुका;
भारत स्वकीय सुहाग भी परकीय करके खो चुका है।।

गुप्त जी ने धर्म के अलग-अलग मापदण्डों को भी भारत-भारती के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है। भारतीय संस्कृति में धर्म को सर्वोपरि माना गया है। प्राचीन ग्रंथों में धर्म की प्राप्ति से चारों फलों की प्राप्ति मानी जाती है। सुखों-दुःखों का भोगना मात्र धर्म पर ही निर्भर है। यहाँ धर्म का अर्थ अत्यंत व्यापक है पश्चिम के रिलिजन या मजहब की तरह संकुचित नहीं। गुप्त जी धर्म के समर्थकों को इन फलों का ज्ञान देते हुए कहते हैं-

निज धर्म्म का पालन करो, चारों फलों की प्राप्ति हो,
दुःख-दाह, आधि-व्याधि सबकी एक साथ समाप्ति हो।

कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत-भारती में देश-प्रेम में लीन चेतना को भी दृष्टिगत किया है। भारतीय संस्कृति में राष्ट्रप्रेम को महत्व दिया गया है। कवि का मन देश के प्रति त्याग बलिदान की भावना से युक्त है।

उन्नति तथा अवनति प्रकृति का नियम एक अखंड है,
चढ़ता प्रथम जो व्योम में गिरता नहीं वही मार्तण्ड है।
पर सोच है केवल वही वह नित्य गिरता ही गया,
जब से फिरा है दैव इससे नित्य फिरता ही गया।

कहने का अभिप्राय यह है कि कवि राष्ट्र-प्रेमी है। राष्ट्र के प्रति उनका प्रेम उच्च स्तरीय है। आधुनिक समय में व्यक्ति राष्ट्र के प्रति मन में जिज्ञासा, चेतना, उत्साह का भाव दिखाई नहीं दे रहा है। वह वैयक्तिक स्तर पर केवल भावना को ही महत्व दे रहा है। देश के प्रति मर-मिटने की भावना आज व्यक्ति में नहीं है। जहाँ पहले देश के बारे में सोचा जाता था देश की उन्नति कैसे हो, क्या कार्य किए जाएँ जिससे विकास हो। अब वही सोच आत्मकेंद्रित हो गई है। व्यक्ति केवल अपने बारे में ही सोच रहा है। भ्रष्टाचार फैल रहा है। उन्नति अब अवनति में बदल गई है-

भारत देश ही एक ऐसा देश है। जिसमें अनेक संस्कृतियों का प्रादुर्भाव है। भारतीय संस्कृति में धर्म, परंपरा, रूढ़ियों, विघटन, अंधविश्वास आदि अनेक मूल्यों को भी गुप्त जी ने 'भारत-भारती' में चित्रित किया है। समयानुसार व्यक्ति की सोच, विचार आदि सभी में परिवर्तन का भाव आ गया है। लेकिन कवि नवीन मूल्यों के पक्षधर हैं।

है सिद्धि मूल यही कि जब जैसा प्रकृति का रंग हो;
तब ठीक वैसा ही हमारी कार्य्य कृति का ढंग हो।
प्राचीन हो कि नवीन छोड़ो रूढ़ियाँ जो हों बुरी;
बनकर विवेकी तुम दिखाओ हंस जैसी चातुरी।।

गुप्त जी ने वातावरण के अनुकूल व्यक्ति को बदलने की बात कही है। जीवन परिवर्तनशील है, समय के साथ जीवन मूल्य में भी बदलाव आना स्वाभाविक है। पुरानी परंपराओं, कुरीतियों, रूढ़ियों के साथ चलकर व्यक्ति विकास नहीं कर सकता। आधुनिक समय में व्यक्ति पुरानी रूढ़ियों के साथ नहीं चल सकता। उसे समयानुसार बदलना होगा। विचार बदलेंगे तो रूढ़ियाँ भी बदलेंगी। बौद्धिक विकास के साथ-साथ देश भी विकास करेगा। कवि ने रूढ़ियों, जाति-पांति और समाज में रह रहे व्यक्तियों के प्रति भेदभाव का विरोध किया है। उनके लिए मानव महत्वपूर्ण हैं।

कवि ने भारतीय संस्कृति में धर्म, राष्ट्र का ही वर्णन नहीं किया, अपितु समाज में रह रहे व्यक्ति की संवेदना को भी चित्रित किया है।

समाज में अनेक वर्गों के लोगों के जीवन का चित्रण उनके यहाँ मिलता है। उनमें से निम्न वर्ग का मर्मस्पर्शी वर्णन है। समाज राष्ट्र से जुड़ा है। समाज में व्यक्ति अनेक परस्थितियों से घिरा हुआ है जैसे बेरोजगारी, गरीबी व आर्थिक समस्याओं से जुड़ा हुआ है। गरीबी ने व्यक्ति के मन की इच्छाओं, आकांक्षाओं, स्वप्नों आदि पर जैसे अंकुश लगा दिया हो। व्यक्ति का जीवन निराशाओं और कुंठाओं से त्रस्त हो गया है। जीवन जीने की इच्छा खत्म हो गई है। कवि ने इन स्थितियों का हृदय विदारक चित्रण किया है-

वह पेट उनका पीठ से मिलकर हुआ क्या एक है?
मानो निकलने को परस्पर हड्डियों में टेक है।
निकले हुए हैं दाँत बाहर, नेत्र भीतर हैं धँसे;
किन शुष्क आँतों में न जाने प्राण उनके है फँसे।
अविराम आँखों से बरसता आसुँओं का मोह है,
है लटपटाती चाल उनकी छटपटाती देह है।
गिरकर कभी उठते यहाँ, उठकर कभी गिरते वहाँ;
घायल हुए से घूमते हैं वे अनाथ जहाँ तहाँ।।

कहने का अर्थ यह है कि गरीबी के कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व ही नहीं अस्तित्व भी खो गया है। कवि ने आर्थिक व्यथा से व्याप्त समाज का मार्मिक अंकन किया है।

भारत-भारती में गुप्त जी ने समाज में व्याप्त अनेक आडंबरों, स्वार्थ परायणता, रूढ़ियों के प्रति विरोध, साधु-संतों की ढोंग-विद्या आदि पर कटाक्ष किया है। वह कहते हैं-

ब्राह्मण बढ़ावे बोध को, क्षत्रिय बढ़ावे शक्ति को;
सब वैश्य निज वाणिज्य को त्यों शूद्र भी अनुरक्ति को।
यों एकमन होकर सभी कर्तव्य के पालक बनें,
तो क्या न कीर्ति-वितान चारों ओर भारत के तनें?

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी संस्कृति पर गर्व होता हैं। रीति-रिवाज, प्राकृतिक लोक-परिवेश आदि सभी इस संस्कृति में समाहित हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य 'भारत-भारती' में भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल रूप का चित्रण तथा रूढ़ियों, परम्पराओं, संस्कारों का विरोध कर नवीन मूल्यों की ओर उन्मुख होकर अपने कृतित्व को समृद्ध किया है।

समग्रतः कहा जा सकता है कि राष्ट्र कवि मैथिलीशरणगुप्त जी ने अपनी अन्य कृतियों की भाँति भारत-भारती में भी भारतीय संस्कृति की महानता दिखाते हुए उसका पुनः आख्यान तो किया ही किया है साथ ही राष्ट्रवाद की भारतीय अवधारणा से प्रभावित हो भारतीय संस्कृति के आधारभूत जीवन मूल्यों, धर्म आधारित मान्यताओं तथा लोक कल्याणकारी जीवनदृष्टि से भारतवासियों को पुनः परिचित कराने का सफल प्रयास किया है। रामायण कथा पर आधारित 'साकेत' और 'पंचवटी' हो, या महाभारत काल के आधार पर 'जयद्रथ वध', बौद्ध काल की 'यशोधरा' हो, या सिखों के गुरुओं पर 'गुरु तेग बहादुर' और 'गुरुकुल', इस्लाम से जुड़ी 'काबा और कर्बला' तथा कार्ल मार्क्स की पत्नी जैनी पर लम्बी कविता हो या राजपूत काल पर 'सिद्धराज' तथा वर्तमान काल पर 'भारत-भारती' आदि; भारतीय जीवन का ऐसा कोई काल नहीं है जिस पर गुप्त जी की कलम न उठी हो। वे हमारी जातीय स्मृति, जातीय अस्मिता और जातीय स्वाभिमान के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। वे सच्चे अर्थों में राष्ट्रकवि हैं, और इसीलिए राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद उनके काव्य का मुख्य स्वर है।

संदर्भ:

1. वासुदेव शरण अग्रवाल (संपा.) - राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनंदन ग्रंथ
2. नगेंद्र - मैथिलीशरण गुप्त : पुनर्मूल्यांकन
3. डॉ नगेंद्र - साकेत एक अध्ययन: मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' का समीक्षात्मक अध्ययन
4. सूर्यप्रसाद दीक्षित - राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और साकेत
5. आनंद प्रकाश दीक्षित (संपा) - मैथिलीशरण गुप्त
6. कृष्ण दत्त पालीवाल - मैथिलीशरण गुप्त प्रासंगिकता के अंतः सूत्र
7. मैथिलीशरण गुप्त, जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी (संपा.) - राष्ट्र-वाणी
8. कृष्णदत्त पालीवाल- मैथिलीशरण गुप्त
9. प्रभाकर श्रोत्रिय - अतीत के हंस : मैथिलीशरण गुप्त
10. ललित शुक्ल (संपा)- मैथिलीशरण गुप्त : युग और कविता
11. प्रभाकर माचवे- मैथिलीशरण गुप्त
12. विजय अग्रवाल (संपा) - राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त
13. रमेश प्रसाद सिन्हा- मैथिलीशरण गुप्त की काव्य भाषा
14. कृष्णदत्त पालीवाल (संपा)- मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली

हिंदी विभाग, कला संकाय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली में प्रोफेसर हैं;
पूर्व में अनेक अमेरिकी विश्वविद्यालयों में प्राध्यापक रहे हैं
मो॰ 9717294790

तारा

पारमिता शतपथी

सुधीर और उसकी जोड़ी आदर्श थी, स्वयंसंपूर्ण। किसी में कोई खोट नहीं थी। चलचित्र की कहानी-सी थी। उनकी मुलाकात हुई थी इंजीनियरिंग पढ़ते समय, प्रेम और विवाह। दोनों ओर के परिवारों को कोई आपत्ति नहीं थी किसी बात को लेकर। जाति भी न जाने कैसे एक ही थी। सुधीर अपने माँ-बाप का इकलौता बेटा, खूब होनहार छात्र। सिर्फ वही नहीं, सभी विश्वास करते थे कि उसका भविष्य काफी उज्ज्वल है। उसे अच्छी तनख्वाह वाली नौकरी मिलेगी, इसमें संदेह नहीं था। हुआ भी यही। सुधीर ने इंजीनियरिंग खत्म करके मैनेजमेंट में दाखिला लिया और ठीक दो साल बाद एक नामी-गिरामी बहुराष्ट्रीय कंपनी में मोटी तनख्वाह वाली नौकरी मिल गई बंगलौर में। इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी करने के बाद लेकिन वह कहीं बाहर नहीं गई नौकरी करने। सुधीर उससे बार-बार कहता था कि तुम्हें नौकरी करने की ज़हमत उठाने की ज़रूरत नहीं है।

दोनों पैर कल्लाने लगे थे। थोड़ा रुकी वह और सुनहरे रंग की हाईहिल-जूतियाँ उतार लीं पैरों से एक-एक करके। दाहिने हाथ में जूतियाँ लटकाए, बाएँ हाथ से प्लेट्स की जगह से साड़ी पकड़कर ज़रा ऊपर करके फिर से चल पड़ी वह। सुनहरे रंग की ये जूतियाँ इंटरनेट से महीने भर पहले खरीदी थीं उसने। सुधीर ने देखकर कहा था खूब सुंदर लगेंगी उसके पैरों में। आज एक खास पार्टी के लिए सुनहरी किनारी में ज़रदोजी के काम वाली साड़ी के साथ मैच करके पहली बार ये जूतियाँ पहनी थीं उसने।

थोड़ी रुकी और दाहिनी ओर के अँधेरे को देखा। ध्यान से देखने पर झाड़ीदार जंगल-सा लग रहा था। न जाने कौन-सी जगह है यह? कहाँ आ गई वह? अचानक उसे याद आया कि चलते-चलते वह काफी दूर निकल आई है। चली तो नहीं, समझ लो आधा दौड़ते हुए और आधा जल्दी-जल्दी चलकर आई है। दौड़ इसलिए रही है कि उसे लग रहा है मानों कोई उसके पीछे-पीछे दौड़ रहा है।

खड़ी हो गई वह। दो बार जोर-जोर से साँसें छोड़ी और पीछे मुड़कर देखा। पीछे कोई नहीं था। कोई उसके पीछे दौड़ते हुए उसे दौड़ा नहीं रहा था। पर उसे ऐसा लग रहा था... ''दाहिने पैर की सुंदर, सुनहरी हाईहिल जूतियों को देखा उसने एक मिनट और हाथ में उठाकर खूब जोर से उन्हें फेंक दिया दाहिने ओर के जंगल में।'' सिर्फ जूतियाँ ही नहीं, उसकी इच्छा हो रही थी कि पहनी हुई सुनहरे ज़रदोजी के काम वाली वह साड़ी भी अपने बदन से उतार दे और उसके छोटे-छोटे टुकड़े करके इसी जंगल में फेंक दे। न जाने कहाँ से सुधीर ने उसके लिए वह साड़ी लाई थी और साड़ी देखते ही उसका चेहरा खिल उठा था। सुधीर ने कहा था, अपनी चंपकवर्णी प्रिया के लिए...छिः!...उसका चेहरा विकृत हो उठा।

पुनः आगे बढ़ने लगी वह। पर ज्यादा दूर नहीं चल सकी। नंगे पैर होने की वजह से रास्ते के कंकड़ और काँटे बार-बार चुभ रहे थे। शायद कट भी गए हैं पैर और खून बह रहा है। बहता रहे। उस ओर ध्यान नहीं था उसका। पर वह और कितना चले? जा कहाँ रही है? समझ गई कि वह खूब सुनसान जंगली इलाके में खड़ी है। सड़क भले ही पसरी हुई, और वह अब तक सड़क पर चलती चली जा रही है, कोई यान-वाहन नहीं चल रहा था, सड़क पर रोशनी नहीं थी, अंधेरा था, किट-किट अंधेरा चारों ओर। उसने आकाश की ओर देखा। बिना चाँद का साफ आकाश। असंख्य तारों से भरा निर्मल आकाश। दोनों ओर देखने पर झीने अंधेरे के पीछे घना अंधेरा। ऐसा लग रहा था मानों अंधेरे की दीवार बनी हो खूब मोटी और मज़बूत! शायद रात के अंधेरे में ये दीवार बने पड़े-पौधे हो सकते हैं, सोच रही थी वह।

कहीं वह चंदका जंगल में तो नहीं घुस आई? क्या जंगल में इस तरह पैदल चलते हुए घुसा जा सकता है। क्या आगे की सड़क भी ऐसी

ही होगी? ऐसा सोचते हुए वह सिहर उठी। सुना है कि इस जंगल में हाथियों का झुंड इसी तरह रात के प्रथम प्रहर में निकलता है।

लकड़बग्घा, भेड़िया तरह-तरह के साँप तो भरे पड़े हैं। पर न जाने क्यों उसका डर मिट गया। भला और क्या हो जाएगा? ज्यादा से ज्यादा वे लोग मार डालेंगे उसे और वह मर जाएगी। वैसे भी वह कौन-सा ज़िंदा है पिछले एक घंटे से! शायद जानवर ही अच्छे हैं, इन इंसानों से! तुम्हें पता है कि बाघ मार डालेगा, खा जाएगा। हाथी पैरों से मसल देगा या सूँड़ से उठाकर पटक देगा। साँप डस लेगा सामने पाकर और विष की ज्वाला से तुम मर जाओगी। बल्कि इन्हीं में से वह भी एक होती तो अच्छा होता। वह अपना स्वभाव लिए जी रही होती। इस तरह बाहर और भीतर दो तरह की या कई तरह की न हुई होती। आने दो किसी जानवर को, देखें कैसा सलूक करता है वह उसके साथ। शायद वह समझ जाए उसका प्यार, उसका स्नेह और अपना ले उसे! कुछ अनमनी-सी हो गई वह। और आगे जाने की हिम्मत नहीं बची थी उसमें। पैर, घुटने, शरीर सबमें दर्द होना शुरू हो गया था। सबसे अधिक दर्द होने लगा था सिर में। उसे लगा मानों गिर जाएगी वह। आँखों के आगे नाच उठा टीवी का दृश्य, आतंकवादियों के हवाई जहाज के आक्रमण से ढहते अमेरिका के वर्ल्ड ट्रेड सेंटर की दो खूब ऊँची मीनारें! कागज के ढाँचे की तरह धुएँ के साथ ढह गई थीं दो जुड़वा मीनारें। उनके भीतर के इंसान, कलपुर्ज़े, करीने से सजे दफ्तर, कमरे सब कुछ मानों रेत, मिट्टी की तरह ढह रहे थे, समा रहे थे, जल रहे थे, निश्चिह्न हो रहे थे। घुल रहे हैं, जल रहे हैं, निश्चिह्न हो रहे हैं उसके अंदर साल दर साल से बने सपने, भावनाएँ, अपने ही गुप्त अहंकार और। और सब कुछ...

यहीं गिर पड़ेगी वह, चित्त लेट जाएगी इसी सड़क पर, चारों ओर जंगल होगा, अंधेरा होगा, आकाश में इसी तरह असंख्य तारे टिमटिमा रहे होंगे। और कोई नहीं होगा।

सचमुच में वह रास्ते पर बैठ गई। दोनों पैर लंबे करके, शरीर के दोनों ओर दोनों हाथ ज़मीन से टिकाकर देह का बोझ डालते हुए वह बीच रास्ते में बैठ गई। सिर पीछे झुकाकर आसमान की ओर देखा। अचानक एक उल्का धप्प से जलते हुए आतिशबाजी के रॉकेट की तरह तेजी से उड़कर बुझ गया। बचपन में माँ कहा करती थी, उल्का गिरा चिरंजीवी रहो। हॉस्टल में सहेलियाँ कहा करती थीं, आँखें बंद करके कुछ इच्छा कर। माँग गिरते हुए बुझते हुए तारा से। जो मांगों वह मिलेगा। मनोकामना पूरी होंगी।

''क्या माँगा तूने?'' हँसते.हँसते लोटपोट हो जाती थी तान्या। ''माँगा ना कि किसी भी तरह से सुधीर तेरा बनकर रहे। किसी दूसरी लड़की को नज़र उठाकर न देखे। यही ना?'' आँख मारकर, होंठ दबाकर कहती थी तान्या। होंठ दबाकर मन ही मन मुस्कराती थी वह। हाँ, यही नहीं तो और क्या? यदि नीचे गिरते हुए उल्का से कुछ माँगना ही है और वह इच्छा यदि वाकई पूरी होती है, तो सुधीर के अटूट प्यार के सिवाय वह और माँगे भी क्या?''

इस वक्त उसकी आँखों के आगे गिरते उल्का से क्या माँगे वह? कहूँ क्या कि जो-जो कुछ पहले माँगा था, वह सब वापस कर रही हूँ, मुझे मेरी पिछली ज़िंदगी फिर से लौटा दो, सुधीर से मुलाक़ात होने का वह पिछला समय।

सुधीर और उसकी जोड़ी आदर्श थी, स्वयंसंपूर्ण। किसी में कोई खोट नहीं थी। चलचित्र की कहानी-सी थी। उनकी मुलाकात हुई थी इंजीनियरिंग पढ़ते समय, प्रेम और विवाह। दोनों ओर के परिवारों को कोई आपत्ति नहीं थी किसी बात को लेकर। जाति भी न जाने कैसे एक ही थी। सुधीर अपने माँ-बाप का इकलौता बेटा, खूब होनहार छात्र। सिर्फ वही नहीं, सभी विश्वास करते थे कि उसका भविष्य काफी उज्ज्वल है। उसे अच्छी तनख्वाह वाली नौकरी मिलेगी, इसमें संदेह नहीं था। हुआ भी यही। सुधीर ने इंजीनियरिंग खत्म करके मैनेजमेंट में दाखिला लिया और ठीक दो साल बाद एक नामी गिरामी बहुराष्ट्रीय कंपनी में मोटी तनख्वाह वाली नौकरी मिल गई बंगलौर में। इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी करने के बाद लेकिन वह कहीं बाहर नहीं गई नौकरी करने। सुधीर उससे बार-बार कहता था कि तुम्हें नौकरी करने की ज़हमत उठाने की ज़रूरत नहीं है। क्यों अपना सुंदर चेहरा बर्बाद करोगी? मेरी तनख्वाह कोई कम नहीं पड़ेगी। उससे तुम हर तरह का ऐश करके आराम से रह सकती हो। देखना, मैं तुम्हारे लिए क्या करता हूँ!

माँ-बाप भी यही चाहते थे। सुधीर से उसके रिश्ते के बारे वे लोग उसकी पढ़ाई के समय से जानते थे और सुधीर की इच्छा के प्रति उनका समर्थन भी था। वह खुद भी अपने कैरियर को लेकर चिंतित नहीं थी। उस वक्त उसकी दुनिया सुधीरमय हो गई थी और सुधीर के पास दुनिया के एक कोने में एक सुंदर घर सजाकर वह सुखी रहेगी, सोचा था।

हो भी क्यों नहीं? अच्छी पढ़ाई करने से क्या नौकरी करने को बाध्य है वह? वह पैसे कमाने योग्य है, इतना ही काफी है। किसी भी वक़्त वह नौकरी कर सकती है, ज़रूरत पड़ने पर। सुधीर तो इतना कमा ही रहा है। वह अपने काम में बहुत व्यस्त है। समय और शक्ति बहुत अधिक खर्च करना पड़ता है उसे। इसलिए उसके लिए एक सही घर बसाना, उसके परिवार के लिए सही माहौल बनाना क्या काम नहीं है? उसे घर सजाना-सँवारना बहुत अच्छा लगता था। यह भी अच्छा लगता था कि सुधीर को जल्दी बच्चा-वच्चा नहीं चाहिए। कुछ और वक़्त हम अकेले सिर्फ एक-दूसरे के लिए बिताएँगे। आज कल परिवार बढ़ाने के लिए हड़बड़ाने की ज़रूरत नहीं है। बेहद सुविधाजनक डाक्टरी प्रणाली उपलब्ध है।

''सिर्फ तुम और मैं। और कुछ।'' उसे बाँहों में भरकर कहा करता था सुधीर। उसी तरह दोनों हाथ शरीर के दोनों ओर खंभे-सा टिकाकर ज़मीन पर, शरीर को उससे हेरकर सिर पीछे की ओर झुकाकर बैठे हुए वह आकाश की ओर ताक रही थी। आँसुओं की धार बहती जा रही थी उसकी दोनों आँखों से और दोनों कान में घुस रही थी। बहने दो आँसू। हाथ उठाकर पोंछने तक का मन नहीं कर रहा था उसका। बह जाने दो ये सारे आँसू। संताप के, पश्चाताप के, मूर्खता के, बुद्धिहीनता के, पागलों-सा प्रेम करने के...

काफी देर बाद सिर उठाकर सीधे बैठ गई वह और सामने देखने लगी। कुछ दूरी पर सफेद-सफेद सा क्या दिखाई दे रहा था! क्या हो सकता है? प्रकाश है क्या? शायद स्कूटर या मोटर साइकिल आ रही है। पर कोई आवाज तो नहीं आ रही। और वह प्रकाश भी आगे नहीं बढ़ रहा। क्या वह प्रकाश पहले से ही था वहाँ? उसने तो नहीं देखा! शायद कोई झोपड़ी होगी या चाय की दुकान। उसी प्रकाश की ओर चल-चलकर जाना तय किया उसने और उठकर खड़ी हो गई।

क्या हो सकता है?

प्रकाश-सा प्रकाश तो नहीं है! उसी ओर कुछ डग बढ़ाए उसने। कोई आकृति-सी लग रही है! समझ नहीं पा रही थी वह। उस आकृति से कुछ दूरी पर खड़ी हो गई वह और अंधेरे में गौर से देखने की कोशिश की। घुप्प अंधेरे में कुछ देर देखते रहने पर कुछ-कुछ दिखाई देता है। वैसे तो उस आकृति से ही मानों वह प्रकाश निकल रहा था। उसे लगा कि सड़क किनारे कोई कॉलभर्ट है और उसी पर यह उज्वल आकृति है। मानों कोई मनुष्य बैठा हैं यदि कोई मनुष्य बैठा है तो इतना चमक कैसे रहा है? मानो सफेद रंग की ट्यूबलाइट-सा दूधिया प्रकाश निकल रहा है उससे। साहस करके और दो डग आगे बढ़ाए उस प्रकाश की ओर उसने। सफेद कपड़े पहने हुए है कोई! उसी कपड़े से या उस मनुष्य के बदन से सफेद प्रकाश निकल रहा है। बड़ा अद्भुत है! क्या हो सकता है? कुछ और आगे बढ़ी वह।

कोई औरत-सी लग रही है! पर इतनी रात गए अकेले! और फिर उसके शरीर एवं कपड़ों से प्रकाश फूट रहा है!

और भी साहस करके वह आगे बढ़ी। इस बार उस औरत ने सिर घुमाया और उसका सामना किया। चौंक उठी वह। चहरे से भी उसी तरह प्रकाश फूट रहा था उस औरत के। आँख, कान, नाक दिखाई दे नहीं दे रहे थे। किंतु लग रही है किसी औरत-सी। साड़ी पहनी हुई सी लग रही है।

कौन हो सकती है? वन देवी? डायन? चुड़ैल! प्रेतात्मा! मनुष्य तो निश्चित ही नहीं है!

''कौन? कौन हो तुम?'' उसने कुछ ऊँची आवाज में पूछा। तब तक उसे कुछ-कुछ डर लगना शुरू हो गया था।

''मैं तारा हूँ!'' स्वर तो नहीं, मानों वीणा या सितार का सुर खिंच आया था! लगा कि काफी दूर से एक महीन स्वर बह आया हो।

''मैं...तारा तो मैं हूँ। मेरा ही नाम तो तारा है!'' उसके मुंह से हड़बड़ी में निकल गया।

''अच्छा! चलो ठीक है। इसमें क्या रखा है? तेरा नाम तारा हो सकता है। पर मैं हूँ तारा।'' उस औरत ने इस बार अपेक्षाकृत स्पष्ट स्वर में कहा।

''मेरा नाम है तारा।'' उसने इस बार स्वर में जोर देकर कहा।

''इस पृथ्वी पर अनंतकाल से न जाने कितनी ताराओं ने जन्म लिया और मर गईं। तू क्या अकेली तारा है?''

''परंतु तुम्हारा नाम कैसे है तारा? कुछ और भी हो सकता था!'' आश्चर्य भरे स्वर में पूछा उसने।

खिलखिलाकर हँसने लगी वह औरत।

''जानती है, तारा सिर्फ एक नाम नहीं। तारा एक उपलब्धि है। एक समझौता है। एक समझ है। एक कॉनसे है! क्या बचपन से नहीं सुना?। अहल्या, द्रोपदी, कुंती, तारा, मंदोदरी तथा पंचकन्या स्मरे नित्यं महापातकः नाशकं...मैं वही तारा हूँ। त्रोतायुग की तारा। तेरी माँ ने निश्चय ही तुझे मेरा उपाख्यान और यह संस्कृत.श्लोक सुनाया होगा, है ना?'' तारा ज़रा-सा मुँह खोले हुए उस औरत की ओर देखती रही। क्या कह रही है यह औरत?

''हाँ, कह रही थी ना, तेरे और मेरे बीच असंख्य ताराएँ जन्म लेकर, तारा का जीवन जीकर मर गई होंगी। क्या विश्वास नहीं हो रहा?'' उस औरत ने उसकी ओर देखकर कुछ जोर देते हुए कहा।

तारा के मुँह से अब भी कोई बोल नहीं फूटा। वह उसी तरह ठूँठ-सी खड़ी रही।

''मैं वही तारा हूँ। पंचकन्याओं में से एक। जिसे याद रखने के लिए तेरी दादी, नानी, माँ ने तुम्हें सिखाया होगा या फिर सुनाया होगा अन्य बातों के बहाने।

अँधेरे में आँखें।

तेरे दादा, नाना और पिता ने...'' उस औरत ने तारा की ओर देखते हुए कहा। तारा आश्चर्य से उसकी ओर देख रही थी। क्या देख रही थी वह? क्या सुन रही थी वह? कुछ समझ नहीं आ रहा था उसके ''बहुत दूर से दौड़ती हुई आ रही है ना तू? अब नंगे पैर चल रही है। लगता है मानों चारों ओर नज़र नहीं है तेरी। किसी ओर ध्यान नहीं है। यही ना? जी कर रहा है, सबकुछ काटकर, फाड़कर, जलाकर, उखाड़कर फेंक देने को, है ना? मन उचट गया है सबसे। जो होना हो, हो। जाए, जिधर जाता हो जीवन। किसी चीज की परवाह नहीं अब तुझे, है ना?'' वह औरत

पूछती चली जा रही थी तारा से। तारा उसी तरह भौचक्की-सी देख रही थी उसे। उसके मुँह से शब्द नहीं फूट रहे थे।

''इस वक़्त तेरी इच्छा हो रही है यहीं सड़क पर लेट जाने की, आकाश की ओर ताकते हुए पड़े रहने की। जंगल के भीतर चले जाने की, भरी नदी में छलाँग लगाने की। घर-द्वार, धन-सम्मान सबसे मोह टूट गया है तेरा। है ना?''

''तुम्हें कैसे पता?'' मुँह से निकल गया तारा के। ''हाँ-हाँ, मुझे ऐसा ही लग रहा है। लगता है, सब कुछ खत्म है मेरे लिए। अतीत मानों मिट गया हो स्लेट से, चॉक से लिखे अक्षर गीले कपड़े से पोंछ देने-सा। पर तुम्हें कैसे पता चला?''

''यह बाद में बताऊँगी। तेरी सारी बातें मुझे मालूम हैं। वैसे भी मैं ताराओं की सारी बातें जानने को बाध्य हूँ। मैं तारा बनकर जो जनमी हूँ!'' वह औरत तारा की ओर मुँह करके बैठ गई।

सन्नाटा पसर गया कुछ देर चारों ओर। वह औरत और तारा एक-दूसरे की ओर मुँह किए हुए थे। वह औरत बैठी हुई-सी लग रही थी और तारा खड़ी थी। रात बढ़ रही थी। आकाश में तारे बिखरे हुए थे। आगे और पीछे के जंगल में अंधेरा गहराता जा रहा था।

अचानक खूब ठंड लगने लगी उसे। ऐसा लगा मानों हड्डियों का मज्जा ठिठुरन भरी ठंड से काँप उठा हो। कान, नाक बर्फ़ बन गए और आँखों में पानी भर आया। क्या यह जान जाने की पूर्व अवस्था है! तारा उस औरत के बेहद करीब चली गई थी।

''सुधीर को खुश रखने और उसके ज़रिये खुद खुश रहने की जी-जान से कोशिश करती आ रही थी मैं। यही अच्छा लगता था मुझे। सहेलियाँ कहा करती थीं कि तुम्हारी सुहागरात तो पसरती चली जा रही है। सच भी था यह।'' कुछ देर चुप रही तारा।

''पिछले लगभग एक साल से ऐसा लग रहा था कि सुधीर कुछ परेशान है। वजह पूछने पर कुछ नहीं कहता था। कभी-कभी कहता था कि काम का बोझ काफी है। मैं बेहद घबराई हुई थी। जी करता था दौड़कर उसके ऑफिस पहुँच जाऊँ और उसका सिर सहला दूँ। उसके साथ-साथ रहूँ और थक जाने पर उसे कॉफी बनाकर पिलाऊँ। रात को करीब दस बजे घर लौटा करता था वह कुछ दिनों से।'' पुनः कुछ देर चुप रही तारा और सिर पीछे की ओर झुकाकर आकाश की ओर देखने लगी।

''कहती जा...कहती जा रे लड़की। तुझे ही हल्का लगेगा।'' उस औरत ने धीरे-धीरे कहा।

''महीने भर से बारंबार कहा करता था प्रोमोशन के बारे में।'' लंबी साँस छोड़ी तारा ने। ''वाईस प्रेसिडेंट बनना उसका प्राप्य है। इतना अधिक काम इतनी दक्षता के साथ निपटा रहा था वह। कोई और उसके समकक्ष था ही नहीं। लेकिन उसकी उम्र कम होने के कारण शायद उसे यह पद न दिया जाए। मैं उसका मानसिक दबाव समझने की कोशिश कर रही थी। उसकी कार्य-दक्षता की तुलना नहीं की जा सकती।'' कुछ रुकते हुए आस-पास के जंगल पर निगाह डाली तारा ने अँधेरा पहाड़-सा जम गया था उसके सामने। ''वह जिस पद पर काम करता था, वाइस प्रेसिडेंट बनने के लिए दो प्रोमोशन की जरूरत थी, लगभग दस वर्ष लग जाते। इस कंपनी को छोड़कर कहीं और गया तो भी इतनी जल्दी पहचान बनाने की उम्मीद नहीं थी। बेहद हताश हो गया था वहाँ हालांकि पिछले तीन दिनों से काफी अन्यमनस्क लग रहा था। कितना ही पूछने पर भी बता नहीं रहा था कि क्या बात है। आज सुबह बोला कि शाम आठ बजे तैयार रहना। डिनर है। वही सुनहरी नक्काशी वाली साड़ी पहनना, सिलवलेस ब्लाउज के साथ। तुम्हें फबती है। मैं खुश हो गई थी। वैसे भी हफ्ते-दस दिन में पार्टी का आयोजन तो होता ही है कंपनी में।'' थूक निगला तारा ने।

''गाड़ी में जाते समय डिनर प्राईवेट रूम में है, कहा था मेरी ओर देखे बिना सुधीर ने। बड़े-बड़े दो लम हैं इस होटल के। खूब अच्छी तरह सजे हुए। एक रूम के बीच में डायनिंग टेबुल पर रात्रि-भोज की व्यवस्था हुई है टेबुल पर। जिसने हमारा स्वागत किया, उसे नहीं जानती थी मैं। कुछ प्रश्नभरी निगाह से सुधीर की ओर देखा मैंने।

मैं ध्रुव अरोड़ा। कुछ झुककर नर्म स्वर में अंग्रेजी में कहा था अधेड़ उम्र के उस व्यक्ति ने और मेरी ओर अपना दाहिना हाथ बढ़ा दिया। मैंने भी अभिवादन के प्रत्युत्तर में अपना दाहिना हाथ बढ़ा दिया।

हमारी कंपनी के चेयरमैन हैं...मेरे कान के पास फुसफुसाकर कहा सुधीर ने। हम बैठ गए एक आरामदायक सोफे पर और बातचीत शुरू हो गई। ध्रुव अरोड़ा खड़ा हो गया ड्रिंक बनाने के लिए। उससे बैठने का अनुरोध करके सुधीर खुद ही बार के टेबुल की ओर चल पड़ा। मेरे लिए संतरे का रस एक गिलास में डालकर पहले मेरी ओर बढ़ा दिया।

कोई हार्ड ड्रिंक बनाकर दो उन्हें सुधीर। कहा ध्रुव अरोड़ा ने।

वह नहीं पीती सर। मेरी ओर देखकर कुछ मुस्कराया सुधीर और मैंने बिना किसी को देखे धीरे से सिर हिला दिया था।

बातचीत खूब जमने लगी थी। अचानक सुधीर उठकर खड़ा हो गया और बोला। बर्फ़ खत्म हो गया है। मैं नीचे रिसेप्सन से ले आता हूँ। ध्रुव अरोड़ा ने उसे मना किया और कहा कि रूम-सर्विस को फोन करके मंगवा लेंगे। सुधीर ने कहा, इसमें समय लग जाएगा। मैं तुरंत ले आता हूँ। उसने कहा और दरवाज़ा खोलकर निकल गया। उसके जाने के बाद दरवाज़ा बंद हो गया। ...पंद्रह मिनट बीत गए। बीस मिनट बीत गए। कहाँ गया सुधीर? वैसे भी तब तक दोनों लोग तीन-तीन पैग ले चुके थे। मैं घबरा गई।

कोई बात नहीं मिसेज महापात्रा, आ रहा होगा वह। शायद सिगरेट पी रहा हो। ध्रुव अरोड़ा ने कहा।

वह सिगरेट नहीं पीता। मैंने कहा और मुझे सचमुच में घबराहट हो रही थी। इस बीच और दस मिनट निकल गए। और कब तक मैं अकेले इस तरह ध्रुव अरोड़ा के सामने बैठी रहूँगी? बातचीत भी क्या करूँ? मुझे लगा मानों वह बड़े ध्यान से मेरी ओर ताक रहा है। मैंने पर्स से मोबाइल निकाला और सुधीर का नंबर मिलाया। सुधीर का मोबाइल स्वीच ऑफ। बंद था! असंभव! मैंने दुबारा लगाया। उसका मोबाइल बंद होने का यांत्रिक स्वर बह आया दुबारा!

बड़ा आश्चर्य है! मेरे मुँह से निकल गया।

वह मोबाइल नहीं ले गया शायद। कहा ध्रुव अरोड़ा ने।

तो फिर कहाँ गया उसका मोबाइल? यहाँ तो नहीं है! मैंने सोफे पर दोनों ओर से देखा और बार के टेबुल पर भी देख आई।

यहाँ तो नहीं है! उसका फोन बंद कैसे है? सुधीर गया कहाँ? मेरे मुँह से निकल गया।

आ रहा होगा वह। तुम इतना परेशान क्यों हो? हो सकता है एक ऐसी शाम एकांत में बिताने के लिए उसने हम दोनों को अवसर दिया हो। यह एक बड़ा संयोग है। तारा! कितना सुंदर नाम है! तारा अब तक सिर्फ आसमान में देखा था।'' कुछ मुस्कराया ध्रुव अरोड़ा।

क्या हुआ सुधीर को? मैं देखकर आती हूँ।

अरे अरे, आराम करो तुम। क्या वह आ नहीं जाएगा? कुछ नहीं तो पानी जमाकर बर्फ तैयार करके लाएगा वह। अपनी रसिकता से खुद ही आमोदित दिखा ध्रुव अरोड़ा।

नहीं, मैं देखकर आती हूँ। मैं खड़ी हो गई और अचानक मेरा सिर चकराने लगा। लगा कि हर चीज घूम रही है। लगा मानों मैं गिर जाऊँगी। क्या हुआ? क्यों लगा ऐसा? संतरे का रस ही तो एक गिलास पिया था। वह भी सुधीर ने ही डालकर दिया था।

अरे! गिर जाओगी तारा। ध्रुव अरोड़ा दो डग में पहुँच गया मेरे पास और उसने दोनों हाथ से मेरा कंधा पकड़ लिया।

सुधीर एक विचक्षण युवक है। वह वाइस प्रेसिडेंट बनने योग्य है। देखना, वह बहुत ऊपर जाएगा। और उच्च स्थान पर बैठे हर आदमी के पीछे एक सुंदर नारी होती है। तुम्हारी ही तरह तारा। तुम बहुत सुंदर हो। ध्रुव अरोड़ा ने मुझे अपने आगोश में लेने की कोशिश की।

मैं समझ नहीं पाई क्या हो रहा है।

तुम तो जानती हो, यह सब आम बात है आज कल। जीवन का उपभोग करना और ऊपर से ऊपर चढ़ते चले जाना। सुधीर काफी सूझ-बूझवाला लड़का है। ध्रुव अरोड़ा मुझे अपनी ओर आकर्षित करने लगा।

''अचानक बिजली-सी कौंध गई मेरे भीतर। मेरा कुछ-कुछ चकराता सिर ठीक हो गया। चैतन्य मानों सजग हो गया शत्रु से रू-ब-रू हुए एक सैनिक-सा। मुझे साफ दिख गया क्या कुछ घटित होने जा रहा है। समझ नहीं पाई। मेरे भीतर इतनी ताक़त कहाँ से आ गई! मैंने ध्रुव अरोड़ा के दोनों हाथ जोर से झटक दिए और उसे धकेल दिया। उसके बाद सिर घुमाकर दरवाजे की ओर भागी। दौड़ते हुए सीढ़ियाँ उतर गई। लिफ्ट के बारे में सोचा तक नहीं। नहीं जानती, होटल के स्वागत-कक्ष में कोई था या नहीं था। मैं बेतहाशा दौड़ने लगी। मुझे लग रहा था मानों कोई दौड़ा रहा है पीछे से! यहाँ...यहाँ आकर पहुँच गई।'' तारा का कंठ रुँधने लगा था। ''मेरे पास मोबाइल नहीं है, पर्स नहीं है, चाबी नहीं है। कुछ भी नहीं है। मैं...'' दोनों हथेलियों से मुँह ढँककर रोने लगी तारा! अब तक दबाकर रखी सिसकियाँ फबक-फबककर फूट पड़ीं उसके दुबले शरीर को कँपाते हुए।

''रो मत, रो मत बिटिया। याद है न। मैं हूँ त्रेता युग की तारा।'' रामायण की नारी-पात्रा तारा अमित बलशाही किष्किंधानगरी के बानरराज बाली की पत्नी हूँ मैं तारा। श्रीराम के बाण से बाली की मृत्यु के बाद मानों मेरा सबकुछ लुट गया। बाली के सिवाय न तो किसी पर ध्यान था मेरा, ना ही कोई ध्येय था। मेरे प्रबल पराक्रमी पति खून से लथपथ ज़मीन पर पड़े थे और उनकी जीवन-ज्योति बुझने वाली थी, इतना ही काफी था मुझे मूर्छित करने के लिए। बाली के बिना मैं वहाँ किष्किंधा में और मेरे बिना बाली स्वर्ग में कैसे रहेंगे, यह सोचकर मैं विलाप करने लगी। राम मुझे भी बाण से बींध दें और मृत्यु दें, ऐसा मैं उनसे अनुरोध करती रही। रामचंद्र अपनी मीठी नीतिकथा से मुझे समझाने लगे। हनुमान मेरे किशोर पुत्र अंगद की बार-बार याद दिलाने लगे।'' थोड़ा रुक गई वह औरत। सुग्रीव किष्किंधानगरी के राजा बने और मुझे यानी बाली पत्नी तारा पर अपना 'अधिकार' जमाया। मैं उनके द्वारा अधिकृत हुई। कहा जाए तो मैं उनकी उपपत्नी बनी। बदले में मेरा पुत्रा, महाबीर बाली के पुत्र अंगद का युवराज के रूप में अभिषेक हुआ। उसी दिन से मैंने अधिक से अधिक सुरापान करना प्रारंभ कर दिया। मैं पूरी तरह होश में रहकर सुग्रीव के बुलाने पर उनके पास नहीं जा पाती थी। अपनी ग्लानि, अपना संताप, अपना दुख यह सब भुलाने में मदिरा ही मेरी सहायक थी। राज्य प्राप्ति के बाद सुग्रीव पुनः मौज़-मज़लिस में डूबे रहे, जिस तरह महाबीर बाली को गुफा में छोड़कर, गुफा का मुहाना बड़े पत्थर से बंद करके सुग्रीव किष्किंधा लौट आए थे और राजभोग करने में मत्त रहते थे। रामचंद्र से किया हुआ वायदा वे भूल गए थे या लापरवाही से टालते चले जा रहे थे। कुछ समय व्यतीत होने के बाद क्रोधित लक्ष्मण प्रसवण पर्वत के प्राकृतिक सौंदर्य को छोड़कर

किष्किंधानगरी के राजप्रासाद में पहुँचे। उनकी आँखों से आग बरस रही थी और शरीर क्रोध से काँप रहा था। वे बार-बार धनुष की टंकार से भीषण आवाज और भय उत्पन्न करने लगे। उस आवाज से मेरे साथ शय्या में लेटे सुग्रीव काँपने लगे और थरथराते स्वर में मुझे लक्ष्मण के पास जाकर उन्हें समझाने के लिए बार-बार चिरौरी करने लगे। उस वक्त तक शराब के नशे में डूबी मैं अंततः शय्या से उठी और किसी तरह खुद को संभालकर लड़खड़ाते हुए लक्ष्मण के पास पहुँच गई। मुझ पर, मेरी वैसी हालत पर नज़र पड़ते ही ब्रह्मचर्य पालन करने वाले महावीर सौमित्र ने अपनी नज़र झुका ली और धनुष-बाण अपनी बगल में जमीन पर रख दिए। मैं अति विनयपूर्वक उन्हें समझाने लगी। घबराहट से, अपमान से मेरा चेहरा लाल पड़ता जा रहा था, तब भी मैं लक्ष्मण को अपनी विनम्रता भरी बातों से शांत करने की चेष्टा कर रही थी। मेरे बदन से घमाघम पसीना छूट रहा था, शरद ऋतु की उस सम्मोहक शीतल रजनी में भी... मैं उस समय को भूल नहीं पा रही हूँ बिटिया। मैं सिर उठाकर लक्ष्मण को देख नहीं पा रही थी। अंतिम बार मेरी उनसे तब भेंट हुई थी जब मैं बाली के बाण से बिंधे शरीर को जकड़कर पकड़े हुए विलाप कर रही थी। और इस बार ऐसी हालत में मुझे देखा उन्होंने! मैं पुनः-पुनः इस्तेमाल की गई अपने पुत्र अंगद की सुरक्षा के लिए। यह सच है कि राजकाज में, राज्यशासन में बाली के बाद सुग्रीव मेरी सलाह लेते थे, किंतु मेरे मन में हमेशा के लिए एक अफसोस रह गया था कि मैं भी बाली के साथ मर क्यों नहीं गई? क्यों नहीं दिया अभिशाप सुग्रीव को? क्यों उनके द्वारा अधिकृत होना स्वीकार कर लिया? क्यों उनके द्वारा इस तरह इस्तेमाल की गई?

मैं युगों से यहीं बैठी हूँ। मुझे शक्तिमती कहा जाता है। बुद्धिमती कहा जाता है। किंतु वास्तव में मैं क्या हूँ? क्या हूँ मैं? क्या चाहा था मैंने? क्या चाहा था कि राजनीति में, हार-जीत के जुए में गोटी की तरह इस्तेमाल होना? क्या एक नारी अपने शरीर के कारण, अपने शरीर के माध्यम से सिर्फ इस्तेमाल होती रहेगी? सभी ताराओं से युग-युग से मैं यही पूछती आई हूँ। तुझसे भी पूछ रही हूँ। क्या चाहती है तू? क्या चाहती है?'' वह औरत तारा की ओर बढ़ने लगी।

''कर सकती है कुछ? मुझे इस तारात्व से मुक्त कर सकती है?'' खुद को तारा बताने वाली वह औरत तारा की ओर देखकर जोर से कहने लगी।

उसके उस स्वर में, उसकी बात ने मानों गगन-पवन कँपा दिया! काँप उठा तारा का चहुँओर। उसकी आँखें मुँद गईं । कानों में भाँय-भाँय सुनाई देने लगी सिर्फ उस औरत की आवाज। तारा अपनी दोनों हथेलियों से दोनों कान बंद करके जोर से चिल्लाई। ''हाँ, हाँ...'' अगले ही क्षण न जाने क्या हुआ कि तारा खूब जोर-जोर से काँप उठी और उसे लगा मानों वह अँधेरे में उड़ रही है।

होटल के गेट के पास खड़े गार्ड की ओर ज़रा भी नहीं देखा तारा ने। अति परिचित ग्राहक की तरह वह सीधे लेडीज टॉयलेट में घुस गई। उसके हाथ में पर्स था, पर्स में मोबाइल था, घर की चाबी भी थी। उन सबको एक ओर हटाकर उसने पावडर की छोटी डिबिया और लिपस्टिक निकाली। चेहरा कुछ सँवार लिया और कंघी निकालकर बालों को सँवार लिया। रूमाल से आँखों का निचला हिस्सा पोंछा और आईने में देखा। नहीं, अब नहीं लग रहा कि वह इतनी देर तक रोती रही है। पैरों की ओर देखा। खूब फब रही हैं सुनहरे रंग की हाईहिल की जूतियाँ-सुनहरी ज़रीदार साड़ी आहिस्ता से कंधे पर सजा ली और लिफ्ट की ओर चल पड़ी।

रूम का दरवाज़ा खोलते ही चौंक उठा ध्रुव अरोड़ा। उसके दोनों होंठ खुल गए और मुँह खुला रह गया।

इसकी परवाह किए बिना अंदर घुस आई तारा और ध्रुव अरोड़ा की ओर देखते हुए हाथ पीछे घुमाकर दरवाज़ा बंद कर लिया।

''सुधीर। '' ध्रुव अरोड़ा के मुँह से निकल गया। ''मैंने एक बार के लिए कहा था। वैसी कोई बात नहीं। कृपया इसे अन्यथा मत लेना। सुधीर भी...'' पुनः हकलाते हुए कहा उसने। तारा के दौड़कर चली जाने के बाद शायद और भी कई पैग पी ली है उसने।

''क्यों? एक बार ही क्यों? मैं कई बार आ सकती हूँ। यहाँ, या किसी भी जगह'', तारा ने ध्रुव अरोड़ा की ओर देखते हुए नर्म भाव से कहा।

कुछ न समझ पाकर तारा का चेहरा देखता रहा ध्रुव अरोड़ा।

''सुधीर का...'' तारा ने पुनः मुँह खोला।

''हाँ, हाँ सुधीर का...'' उत्साहित होने की चेष्टा की ध्रुव अरोड़ा ने।

''सुधीर का प्रोमोशन...''

''हाँ, हाँ सुधीर का प्रोमोशन अवश्य होगा। वह खूब विचक्षण युवक है।'' ध्रुव अरोड़ा ने हड़बड़ाकर कह दिया।

''मैं चाहती हूँ सुधीर का किसी भी तरह कभी भी, पूरे कैरिअर में प्रोमोशन न हो। कभी भी नहीं।'' तारा ने ध्रुव अरोड़ा की आँखों में सीधे-सीधे देखते हुए कहा।

वरिष्ठ कहानीकार एवं मुख्य प्रधान आयुक्त, आयकर, दिल्ली
मेल - parmita_345@yahoo.co.in मो. 9437012627

समकालीन हिंदी कहानी: भाषा का बदलता स्वरूप

डॉ. शैलजा

"अरूण प्रकाश अपनी कहानी 'बेला एक्का लौट रही है', 'जलप्रांतर', 'भैया एक्सप्रेस' आदि कहानियों में बिहार के ठेठ देशज का बहुत सशक्त ढंग से प्रयोग करते हैं। अरूण प्रकाश का जो देशज है उसमें देशज बिहार के किसी अंचल विशेष तक सीमित नहीं है। उसमें पंजाब के देशज का भी चित्र है। 'जल-प्रांतर' कहानी में जब अरूण प्रकाश गंगा नदी में आने वाली बाढ़ की विभीषिका का वर्णन करते हैं तो उसकी भयावहता को उसी देशज बोली की मार्फत अभिव्यक्त करते हैं।अरूण प्रकाश की इस कहानी की भाषा के संदर्भ में आलोचक नामवर सिंह कहते हैं-''अरूण प्रकाश ने 'जलप्रांतर' कहानी में खूब धुँआ-धार मैथिली का इस्तेमाल किया है। बोल-चाल की भाषा में जैसी जीवंतता है, वैसी खड़ी बोली में नहीं आ सकती।...अरूण प्रकाश की कहानियों में जिसे आंचलिकता कहते हैं वो गहराई से कूट-कूटकर भरी है।"

साहित्य की अभिव्यक्ति में भाषा की भूमिका अहम् होती है। सर्जक 'भावन' के बाद जब 'विभावन व्यापार' के समय एक मानसिक कला-सृष्टि करता है तो उसकी सोच भी एक भाषा के दायरे में ही रूपपाता है। यानी अभिव्यक्ति से पहले अभिव्यक्ति की जो प्रकल्पना की जाती है उसका आकार भी भाषागत ही होता है। तात्पर्य यह है कि रचना की पृष्ठभूमि जो केवल मानसी है उसे भी भाषा में ही स्वरूप मिलता है और अभिव्यक्ति के बाद या यों कहें कि अभिव्यक्ति में तो उसका सर्वांग ही भाषा में रचा जाता है।

समकालीन दौर में बदलते सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ की तरह ही साहित्य को अभिव्यक्त करने वाली भाषा भी बदल जाती है। समकालीन कहानी में अब आम आदमी की बात को अभिव्यक्त करने पर बल दिया जाने लगा। इसीलिए समकालीन कहानीकारों ने वैचारिक आग्रह के बिना आम आदमी की समस्याओं को अभिव्यक्त किया है। समकालीन कहानी में यथार्थ की तरह ही शैली में भी परिवर्तन की बात की जाने लगी। कहानी के रूप में यह बदलाव बदले हुए जटिल यथार्थ को और अधिक सूक्ष्मता से पकड़ने के लिए किया जा रहा था। इस तथ्य को समकालीन कहानीकारों ने बहुत ही गहराई से महसूस किया है।

इस यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए कहानी के रूप को न केवल बदला गया अपितु नई शैली भी अपनाई गई। इस दौर में लंबी कहानियों की परंपरा पूर्ण रूप से स्थापित होती दिखाई पड़ती है।अधिकांशसमकालीनकहानीकारों ने लंबी कहानियाँ भी लिखी हैं। इसके पहले भी लंबी कहानियाँ लिखी गई हैं। लेकिन उनमें और समकालीन कहानियों में अंतर है। कथ्य की जटिलता का अंतर। निर्मल वर्मा की 'परिंदे' एक लंबी कहानी है परंतु वहाँ कथ्य उस रूप में जटिल नहीं है जैसे समकालीन के दौर में छपी चित्रा मुद्गल की कहानी 'दौड़' या प्रियंवद की 'आर्तनाद' आदि कहानियों में दिखाई पड़ता है। उस दौर में कथ्य एकरेखीय रहा है। लेकिन समकालीन दौर में कथ्य एकरेखीय नहीं है। समकालीन कहानियों में कथानक और भाषा का जो संबंध कहानियों में बनता दिखाई पड़ता है वह पहले के दौर की कहानियों से भिन्न है।

साहित्य में कथ्य और भाषा का यदि सामंजस्य कहीं बराबरी का बन जाता है तो रचना अपना प्रभाव ज्यादा गहराई से डालती है। समकालीन कहानियों में कथ्य और भाषा के बीच का अंर्तसंबंध बदले हुए रूप में दिखाई पड़ता है, जिसमें यथार्थ, विचारधारा, वाद विशेष आदि का आग्रह मात्र नहीं है अपितु उनमें कहानी में कहानीपन को बरकरार रखने की कोशिश साफतौर से दिखाई पड़ती है। इसीलिए समकालीन कहानियों में कथ्य सिर्फ शहर केंद्रित मात्र नहीं है बल्कि

इस दौर की कहानियों में ग्रामीण समाज की विडंबना को भी पूरी तरह से दिखाया गया है। इस दौर में शिवमूर्ति, उदय प्रकाश, महेश कटारे, विद्यासागर नौटियाल, पुन्नी सिंह, संजय खाती जैसे कहानीकारों ने ग्रामीण समाज को लेकर कहानियाँ लिखी हैं। वैसे इस दौर तक आते-आते ग्रामीण और शहरी समाज का भेद बहुत कुछ समाप्त हो गया दिखाई पड़ता है। इस बात को कहानी के संदर्भ में रखकर कहें तो इसके प्रमाण उदय प्रकाश, शिवमूर्ति, महेश कटारे आदि की कहानियों में दिखाई पड़ता है। शिवमूर्ति की कहानियों के द्वारा यदि कहें तो गांव भी शहर से जुड़े हुए दिखाई पड़ते हैं। इस दौर की कहानियों में कथ्य और भाषा के बीच का जो अंर्तसंबंधहै वह अलग तरह का है जिसमें किस्सागोई की शैली है।

रमेश गुप्ता की कहानी 'विस्थापित' एक ईमानदार मध्यवर्गीय व्यक्ति को अपने मूल्यों को लेकर किए गए संघर्ष को अभिव्यक्त करती है। कहानी पूरी व्यवस्था के षडयंत्र को एक ऑफिस के माध्यम से प्रस्तुत करती है। ईमानदारी के इस संघर्ष में वह धीरे-धीरे अकेला पड़ता चला जाता है। उसके घर वाले भी उससे अपने को अलग कर लेते हैं।

कहानीकार यहाँ कथ्य और भाषा का इतना सघन रूप प्रस्तुत करता है कि आज के पूरे युग की विडंबना साफतौर से दिखाई पड़ने लगती है। लोगों का स्वार्थ अपने चरम रूप में भाषा के माध्यम से प्रस्तुत हो जाता है। एक ईमानदार आदमी की विडंबना और समाज के लोगों का उसके प्रति व्यवहार पूरी विडंबना के साथ कहानी में उपस्थित हो जाता है।

रामधारी सिंह दिवाकर की कहानी 'मृतजीवी' एक परिवार में आर्थिक संकट से पैदा होने वाली विपन्नता को अभिव्यक्त करती है। कहानीकार इस कथानक के लिए शहर से सबसे कटे हुए परिवेश का चुनाव करता है। जहाँ आने जाने का कच्चा रास्ता है। घर का परिवेश उसी तरह से अभिव्यक्त किया गया है। ''इतनी कम रोशनी में आप लोग कैसे पढ़ लेते हैं। मेरी तो आँखें दुखने लगी थोड़ी देर में?'' दीदी ने मुस्कराते हुए कहा, ''आदत पड़ गयी है, कोई दिक्कत महसूस नहीं होती हम लोगों को। बल्कि ज्यादा रोशनी में चले जायें तो आंखें चैंधियाने लगती हैं, उस बार धीरेन्द्र की शादी में गयी थी न माँ के घर, जब डौली गोद में थी, तो ऐसा ही हुआ था।''1

इन कुछ पंक्तियों में ही उस घर की आर्थिक संकट से पैदा हुई मनःस्थिति की कल्पना की जा सकती है। जहाँ कम रोशनी और बच्चों का समय से पहले ही शांत हो जाना पूरे परिवेश की भयावहता को स्पष्ट कर देता है। उनके जीवन के लिए कम रोशनी एक अनिवार्य हिस्सा बनकर रह गई है। यह कम रोशनी मात्र रोशनी नहीं है अपितु उस पूरे परिवेश में व्याप्त अंधकार को गहराई से अभिव्यक्त करती है। उनके जीवन में भी इसी तरह की कम रोशनी है। एक निश्चित आय और एक निश्चित काम। उससे न ज्यादा कमाने की कोई उम्मीद है और न ही इसको लेकर किसी तरह की कोई शिकायत। कहानी का कथ्य और भाषा इतने संगुंफित हैं कि कहानी आर्थिक विपन्नता का पूरा चित्र प्रस्तुत कर देती है।

ममता कालिया की कहानी 'मनहूसाबी' आज के स्त्री की छवि प्रस्तुत करती है। जिसमें उसे मशीनी अंदाज में ही सब कुछ करना पड़ता है। नाश्ता करने से लेकर स्कूल पहुँचने तक। इस कहानी का कथ्य और भाषा का सामंजस्य देखने लायक है- ''पिछले साल से मनहूसाबी एक स्कूल में पढ़ाने भी लगी है। उसे औरों से ड्योढ़ा काम मिलता है और वेतन आधा। वह प्रशिक्षित नहीं है। दरअसल घर की चख-चख से निजात पाने को उसने यह नौकरी ढूंढ़ी थी लेकिन अब वह एक नयी किस्म की चख-चख में फंस गयी है। उसके सिर के ऊपर सदा कांव-कांव करने वाली एक प्राचार्या है और एक विभागाध्यक्ष।''2

कहानी इस पूरे दौर के शुरूआती रूप का चित्र प्रस्तुत करती है जिसमें भूमंडलीकरण का बहुत ही सीमित प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा है। कहानी की भाषा इस विडंबना को बहुत गहराई से अभिव्यक्त करती है। शैवाल की कहानी 'बेबीलोन' में कथ्य और भाषा का सामंजस्य एक नए तरह का दिखाई पड़ता है। आदमी कैसे-कैसे अमानवीय होता जाता है कहानी इसको बारीकी से प्रस्तुत करती है। शैवाल प्रशासनिक वर्ग के अमानवीय स्वार्थ की कथा इस कहानी में कहते हैं कि ''कमरे के कोने में चंद्रा साहब बैठे थे, मुस्करा रहे थे, जैसे जवाहर लाल नेहरू की तरह 'चिल्ड्रन डे' मना रहे हों...महीना खत्म हो रहा है, अनाज खत्म हो रहा है। बैंक बैलेंस 'मेंटेनेंस' की छत पर चढ़कर प्रेमालाप कर रहा है। डैम केयर! कोई बात नहीं, कोई फिक्र नहीं। जिंदगी मोती के दानों की तरह कीमती है, पूरी चमक के साथ जिओ।''3

तरसेम गुजराल की कहानी 'साजिश' 84 के बाद के दंगों पर केंद्रित है। जिसमें दो सिखों द्वारा इंदिरा गांधी की हत्या करने के बाद गांवों तक में सिखों को हिन्दुओं ने मार दिया था। उनके घरों को आग लगा दी गई थी। समाज के लोग इसमें मूकदर्शक मात्र बन रहे। कहानी इस मूकदर्शिता की विडंबना को अभिव्यक्त करती है- ''करीब बाबा ने खुद ही आकर हाथ जोड़ दिये थे, ''खुदा हम पर बहुत खफा है मेरे बच्चो! यह कयामत के दिन भी देखने थे। गलियों में कत्लोगारत

की इंतहा हो चली है। दहशत के इस आलम में कोई किसी की नहीं सुनता। मेरे जिगर के टुकड़ों कहते हुए मेरा दिल डूबता है। तुम लोगों की हिफाजत अब हमारे बस की नहीं। रहमत तुम लोगों को चैक तक छोड़ आयेगा।'' 4

कहानी 1984 के बाद के पूरे मंजर को पूरी भयावाहता के साथ स्पष्ट कर देती है। जिसमें असहायता भी है और एक दहशत भी है। कहानी में उर्दू भाषा के शब्दों का खूब प्रयोग किया गया है। परिवेश की भयावहता-सड़कों का सन्नाटा, काँच का चूरा एक अनजाने डर का भय निर्मित कर देती है।

आनंद हर्षुल की कहानी 'उस बूढ़े आदमी के कमरे में' शहरों में बुजुर्गों के अकेलेपन को बहुत अलग ढंग से विवेचित करती है। कहानी की भाषा बहुत धीमे-धीमे अपना प्रभाव पैदा करती है। एक बुजुर्ग के अकेलेपन को दिखाने की जो शैली अपनाई गई है वह कथ्य को पूरे प्रभाव के साथ अभिव्यक्त कर देती है। उनके अकेलेपन को दिखाने के लिए कहानीकार शहर के बदले हुए परिवेश को भी आधार बनाता है-''वे इस तरह जीवित थे कि लोगों को उनका होना न होना महसूस ही नहीं होता था। वे जब कभी अपनी छत पर दीखते तो लोगों को उस आदमी का होना दीखता-जिसे वे अकसर भूल जाते हैं, वे अपनी छत से बहुत कम नीचे आते थे।''5

कहानी में भाषा भावों को पूरी तरह अभिव्यक्त कर रही है। कहानीकार बूढ़े के अलगाव को दिखाने के लिए उन्हें घर की छत पर जिसका जीना घर से नहीं जाता है। वह सिर्फ दिन के बीतने का अपने कमरे की खिड़की से इंतजार करते रहते हैं। आस-पास के लोगों को उनके होने का अहसास भी नहीं होता।

शिवमूर्ति की कहानी 'तिरिया चरित्तर' में कथ्य और भाषा का अन्तसंबंध बहुत सघन रूप में मौजूद है। कहानी में शिवमूर्ति भाषा का ऐसा ताना-बाना बुनते हैं कि आज के ग्रामीण समाज में मजदूर स्त्री की विडंबना समूचे रूप में उपस्थित हो जाती है। कहानीकार पात्रों का चरित्र पूरी संपूर्णता में करता है। वह चाहे विमली का हो, डरेवर का हो या कुइसा मिस्त्री का। सभी पात्र अपनी समूची प्रवृत्तियों के साथ मौजूद हैं।

अखिलेश की 'चिट्ठी' कहानी में भी कथ्य और भाषा का अद्भुत सामंजस्य दिखाई पड़ता है। जिसमें बेरोजगारी की पीड़ा में भी हँसी के पल खोज लिए जाते हैं। कहानी के वे पात्र अपनी दयनीयता में भी हँसी ठिठोली करते हैं। इसके माध्यम से उनके अंदर के गहरे अंतद्र्वंद्व को देखा जा सकता है। एक तरफ मकान का किराया चुकाने की चिंता और दूसरी तरफ उसी चिंता में एक मजाकिया बात वह भी मकान मालिक के किराया माँगने पर।कहानी बेरोजगारी की पीड़ा को बहुत ही ईमानदारी से अभिव्यक्त करती है।

सृंजय की कहानी 'भगदत्त का हाथी' में कथ्य और भाषा का भीअंतर्संबंध बहुत बेहतरीन ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। कहानी का कथ्य एक पिता की लड़की के शादी के समय खत्म हो जाने के बाद आठ साल की लड़की को ब्याहने की घटना पर केंद्रित है। कहानी का कथ्य अपने में बहुत जटिल भाव लिए हुए है। यह जटिल इस मायने में है क्योंकि इसमें कथा में पहले रासमणि आती है और फिर भागमणि। इन दोनों के बीच ही पूरा कथ्य बुना गया है।

कथ्य के हिसाब से कहानीकार ने भाषा का चयन किया है, जिसमें बोलियों के शब्दों को भी शामिल किया गया है। घटनाओं का वर्णन बहुत रोचक ढंग से किया गया है। कहानी के कथ्य और भाषा के सामंजस्य को कहानी में देखा जा सकता है।

कहानी में कथ्य और भाषा का अंतर्संबंध बहुत सघन है। सृंजय की दूसरी कहानियों में भाषा का यह रूप बहुत प्रमुखता से उभरता हुआ दिखाई पड़ता है। इस दौर की कहानियों में भाषा एक नएढ़ंग की बनती हुई दिखाई पड़ रही है। समकालीन कहानी की यह महत्वपूर्ण उपलब्धि है।समकालीन कहानियों में काव्यगत स्पर्श के साथ ही काव्य का सीधा प्रयोग भी मिलता है। चरित्रों के संवादों में नाटकीयता है यथार्थ में भी नाटकीयता का पुट शामिल मिलता है।

शिवमूर्ति एवं संजीव की कहानियों में इसका सर्वाधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस दौर में विधागत सीमाएँ तेजी से टूटीं। यह बदलाव सिर्फ कहानी विधा में ही नहीं हुआ अपितु साहित्य की हर विधा में देखा जा सकता है। समकालीन कहानीकारों द्वारा देशज प्रयोग 'रचना' को जहाँ पूरे लोक के बीच खड़ा करके विश्वसनीय बना देता है वहाँ प्रभाव के स्तर पर भी रचना को बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के पाठक के साथ सहज ढ़ंग से जोड़ देता है। समकालीन कहानीकारों ने देशज प्रयोग खूब किए हैं। इन्हीं प्रयोगों के कारण ही इनकी कहानियाँ आम आदमी के नजदीक हुई हैं। उदय प्रकाश की 'रामसजीवन की प्रेमकथा' और 'टेपचू' में काव्यात्मकत भाषा का उदाहरण मिलता है।

उदय प्रकाश कहानी में भावों को कभी मौन रूप में अभिव्यक्त करते हैं तो कभी किसी प्रतीक का उपयोग करके। अनिता की खुली हुई खिड़की रामसजीवन को बहुत कुछ कहती हुई प्रतीत होती है। यह प्रतीति बहुत कुछ छायावादी कविता की तरह की है। जिसमें पंत को

प्राकृतिक उपमान मौन संदेश दे जाते हैं। वहीं रामसजीवन को खिड़की बहुत कुछ कहती सुनती रहती है। कहानी में काव्यात्मकता का प्रयोग उदय प्रकाश खूब करते हैं। वह अनिता के कमरे की खुली खिड़की पर ही कविता लिख देते हैं-

''...शिरीष मिश्र/तुम नहीं जानते कि/
इतिहास में खुली रह गयी एक अकेली/
खिड़की का क्या अर्थ होता है/ लेकिन मैं जानता हूँ/
खुली खिड़की का एक भविष्य होता है/
जिसमें कि प्रतिज्ञाओं और संकल्पों की रोशनी फूटती है...।''6

उदय प्रकाश ने जिस तरह की शब्दयोजना की है उससे रामसजीवन की अनिता के प्रति प्रेम की गहराई को देखा जा सकता है। उदय प्रकाश इस कहानी में इतिहास तक की यात्रा करते हैं। खुली खिड़की यानी अनिता की ही खुली खिड़की नहीं है अपितु इतिहास की खुली हुई खिड़कियों से भी इस खिड़की का गहरा रिश्ता बन जाता है। 'टेपचू' कहानी में काव्यात्मकता का एक अलग स्वरूप दिखाई पड़ता है-''वह गिलहरी की तरह ताड़ के एकसार सीधे तने से लिपट गया और ऊपर सरकने लगा. पैरों में न तो बांस की पक्सियाँ थीं और न ही कोई रस्सी ही. पंजों के सहारे बहुत ऊपर सरकता गया. उसने देखा, दूर एक आम के पेड़ के नीचे अंगोछा बिछाकर सोया हुआ है. टेपचू अब काफी ऊँचाई पर था।''7

उदय प्रकाश की कहानियों में कविता का प्रभाव अलग-अलग रूपों में मौजदू है। टेपचू में कविता की लय विद्यमान है। कहानी पढ़ते समय कविता की तरह का अहसास बना रहता है। टेपचू की छवि जिस रूप में गढ़ता है और जैसे-जैसे वह मौत को चुनौती देता हुआ हर बार जिंदा बच जाता है उससे कहानीकार की कल्पनाशक्ति की ऊँचाई को देखा जा सकता है। उदय प्रकाश 'तिरिछ' कहानी में काव्य का सर्वोत्तम प्रभाव दिखाई पड़ता है। अशोक भाटिया 'तिरिछ' कहानी में प्रयोग के बारे में लिखते हैं-''उदय प्रकाश की लंबी कहानी 'तिरिछ' में नाटकीयता, काव्यात्मकता तथा औपन्यासिकता-तीनों प्रकार के शिल्प का सहारा लेकर सशक्त कथा-शिल्प निर्मित किया गया है. जिसका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है।''8

प्रियंवद की कहानी 'आर्तनाद' में काव्यात्मकता का जो प्रभाव है वह उस परिवेश के साथ-साथ पात्रों के वर्णन तक में साफतौर से दिखाई पड़ता है। इनकी कहानियों के केंद्र में शहरी मध्य वर्ग और उसकी विडंबनाएँ हैं। वह अपनी कहानियों में कविताओं का भी प्रयोग करते हैं और विम्ब-प्रतीक का भी।

''पीड़ा एक नदी है/और मैं इस नदी में डूबना चाहता हूँ आकंठ,
मेरी देह की शिराओं में/ यह नदी/ उन्मत्त पिशाचिनी की तरह बहे/
और मैं हर क्षण स्वयंभू होने का वरदान भोगूँ।''9

यहाँ तिरिछ एक लोकेल प्रतीक होने के बावजूद पूरी व्यवस्था का प्रतीक बन जाता है। 'तिरिछ' कहानी के संदर्भ में कवि लीलाधर मंडलोई इसके शिल्प पक्ष को लेकर एक मार्के की टिप्पणी करते हैं-''तिरिछ' ने समकालीन कथ्य, भाषा और शिल्प के स्तर पर यकीनन एक प्रस्थान की तरह मोड़ा है। फंतासी का इतना अद्भुत उपयोग कम कथाकार कर पाते हैं। स्वप्न के भीतर चलती एक भयावह फंतासी को पढ़ना मानो अपने समय के द्वंद्व, भय, अनिश्चय, असहायता और असुरक्षा से रूबरू होना है।''10

वहीं 'छप्पन तोले का करधन' कहानी में करधन के देशज प्रयोग के मार्फत ग्रामीण समाज में बुजुर्गों की क्या स्थिति हो जाती है इसकी विवेचना की गई है। दादी इसका प्रतीक हैं। जिनके मार्फत इस छप्पन तोले के करधन की कहानी बुनी गई है। रचनाकार इस प्रतीक का अप्रतिम प्रयोग करता है।

उदय प्रकाश की कहानी की भाषा पर ग्रामीण समाज का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। उदय प्रकाश जिस तरह से छप्पन तोले के करधन का और उसका दादी के पास होने का जिक्र करते हैं उससे यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि करधन पूरे घर के एकमात्र मुक्ति का प्रतीक है लेकिन दादी उसी को नहीं दे रही हैं। कहानीकार आखिर में इस विडंबना को उस परिवेश के बीच समाप्त करता है जहाँ दादी लेटी हुई थी। दादी, करधन, घर में एक दूसरी सत्ता का होना देशज होने के बावजूद कथ्य की विदूरपता को बहुत सशक्त ढंग से अभिव्यक्त कर देते हैं।

संजीव अपनी कहानियों में देशज प्रयोग कहानी के शीर्षकों के साथ-साथ पात्रों के चुनाव और परिवेश आदि कई स्तरों पर दिखाई पड़ता है। उनके पात्र तिरबेनी, चन्नर सिंह, महातम बाबा आदि ठेठ देशज पात्र हैं। इसीलिए उनकी कहानियाँ अपना व्यापक प्रभाव पैदा करने में सफल हो जाती हैं। 'तिरबेनी का तड़बन्ना' और 'पिशाच' कहानियों में देशज प्रयोग का श्रेष्ठ रूप दिखाई पड़ता है।

देशज प्रयोग के मामले में संजीव अप्रतिम कथाकार हैं। तिरबेनी का तड़बन्ना, पिशाच शीर्षक ही देशज परंपरा का अप्रतिम उदाहरण हैं। कहानी की भाषा कथ्य को पूरे सामथ्र्य के साथ अभिव्यक्त करने में समर्थ है। संजीव की भाषा और शैली के बारे में स्वयं प्रकाश लिखते हैं-''संजीव की शैली पर बांग्ला किस्सागोई का जबर्दस्त प्रभाव है। उनकी भाषा शिष्ट, संयत, संतुलित और संयमित भाषा है। उनमें ज्यादातर स्लैंग या काकू नहीं।...शिल्प-शैली के बहुत ज्यादा प्रयोग भी संजीव में नहीं

हैं। दरअसल, उनका सारा ध्यान हमेशा कथ्य पर केंद्रित रहता है और हर बार उनके कथ्य में इतना दम रहता है कि किसी और चीज की तरफ ध्यान ही नहीं जाता।''11

अरूण प्रकाश अपनी कहानी 'बेला एक्का लौट रही है', 'जलप्रांतर', 'भैया एक्सप्रेस' आदि कहानियों में बिहार के ठेठ देशज का बहुत सशक्त ढंग से प्रयोग करते हैं। अरूण प्रकाश का जो देशज है उसमें देशज बिहार के किसी अंचल विशेष तक सीमित नहीं है। उसमें पंजाब के देशज का भी चित्र है। 'जलप्रांतर' कहानी में जब अरूण प्रकाश गंगा नदी में आने वाली बाढ़ की विभीषिका का वर्णन करते हैं तो उसकी भयावहता को उसी देशज बोली की मार्फत अभिव्यक्त करते हैं।अरूण प्रकाश की इस कहानी की भाषा के संदर्भ में आलोचक नामवर सिंह कहते हैं-''अरूण प्रकाश ने 'जलप्रांतर' कहानी में खूब धुँआ-धार मैथिली का इस्तेमाल किया है। बोल-चाल की भाषा में जैसी जीवंतता है, वैसी खड़ी बोली में नहीं आ सकती।...अरूण प्रकाश की कहानियों में जिसे आंचलिकता कहते हैं वो गहराई से कूट-कूटकर भरी है। जिस आंचलिकता का सूत्र फणीश्वरनाथ रेणु से जुड़ा है।...जलप्रांतर कहानी के रूप में रिपोतार्ज है। बिहार की बाढ़ का शायद ही कहीं ऐसा विवरण मिलता हो जो यथार्थ के इतना करीब हो।''12

मृणाल पाण्डे अपनी कहानियों में पहाड़ी अंचल का देशज यथार्थ रचती हैं। इस यथार्थ में पहाड़ी जीवन अपनी सहजता के साथ उपस्थित हो जाता है। मृणाल पाण्डे की कहानियों में स्त्री-जीवन की विडंबना के अनेक रूप दिखाई पड़ते हैं। इनकी कहानियों में स्त्रियाँ अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर हैं। कहानियों के शीर्षकों में भी इस देशज के स्पष्ट रूप दिखाई पड़ते हैं। 'एक थी हंसमुख दे', 'परियों का नाच', 'बचुली चैकीदारिन की कढ़ी' आदि शीर्षकों में ही लोक कथा के दर्शन हो जाते हैं।मृणाल पाण्डे अपनी कहानियों में जिस देशज का वर्णन करती हैं उसमें उस देश की विडंबनाएँ भी शामिल दिखाई पड़ती हैं।

समकालीन कहानियों में भाषा का जो बदलता स्वरूप है उसके कई कारण हैं। एक तो पहले के आंदोलनों के कारण आई रूढ़ता और दूसरे यथार्थ का तीव्र दबाव। इनके कारण कहानी की रोचकता, पाठकीयता आदि को पूरी तरह से अस्वीकार कर दिया गया। ऐसे में इस दौर की कहानियों में इन सबसे एक मुक्ति की बेचैनी भी दिखाई पड़ती है। विधाएँ अपना दायरा तोड़ती हैं और एक-दूसरे में आवाजाही करती हैं। इसीलिए इस दौर की कहानियों में काव्यात्मकता, औपन्यासिकता, नाटकीयता आदि का जबदस्त प्रभाव दिखाई पड़ता है। वहीं देशज के स्तर पर यदि देखें तो इस दौर में देशज का कहानियों में खूब प्रयोग किया गया है। इन सबके सम्मिलित प्रभाव से कहानी में रोचकता, सहजता और सरलता आई है। पाठक के हिसाब से कहें तो इस दौर की कहानी के साथ ही कहानी से पाठक का जुड़ाव फिर पहले जैसा बनता दिखाई पड़ता है। समकालीन दौर में भाषा का जो बदला स्वरूप है वह पहले की कहानी की भाषा से अलग है। उसका कारण है युगीन परिवेश और प्रयोग के प्रति नकारात्मकता का भाव। नई कहानी के दौर में निर्मल वर्मा जिस तरह का परिवेश रचते हैं वह कलावाद के नाम पर एक अलग तरह से व्याख्यायित किया गया। दूसरे कथा साहित्य में यथार्थ के प्रति इनता ज्यादा आग्रह था कि वहाँ प्रयोग के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं थी समकालीन दौर की कहानी इन सबसे मुक्त है। इसीलिए इस दौर की कहानियों में भाषा का एक अलग रूप दिखाई पड़ता है। वहीं कथ्य के स्तर पर यदि देखें तो यथार्थ के जितने रूप समकालीन कहानियों में दिखाई पड़ते हैं उतने रूप इसके पहले के किसी दौर की कहानी में नहीं दिखाई पड़ते हैं।

संदर्भ-

1. दिवाकर, रामधारी सिंह, 'मृतजीवी', सारिका,संपादक: कन्हैयालाल नंदन, पृ. 36, वर्ष 22, अंक 303, 16-28 फरवरी 1982
2. कालिया, ममता, 'मनहूसाबी', सारिका, सहायक संपादक: अवधनारा-यण मुद्गल, पृ. 10, वर्ष 23, अंक 344, 1-15 नवम्बर 1983
3. शैवाल, 'बेबीलोन', सारिका,सहायक संपादक: अवधनारायण मुद्गल, पृ. 26-27, वर्ष 24, अंक 370, 1-15 दिसम्बर 1984
4. गुजराल, तरसेम, 'साजिश', सारिका,सहायक संपादक: अवधनारायण मुद्गल, पृ. 54, वर्ष 27, अंक 425, सितम्बर 1987
5. हर्षुल, आनंद, 'उस बूढ़े आदमी के कमरे में', हंस, सहायक संपादक: राजेन्द्र यादव, पृ. 54, वर्ष 3, अंक 7, फरवरी 1989, नयी दिल्ली
6. प्रकाश, उदय, 'रामसजीवन की प्रेमकथा', हंस,संपादक: राजेन्द्र यादव, पृ. 57, वर्ष 1, अंक 2, सितम्बर 1986, नई दिल्ली
7. प्रकाश, उदय, 'टेपचू' सारिका, संपादकः कन्हैयालाल नंदन, पृ. 26, वर्ष 21, अंक 290, 1 अगस्त 1981
8. भाटिया, अशोक, 'समकालीन कहानी का इतिहास' पृ. 248
9. प्रियंवद, 'आर्तनाद' लंबी कहानियाँ-1 श्रृंखला संपादक: राजेन्द्र यादव, पृ. 19, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
10. मंडलोई, लीलाधर, भूमिका
11. प्रकाश, स्वयं, 'हमारी पीढ़ी का सबसे मेहनती कहानीकार' (संस्मरण), पाखी, संपादक: अपूर्व जोशी, पृ. 81, वर्ष 01, अंक 12, सितंबर 2009
12. सिंह, नामवर, 'गद्य को पहचान देने वाला लेखक', बया, संपादक: गौरीनाथ, पृ. 12, वर्ष 7, अप्रैल-जून 2013

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
श्री गुरू नानक देव खालसा कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय)
नई दिल्ली-110005 मेल-drshailjamohan@gmail.com
मो. 9868617559

साहित्य की ज़मीं पर सिनेमा का आकाश

डॉ. पुनीत बिसारिया

"डॉ.राही मासूम रज़ा को भी फिल्म पटकथा और संवाद लेखन में सफलता मिली। उनकी कलम से निकली 82 फिल्मों में से 'मिली' (1975), 'आलाप'(1977), 'मैं तुलसी तेरे आंगन की' (1978), 'क़र्ज़' (1980),'रॉकी'(1981), 'एक ही भूल'(1981), 'बेमिसाल' (1982), 'निकाह' (1982), 'डिस्को डांसर' (1982), 'किसी से न कहना' (1983), 'आख़िरी रास्ता'(1983) और 'लम्हे' (1991) प्रमुख हैं, लेकिन आज उन्हें 'महाभारत'(1988) टीवी धारावाहिक की पटकथा लेखक के नाम से अधिक जाना जाता है। उन्हें सन 1979 में 'मैं तुलसी तेरे आंगन की' फिल्म के लिए सर्वश्रेष्ठ संवाद लेखन हेतु फिल्मफेयर पुरस्कार दिया गया था, लेकिन इतना काम करने के बावजूद उन्हें भी फिल्म जगत से निराशा ही हाथ लगी। 'सिनेमा और संस्कृति' ग्रन्थ में माध्यम की तलाश' शीर्षक से लिखे एक लेख में उन्होंने अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए लिखा था, "डायलॉग राइटर के सिवा यह हक हरेक को है कि वह राइटर के लिखे हुए डायलॉग को ठीक कर ले। कुछ लोग यह काम राइटर को जलील किये बिना करते हैं और कुछ राइटर को जलील करने के लिए ही ऐसा करते हैं।"

"सफल फिल्म बनाने के लिए ज़रूरी है कि फिल्म निर्माण में पहला और आख़िरी शब्द लेखक का सुना जाए।"
ओर्सन वेल्स

साहित्य समाज का 'दर्पण', 'अर्पण', 'तर्पण' और 'समर्पण' है, सिनेमा भी यही काम करता है। अगर इस विचार को और स्पष्ट करें तो साहित्य और सिनेमा समाज के दर्पण हैं क्योंकि जो कुछ अच्छा-बुरा समाज में घटित होता है, वह साहित्य और सिनेमा का विषय बन जाता है और दर्पण की प्रतिच्छाया की तरह इन दोनों माध्यमों से वर्णित होता है। साहित्य और सिनेमा समाज के अर्पण हैं क्योंकि जैसा समाज का स्वरूप होता है, तदनुरूप इन माध्यमों से जनता को अर्पित किया जाता है। साहित्य और सिनेमा समाज के तर्पण हैं क्योंकि अनेक बार साहित्य और सिनेमा अपने कथ्य के द्वारा हमारे पूर्वजों के वृत्तान्त हमारे सामने रखकर उनका तर्पण करते हैं। साहित्य और सिनेमा समाज के समर्पण हैं क्योंकि ये दोनों माध्यम पाठक और दर्शक को वह समर्पित करते हैं, जो उनकी दृष्टि में समर्पणीय होता है।

साहित्य और सिनेमा मनुष्यता की प्रयोगशाला भी है, जिसमें मानवता के विभिन्न गुण-अवगुण, भाव-अभाव, संवेदनाएं, दुःख-सुख, जिजीविषा, आशा-निराशा, रस-नीरस आदि को प्रदर्शित किया जाता है, जिसे पढ़-देखकर पाठक-दर्शक पात्रों की भावनाओं से गहरे से जुड़ जाते हैं।

इन सब समानताओं के बावजूद वास्तविकता यह है कि साहित्य और सिनेमा एक दूसरे से काफी दूरी पर खड़े नज़र आते हैं। ऐसा होने के लिए साहित्य और सिनेमा दोनों ही पक्षों से जुड़े लोग उत्तरदायी हैं क्योंकि सिनेमा ने साहित्य को सिनेमा की दृष्टि में गौण मानकर उसे वह सम्मान नहीं दिया, जिसका वह हकदार था और साहित्य ने अपने कालजयी होने की अकड़ में सिनेमा के साथ सामंजस्य स्थापित करने का कोई सार्थक उपक्रम नहीं किया, जिससे अंततः साहित्य और सिनेमा दोनों का नुकसान हुआ और इससे बड़ा नुकसान पाठकों और दर्शकों का हुआ, जो बेहतरीन साहित्यिक कृतियों पर उत्कृष्ट सिनेमा देखने से वंचित रह गए।

ऐतिहासिक सन्दर्भ में साहित्य और सिनेमा के संबंधों का विश्लेषण करें तो कई रोचक निष्कर्ष निकलकर हमारे सामने आते हैं। शुरुआती दौर में सन 1934 में हिन्दी के सबसे बड़े लेखक मुंशी प्रेमचंद अजंता सिनेटोन नामक फिल्म कम्पनी के आमंत्रण पर फिल्म जगत में पदार्पण करते हैं और 'शेरदिल औरत' की पटकथा और 'नवजीवन' फिल्म के गीत लिखते हैं। इसी साल अजंता सिनेटोन से ही उनकी

चर्चित और साहित्य-सिनेमा के संबंधों की नज़र से महत्त्वपूर्ण फिल्म 'द मिल/मजदूर' प्रदर्शित होती है, जिसमें मिल मालिकों के साथ मिल मजदूरों के संघर्ष और मजदूरों की जीत को दिखाया गया था। उस समय बॉम्बे मिल ओनर्स एसोसिएशन के अध्यक्ष बैरामजी जीजाभाय फिल्म सेंसर बोर्ड के भी अध्यक्ष थे। उन्हें भला यह कैसे गवारा होता कि कोई फिल्म मिल मालिकों के ऊपर प्रहार करे और वे ऐसी फिल्म को प्रदर्शित होने दें। फलतः रिलीज़ होते ही इस फिल्म को भारत की पहली ऐसी फिल्म का तमगा हासिल हो गया, जिसे सेंसर बोर्ड द्वारा बैन कर दिया गया था। हालांकि इससे पहले फिल्म के निर्देशक मोहन दयाराम भवनानी और खुद सेंसर बोर्ड ने इसकी कहानी में काफी परिवर्तन किये थे। फिल्म में हुई काट-छाँट से प्रेमचंद बेहद दुखी हुए थे और इस फिल्म के अंतिम स्वरूप को देखकर उन्होंने इसे 'प्रेमचंद की हत्या' कहा था। इतने बदलावों के बाद रिलीज़ होने पर भी देश भर में मिल मालिकों के विरोध और इसे हवा देने वाले फिल्म सेंसर बोर्ड के अध्यक्ष बैरामजी जीजाभाय ने इस फिल्म को 'भड़काऊ और खतरनाक' तथा 'मजदूरों एवं मिल मालिकों के संबंधों में ज़हर घोलने वाली' बताकर इस पर रोक लगा दी थी।

उन्होंने अपने साहित्यिक उत्तराधिकारी जैनेन्द्र को इस सम्बन्ध में लिखा, "फ़िल्मी हाल क्या लिखूँ ? 'मिल' यहाँ पास न हुई, लाहौर में पास हुई और दिखाई जा रही है। मैं जिन इरादों से आया था, उनमें से एक भी पूरा होता नज़र नहीं आता। ये प्रोड्यूसर जिस ढंग की कहानियाँ बनाते आए हैं, उसकी लीक से जौ भर भी नहीं हट सकते। 'वल्गैरिटी' को ये 'एंटरटेनमेंट वैल्यू' कहते हैं। मैंने सामाजिक कहानियाँ लिखी हैं, जिन्हें शिक्षित समाज भी देखना चाहे लेकिन उनकी फिल्म बनाते इन लोगों को संदेह होता है कि चले, या न चले।"

यह बात भी सच है कि इस फिल्म के लाहौर, लखनऊ और दिल्ली में प्रदर्शित होने के बाद अनेक मिलों के मजदूरों में अपने हक की मांग करते हुए हड़ताल और धरने प्रदर्शन करने शुरू कर दिए थे। और तो और, वाराणसी में प्रेमचंद की 'सरस्वती प्रेस' के मजदूर भी हड़ताल पर चले गए थे।

हालांकि इससे पहले सन 1934 में नानूभाई वकील ने उनके उपन्यास सेवासदन (जो उर्दू में बाज़ार-ए-हुस्न के नाम से लिखा गया था) पर 'सेवासदन' नाम से फिल्म बनाई थी। प्रेमचंद द्वारा अजंता सिनेटोन के लिए लिखी सभी फिल्मों'द मिल/मजदूर'(1934),'शेरदिल औरत'(1935) और 'नवजीवन'(1935) के बुरी तरह से फ्लॉप होने और 'द मिल/मजदूर' फिल्म के साथ हुए सुलूक से वे इतने दुखी हुए कि बम्बई छोड़कर वाराणसी वापस लौट आए और आकर अपने मित्र जयशंकर प्रसाद को एक पत्र लिखा, जिसमें बम्बई फिल्म के विषय में वे लिखते हैं. " यहाँ बम्बई की फिल्म नगरी को देखकर चित्त प्रसन्न नहीं हुआ, सब रुपए कमाने की धुन में हैं, चाहे फिल्म कितनी गंदी और भ्रष्ट हो। हर कोई काम को सोलह आने व्यवसाय की दृष्टि से देखता है। जो लोग बड़े सफल समझे जाते हैं, वे भी अंग्रेज़ी फिल्मों की नकल कर वाहवाही पाते हैं।"

प्रेमचंद यहीं पर नहीं रुके और वापस आकर उन्होंने सिनेमा और साहित्य के संबंधों पर एक लंबा लेख लिखा जिसमें उन्होंने साहित्य को 'दूध' और सिनेमा को 'ताड़ी' की संज्ञा दी और सिनेमा बनाने वालों को धन लुटेरे कहते हुए इनसे दैहिक,आत्मिक, चारित्रिक, आर्थिक और पारिवारिक हानि की बात कही। इससे आम लोगों और साहित्य से जुड़े लोगों में यह भावना घर कर गयी कि सिनेमा अच्छी चीज़ नहीं है और साहित्य के लिए यह नुकसानदेह है। हालांकि यह अलग बात है कि उनके निधन के बाद उनकी कहानियों एवं उपन्यासों पर अनेक फ़िल्में बनीं, जिनमें 'स्वामी'(1941),'हीरा मोती'(1959), 'गोदान'(1963),'कुत्ते की कहानी' (1964),'गबन' (1966), 'शतरंज के खिलाड़ी' (1977), 'सद्गति' (1981), 'गुल्ली डंडा' (2010), 'बाज़ार-ए-हुस्न' (2014) शामिल हैं। इनके अतिरिक्त टीवी फिल्म 'पंच परमेश्वर (1995) और कुछ धारावाहिक भी उनके उपन्यासों पर बने हैं, जिनमें 'निर्मला' (1987),'तहरीर.. मुंशी प्रेमचंद की' (2004), 'मुंशी प्रेमचंद का गुलदस्ता' (2009), 'एक बेतुके आदमी की अफराह रातें' (2019) के नाम लिए जा सकते हैं।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' हिन्दी साहित्य के महत्त्वपूर्ण लेखक रहे हैं. किन्तु इनकी तत्समय अत्यंत 'बोल्ड' मानी जाने वाली रचनाओं के कारण इनका साहित्य जगत में घोर विरोध हुआ, उनके 'चॉकलेट' कहानी संग्रह के विरुद्ध 'घासलेट आन्दोलन' चलाया गया, जबकि महात्मा गाँधी स्वयं इस कहानी संग्रह की प्रशंसा कर चुके थे, किन्तु विरोधियों के दुष्प्रचारों से परेशान होकर उग्र जी ने लिखा, "परे करो इस हिन्दी को। चरने दो उन्हें, चरा रही है मेरी चर्चा, चलो बम्बई चलो।" इसके बाद सन 1934 में उन्होंने साहित्य लेखन छोड़कर 'पंडित उग्र' के नाम से हिन्दी फिल्म जगत में प्रवेश किया और 'सस्सी पुन्नू' (1932),

'पतित पावन'(1933), 'नन्द के लाल राधामोहन' (1934), 'महारानी' (1934), 'जांबाज़ मलिका' (1936), 'सजीव मूर्ति'(1935), 'संस्कार' (1940) आदि अनेक फिल्मों की कहानी, पटकथा और गीत लिखे। उन्होंने सन 1934 में बनी फिल्म 'बाला जोबन' में अभिनय भी किया, किन्तु बम्बई फिल्म जगत से शीघ्र ही उन्हें विरक्ति हो गयी और सन 1940 में वे साहित्य की दुनिया में वापस लौट आए।

सन 1937 में उर्दू के अफसानानिगार मंटो ने 'किसान कन्या' फिल्म की पटकथा लिखी, जो अत्यंत सफल रही। इसके बाद उन्होंने 'चल चल रे नौजवान' (1944), 'शिकारी' (1946) और 'मिर्ज़ा ग़ालिब' (1954) जैसी फिल्मों की पटकथा लिखी। उनकी मृत्यु के बाद भी उनकी कहानियों पर 'अंतरीण' (1993), 'टोबा टेक सिंह'(2005), आदि अनेक फ़िल्में बनीं।

उपेन्द्र नाथ 'अश्क' भी फिल्मिस्तान स्टूडियो के लिए सन 1945 में बम्बई गए और उन्होंने ' मजदूर' और 'एट डेज़' फिल्मों में अभिनय किया लेकिन अभिनय में सफलता न मिलने पर वे कुछ दिनों में ही वापस लौट गए।

'हार की जीत' जैसी अमर कहानी के सर्जक सुदर्शन ने अपने फ़िल्मी जीवन की शुरुआत 'पंडित सुदर्शन' नाम से सन 1934 में 'रामायण' से की और अगले साल सन 1935 में 'कुंवारी या विधवा' फिल्म का निर्देशन किया। फिल्म निर्देशन में अपेक्षित सफलता न मिलने पर इसके बाद से उन्होंने खुद को कहानी, पटकथा और संवाद तथा गीत लेखन तक सीमित कर लिया। उन्होंने जिन फिल्मों के लिए गीत लेखन किया, उनके नाम हैं-'रामायण', 'धूप छांव'(सन 1935 की इस फिल्म का उनका लिखा गीत 'तेरी गठरी में लागा चोर मुसाफिर जाग ज़रा' आज भी लोग गुनगुनाया करते हैं),'धरतीमाता' (1935), 'कुमकुम द डांसर' (1940), 'दीवाली'(1940), 'सिकन्दर' (1941), 'पड़ोसी' (1941), 'फिर मिलेंगे' (1942), 'परख'(1944), 'सुभद्रा' (1946), 'एक था राजा' (1951) और 'रानी' (1952)। उन्होंने जिन फिल्मों की कहानी, पटकथा या संवाद लिखे, उनमें 'कुंवारी या विधवा', 'धूप छांव', 'ग्रामोफोन सिंगर' (1938), 'सिकन्दर' (1941), 'पड़ोसी' (1941), 'पृथ्वी वल्लभ' (1943),'परख' (1944), 'मशाल' (1950), 'एक था राजा' (1951), 'झाँसी की रानी' (1953), 'कुंदन' (1955) और 'पंचायत' (1958) शामिल हैं। वे सन 1950 में स्थापित फिल्म लेखक संघ के उपाध्यक्ष थे। उनके पुत्र शशिभूषण ने भी 'प्रोफ़ेसर' (1962), 'मोहब्बत ज़िन्दगी है' (1966), 'अनामिका' (1973), 'पॉकेटमार (1974), 'काला आदमी' (1978), 'जलमहल' (1980), 'लावारिस' (1981) और 'प्रेमगीत' (1981) जैसी सुपरहिट फिल्मों की पटकथा लिखी।

भगवती चरण वर्मा और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' भी फिल्म जगत में भाग्य आजमाने बम्बई पहुंचे, जहाँ निर्माता, निर्देशक, अभिनेता किशोर साहू ने इनकी भरपूर सहायता की। फिल्म निर्देशक केदार शर्मा ने भगवतीचरण वर्मा के अमर उपन्यास 'चित्रलेखा' पर सर्वप्रथम सन 1941 में इसी नाम से फिल्म बनाई, किन्तु वर्मा जी फिल्म में उपन्यास के ट्रीटमेंट से संतुष्ट नहीं हुए और वापस आ गए। बाद में केदार शर्मा ने सन 1964 में दोबारा 'चित्रलेखा' फिल्म बनाई, लेकिन इस बार उन्होंने भगवतीचरण वर्मा जी को फिल्म के प्रीमियर में बुलाना भी ज़रूरी नहीं समझा और लखनऊ में लाइन में लगकर टिकट खरीदकर वर्मा जी को अपनी ही फिल्म देखनी पड़ी।

अभिनेता, निर्देशक, लेखक किशोर साहू ने भी कुछ महत्त्वपूर्ण फिल्मों की कहानी या उनके संवाद लिखे हैं, जिनमें 'दिल अपना और प्रीत पराई' (1960),'हरे कांच की चूड़ियाँ'(1967), 'तीन बहूरानियाँ'(1968) और 'अपनापन'(1977) के नाम मुख्यतः लिए जा सकते हैं।

प्रश्न चंदर उर्दू के मशहूर लेखक, शायर रहे हैं। उन्होंने 'धरती के लाल' (1946), 'आन्दोलन' (1951), 'दो फूल' ((1958), 'ममता' (1966), 'मनचली' (1973) जैसी फ़िल्में लिखीं और 'बड़ी बहन' (1949) फिल्म में सहायक संगीत निर्देशक की भूमिका निभाई।

लेखक रामवृक्ष बेनीपुरी भी हिन्दी फिल्म जगत में लेखन हेतु मुंबई गए थे और उन्होंने सन1966 में 'बालगोबिन भगत' फिल्म की कहानी सुरेन्द्र मोहन प्रसाद के साथ लिखी थी।

पंडित मुखराम शर्मा ने 22 फिल्मों की पटकथा लिखी, जिनमें से ज़्यादातर सफल रहीं, लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि इनकी चर्चा नहीं होती। शर्मा जी द्वारा लिखित फिल्मों में 'वचन' (1955), 'एक ही रास्ता' (1956), 'साधना' (1958), 'धूल का फूल'(1959), 'घराना'(1961), 'राजा और रंक' (1968), 'हमजोली' (1970), 'समाधि'(1972) और 'स्वीकार किया मैंने' (1983) प्रमुख हैं।

लेखक, निर्माता, निर्देशक ख्वाजा अहमद अब्बास को फिल्मों में सर्वाधिक सफलता मिली। उन्होंने 36 फिल्मों की पटकथा और संवाद लिखे और 34 फिल्मों का निर्देशन किया। उनके द्वारा लिखी

गई महत्त्वपूर्ण फिल्मों में 'डॉ कोटनीस की अमर कहानी'(1946), 'आवारा' (1951), 'श्री 420' (1955), 'परदेसी' (1957), 'सपनों का सौदागर' (1968), 'सात हिन्दुस्तानी' (1969), 'मेरा नाम जोकर' (1970), 'बॉबी' (1971) और 'हिना' (1991) शामिल हैं। उन्होंने 'धरती के लाल' (1946), 'आज और कल' (1947), शहर और सपना' (1961) तथा 'सात हिन्दुस्तानी' (1969) जैसी सफल फिल्मों का निर्देशन किया। 'धरती के लाल' फिल्म को तत्कालीन सोवियत संघ और अमेरिका में काफी पसंद किया गया और इस फिल्म ने हिन्दी फिल्मों को भारत से बाहर लोकप्रियता प्रदान करने में उत्प्रेरक की भूमिका निभाई।

वृन्दावनलाल वर्मा अपने कुछ अन्य उपन्यासों एवं कहानियों पर स्वयं फिल्म बनाना चाहते थे, इसके लिए वे मुंबई गए और गीतकार शैलेन्द्र से मिलकर फिल्म बनाने हेतु मशविरा किया। सबसे पहले उन्होंने 'गंगा की कहानी' फिल्म की पटकथा लिखी, जिसे बाद में उत्तर प्रदेश सरकार ने इसी नाम से फिल्म बनाकर रिलीज़ किया था। बाद में वर्मा जी ने अपने उपन्यासों 'झाँसी की रानी', 'कचनार' और 'मृगनयनी' पर भी फ़िल्में बनाने का प्रयास किया। उन्होंने 'हंस मयूर' नामक एक अन्य फिल्म की पटकथा भी लिखी, लेकिन वित्तीय खर्च अधिक होने और फिल्म जगत से अपेक्षित सहयोग न मिलने के कारण उन्हें फिल्म जगत से वापस आना पड़ा। फ़िल्मकार सत्यदेव जी को एक पत्र में वर्मा जी ने लिखा था, "चिरंजीव सत्यदेव, फिल्म की स्क्रिप्ट बना ली गई है। बम्बई की चित्रालय कम्पनी, जो पारसी बाज़ार स्ट्रीट में है, ने स्क्रीन प्ले ले लिया है, उनकी प्रोडक्शन लागत 80 हजार आ रही है, शाखाल जी जो आर्ट डायरेक्टर हैं, उनको 30 हजार देना है, अन्य खर्चे 20 हजार हैं। मैंने शर्त रखी है कि झाँसी की रानी के विरुद्ध चित्र न बने, पुस्तक की आत्मा की रक्षा की जाए।" बाद में इसी कम्पनी ने फिल्म की लागत इतनी अधिक कर दी कि यह फिल्म बनने से पहले ही बंद हो गई। ऐसा ही उनके अन्य फ़िल्मी स्वप्नों का भी हाल हुआ और उन्हें निराश होकर झाँसी वापस आना पड़ा।

यहाँ उर्दू की मशहूर लेखिका इस्मत चुगताई की चर्चा करना आवश्यक है, जिन्होंने अपने पति रशीद लतीफ़ के साथ मिलकर सन 1958 में 'फिल्मिना' नाम से फिल्म प्रोडक्शन कम्पनी खोली और 'सोने की चिड़िया' (1958) की पटकथा और संवाद लिखे। 'ज़िद्दी' (1948), 'आरजू'(1950), 'गरम हवा' (1973) और 'महफ़िल' (1981) भी उन्हीं की कलम से सिनेमा के परदे पर उतरी कहानियाँ हैं। सन 1978 में इस्मत चुगताई ने श्याम बेनेगल की फिल्म 'जूनून' फिल्म के संवाद लिखे। इससे पहले वे सन 1953 में 'फरेब' फिल्म की पटकथा लिखकर इस फिल्म का अपने पति के साथ निर्देशन कर चुकी थीं। उन्होंने फिल्म निर्देशक गुरुदत्त के जीवन पर आधारित उपन्यास 'अजीब आदमी' (1970) लिखा, जो उस समय बेहद चर्चित हुआ था क्योंकि उन्होंने इस उपन्यास के सभी पात्रों के वास्तविक जीवन के नाम वर्णित किये थे।

साहित्य अकादेमी से पुरस्कृत राजिंदर सिंह बेदी को भी फिल्म जगत में अपार सफलता मिली। उन्हें सन 1958 में फिल्म 'मधुमती' और सन 1969 में 'सत्यकाम' हेतु फिल्मों के लिए सर्वश्रेष्ठ संवाद लेखन हेतु फिल्मफेयर पुरस्कार दिया गया था। उनके द्वारा लिखित अन्य महत्त्वपूर्ण फिल्मों में 'बड़ी बहन' (1949), 'दाग' (1952), 'देवदास' (1955), 'मिलाप' (1955), 'बसंत बहार' (1956), 'मुसाफिर' (1957), 'अब दिल्ली दूर नहीं' (1957), 'अनुराधा'(1960), 'बम्बई का बाबू'(1960), 'आस का पंछी'(1961), 'दूज का चाँद' (1964), 'मेरे सनम' (1965), 'अनुपमा' (1966), 'मेरे हमदम मेरे दोस्त' (1968), 'अभिमान'(1973), 'मुट्ठी भर चावल' (1978) और 'एक चादर मैली सी' (1986) शामिल हैं। उन्होंने 'दस्तक'(1970),'फागुन'(1973), 'नवाब साहब'(1978) और 'आँखिन देखी' (1978) फिल्मों का निर्देशन भी किया।

वजाहत मिर्ज़ा ने स्वतंत्र रूप से और फ़िल्मकार महबूब के साथ मिलकर अनेक अविस्मरणीय फ़िल्में लिखीं, इनमें 'यहूदी की लड़की' (1939), 'एक ही रास्ता'(1939), 'औरत' (1940), 'मदर इंडिया' (1957), 'यहूदी'(1958), 'मुगल ए आज़म'(1960), 'कोहिनूर' (1960), 'गंगा जमना' (1961), 'लीडर' (1964), 'गंगा की सौगंध' (1978) और 'लव एंड गॉड' (1986) प्रमुख हैं।

गुलशन नंदा को हिन्दी साहित्य जगत ने कभी लेखक के तौर पर उचित सम्मान नहीं दिया, लेकिन वे फिल्म पटकथा लेखन में काफी सफल हुए। उनके द्वारा लिखी गयी 31 फिल्मों में लगभग सभी फ़िल्में बॉक्स ऑफिस पर सफल रहीं, जिनमें 'पुनर्जन्म'(1963), 'काजल' (1965), 'सावन की घटा' (1966), 'पत्थर के सनम' (1967), 'नीलकमल' (1968), 'वासना' (1968), 'कटी पतंग' (1970), 'खिलौना' (1970), 'शर्मीली' (1971), 'नया ज़माना' (1971), 'दाग' (1973), 'झील के उस पार' (1973), 'जुगनू' (1973) और 'नज़राना' (1987) के नाम लिए जा सकते हैं।

सचिन भौमिक हिन्दी फिल्म जगत के अनाम, किन्तु बेहतरीन लेखक रहे हैं। उन्होंने सर्वाधिक 101 फिल्मों की पटकथा लिखी, जिनमें से अधिकांश सफल रहीं। उनकी कलम की स्याही से निकली महत्त्वपूर्ण फिल्मों में 'अनुराधा'(1960), 'आई मिलन की बेला'(1964), 'जानवर'(1965), 'लव इन टोक्यो'(1966), 'आए दिन बहार के' (1966), 'एन इवनिंग इन पेरिस' (1967), 'ब्रह्मचारी' (1968), 'आराधना' (1969), 'आया सावन झूम के (1969), 'आन मिलो सजना' (1970), 'अंदाज़'(1971), 'जुगनू' (1973), 'दोस्त' (1974), 'खेल खेल में' (1975), 'हम किसी से कम नहीं' (1977), 'दो और दो पांच'(1978), 'क़र्ज़'(1980), 'ज़माने को दिखाना है' (1981),'बेमिसाल' (1982), 'नास्तिक' (1983), 'झूठी' (1985), 'कर्मा' (1986), 'सौदागर' (1991), 'मैं खिलाड़ी तू अनाड़ी' (1994), 'करण अर्जुन' (1995), 'कोयला' (1997), 'आंटी नंबर वन' (1998), 'आ अब लौट चलें' (1999), 'कोई मिल गया' (2003), 'किसना' (2005), 'कृष' (2006) आदि शामिल हैं।

हिन्दी साहित्य जगत के बड़े लेखक कमलेश्वर ने भी अनेक फिल्मों की पटकथा और संवाद लिखे, जिनमें अमिताभ बच्चन, संजीव कुमार आदि बड़े कलाकारों ने अभिनय किया। उनकी महत्त्वपूर्ण फिल्मों में 'आंधी' (1975), 'अमानुष' (1975), 'मौसम' (1975), 'साजन बिना सुहागन'(1978), 'द बर्निंग ट्रेन' (1980), 'राम बलराम' (1980), 'बरसात की एक रात' (1981), 'सौतन' (1983), 'लैला' (1984) और 'खलनायिका' (1993) के नाम लिए जा सकते हैं।

कथाकार अमृतलाल नागर ने सत्यजित रॉय को प्रेमचंद की कहानी पर आधारित फिल्म 'शतरंज के खिलाड़ी' के निर्माण में सहयोग दिया।

डॉ.राही मासूम रज़ा को भी फिल्म पटकथा और संवाद लेखन में सफलता मिली। उनकी कलम से निकली 82 फिल्मों में से 'मिली' (1975), 'आलाप'(1977), 'मैं तुलसी तेरे आंगन की' (1978), 'क़र्ज़' (1980),'रॉकी'(1981), 'एक ही भूल'(1981), 'बेमिसाल' (1982), 'निकाह' (1982), 'डिस्को डांसर' (1982), 'किसी से न कहना' (1983), 'आख़िरी रास्ता'(1983) और 'लम्हे' (1991) प्रमुख हैं, लेकिन आज उन्हें 'महाभारत'(1988) टीवी धारावाहिक की पटकथा लेखक के नाम से अधिक जाना जाता है। उन्हें सन 1979 में 'मैं तुलसी तेरे आंगन की' फिल्म के लिए सर्वश्रेष्ठ संवाद लेखन हेतु फिल्मफेयर पुरस्कार दिया गया था, लेकिन इतना काम करने के बावजूद उन्हें भी फिल्म जगत से निराशा ही हाथ लगी। 'सिनेमा और संस्कृति' ग्रन्थ में माध्यम की तलाश' शीर्षक से लिखे एक लेख में उन्होंने अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए लिखा था, "डायलॉग राइटर के सिवा यह हक हरेक को है कि वह राइटर के लिखे हुए डायलॉग को ठीक कर ले। कुछ लोग यह काम राइटर को जलील किये बिना करते हैं और कुछ राइटर को जलील करने के लिए ही ऐसा करते हैं।" लब्बोलुआब यह कि फिल्म जगत में पटकथा लेखन के सब जानकार हैं, यह काम अगर किसी को नहीं आता है तो वह स्वयं पटकथा लेखक है। अपने उपन्यास 'सीन 75' में फ़िल्मी जगत की चकाचौंध के पीछे की काली सच्चाई का उन्होंने पर्दाफाश किया है।

सलीम खान ने स्वतंत्र रूप से और गीतकार जावेद अख्तर के साथ मिलकर 'सलीम जावेद' नाम से अनेक फिल्मों की पटकथा और संवाद लिखे, जो बेहद सफल रहीं। उन्होंने स्वतंत्र रूप से 'सीता और गीता'(1972), 'ज़ंजीर' (1973), 'दीवार' (1975), 'चाचा भतीजा' (1977), 'त्रिशूल'(1978), 'काला पत्थर' (1979), 'नाम'(1986), 'अकेला' (1991) और 'पत्थर के फूल'(1991) जैसी फिल्मों की पटकथा और संवाद लिखे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सलीम खान ने सन 2013 में प्रसारित टीवी धारावाहिक 'महाभारत' के 20 एपिसोड लेखन में भी सहायता की।

सलीम जावेद की जोड़ी ने अनेक सुपरहिट फ़िल्में दी हैं। वास्तव में सिनेमा में लेखक को श्रेय मिलने की शुरुआत इसी जोड़ी से मानी जा सकती है। इनके द्वारा लिखित सुपरहिट फिल्मों में 'हाथी मेरे साथी'(1971), 'हाथ की सफाई' (1974), 'शोले'(1975), 'ईमान धरम' (1977), 'डॉन' (1978), 'शान' (1980), 'क्रांति'(1981), 'शक्ति' (1982) और 'मिस्टर इंडिया' (1987) आदि हैं।

मनोहर श्याम जोशी को फिल्म जगत में एक सीमा तक ही सफलता मिली। उनके द्वारा लिखित फिल्मों में 'मंज़िल' (1979), 'भ्रष्टाचार' (1989) और 'हे राम' (2000) के नाम लिए जा सकते हैं लेकिन उनको वास्तविक ख्याति टीवी सोप ओपेरा 'हम लोग' (1984) और 'बुनियाद' (1987) से मिली। वस्तुतः उन्हें हिन्दी टीवी धारावाहिक का जनक माना जाना चाहिए।

डॉ अचला नागर को भी फिल्म जगत में काफी सफलता मिली। एक लेखक के रूप में उनकी महत्त्वपूर्ण फिल्मों में 'निकाह'(1982),'

आखिर क्यों' (1985), 'सदा सुहागन' (1986), 'नगीना' (1986), 'नजराना' (1987), 'ईश्वर' (1989), 'निगाहें' (1989), 'सैलाब' (1990), 'गीत' (1992) और 'बागबान' (2003) के नाम लिए जा सकते हैं।

सागर सरहदी जिनका असली नाम गंगा सागर तलवार था, ने भी अनेक यादगार फ़िल्में हिन्दी सिने जगत को दी हैं। उनके द्वारा लिखी फिल्मों में 'अनुभव'(1971), 'कभी कभी' (1976), 'सिलसिला' (1981), 'बाज़ार' (1982), 'चांदनी' (1989), 'दीवाना' (1992), 'रंग' (1993) और 'कहो ना प्यार है' (2000) प्रमुख हैं। उन्होंने 'बाज़ार' जैसी चर्चित फिल्म का निर्देशन भी किया, जिसे बॉक्स ऑफिस पर अपार सफलता मिली। 22 मार्च, 2021 को उनका निधन हो गया।

गुलज़ार की यूं तो ख्याति गीतकार के तौर पर अधिक है, किन्तु उन्होंने कुछ यादगार फिल्मों की पटकथा और संवाद लेखन में भी अपनी भूमिका निभाई है। उनके द्वारा 69 फिल्मों की पटकथा अथवा संवाद लिखे गए हैं, जिनमें 'शागिर्द' (1967), 'संघर्ष' (1968), 'गुड्डी'(1971), 'महबूब की मेंहदी'(1971), 'आनंद' (1971), 'मेरे अपने' (1971), 'परिचय' (1972), 'नमक हराम'(1973), 'अचानक'(1973), 'आंधी'(1975), 'चुपके चुपके'(1975), 'खुशबू' (1975), 'मौसम'(1975), 'गृह प्रवेश' (1979), 'अंगूर' (1982), 'नमकीन' (1982),'सदमा' (1983),'न्यू डेल्ही टाइम्स' (1986), 'लेकिन' (1990),'रुदाली'(1993), 'माचिस' (1996), 'चाची 420' (1997) और 'साथिया' (2002) के नाम विशेष तौर पर उल्लेखनीय हैं।

विजयदान देथा राजस्थानी कथा जगत के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर रहे हैं, राजस्थान की लोक संस्कृति पर आधारित उनकी रचनाओं पर अनेक फ़िल्में बनी हैं, जिनमें 'दुविधा' पर आधारित फिल्म 'दुविधा' (1973), और 'पहेली' (2005), 'परिणति' (1989) एवं 'लाजवंती' (2014) प्रमुख हैं।

उपरिलिखित लेखकों के अलावा जिन लेखकों ने हिन्दी सिनेमा को समृद्ध करने में योगदान किया है, उनमें अबरार अल्वी ('आर पार', 'मिस्टर एंड मिसेज़ 55', 'प्यासा', 'कागज़ के फूल', 'बहारें फिर भी आएंगी', 'प्रिंस' आदि), शमा जैदी ('गरम हवा', 'मंथन', 'भूमिका', 'चक्र', 'आरोहण', 'मंडी', 'कहाँ कहाँ से गुजर गए', 'मम्मो', 'सरदारी बेगम', 'निशांत'), अख्तर मिर्ज़ा ('नया दौर', 'वक़्त', 'अब दिल्ली दूर नहीं', 'बावरे नैन', 'धुंध', 'मोहब्बत इसको कहते हैं'), बासु चटर्जी ('चितचोर', 'खट्टा मीठा', 'हमारी बहू अलका', 'लाखों की बात','चमेली की शादी' आदि फ़िल्में तथा ब्योमकेश बख्शी टीवी धारावाहिक) प्रयागराज ('अमर अकबर अन्थोनी', 'सुहाग', 'परवरिश', 'नसीब', 'कुली', 'देशप्रेमी', 'गिरफ्तार', 'गंगा जमना सरस्वती', 'मर्द', 'अजूबा', 'ज़मानत', 'रोटी', 'आ गले लग जा', 'धरम करम', 'दीवाना मस्ताना'), कैफ़ी आज़मी ('गरम हवा', 'हीर राँझा'), शम्स लखनवी ('अंदाज़'), ऋत्विक घटक ('मधुमती'), सुजीत सेन ('अर्थ', 'सारांश'), सुधीर मिश्रा ('जाने भी दो यारों'), कामना चंद्रा ('चांदनी', 'प्रेम रोग', '1942 अ लव स्टोरी', कमलेश पाण्डेय ('तेज़ाब', 'रखवाला', 'चालबाज़', 'दिल', 'सौदागर', 'नरसिम्हा', 'यलगार', 'बेटा', 'खलनायक', 'अक्स', 'जानशीन', 'रंग दे बसन्ती', 'दिल्ली-6' और आने वाली फिल्म 'रामयुग' आदि तथा टीवी धारावाहिक 'कहानी घर घर की', 'द्रौपदी', 'थोड़ी सी ज़मीं थोड़ा सा आसमान', 'विरुद्ध: सेल्फी विद बजरंगी' आदि), हनी ईरानी ('डर', 'लम्हे', 'कहो ना प्यार है', 'क्या कहना'), राजकुमार संतोषी ('फटा पोस्टर निकला हीरो', अजब प्रेम की गजब कहानी', 'खाकी', 'दिल है तुम्हारा', 'द लीजेंड ऑफ़ भगत सिंह', 'लज्जा'. 'पुकार', 'चाइना गेट', 'अंदाज़ अपना अपना', 'घायल', 'दामिनी', 'बैटल ऑफ़ सारागढ़ी'), आदित्य चोपड़ा ('परम्परा', 'दिलवाले दुल्हनिया ले जाएँगे', 'दिल तो पागल है', 'मोहब्बतें', 'वीर ज़ारा', 'बंटी और बबली', धूम 2 और 3, 'रब ने बना दी जोड़ी', 'टाइगर ज़िंदा है' आदि) अनुराग कश्यप ('सत्या', 'कौन', गुलाल, 'देव डी', उड़ान, 'बॉम्बे टाकीज' आदि फ़िल्में तथा 'डर', 'शांति', 'स्वाभिमान'आदि टीवी धारावाहिक), प्रसून जोशी ('ब्रेक के बाद', 'भाग मिल्खा भाग', 'मणिकर्णिका: द क्वीन ऑफ़ झाँसी') इम्तियाज़ अली ('सोचा न था', 'जब वी मेट'), राजकुमार हिरानी ('मुन्ना भाई एमबीबीएस', 'लगे रहो मुन्ना भाई', '3 इडियट्स', 'फेरारी की सवारी', 'पीके', 'संजू'), ज़ोया अख्तर ('ज़िन्दगी फिर न मिलेगी दोबारा', 'अयान मुखर्जी ('वेक अप सिड', 'ये जवानी है दीवानी'), अभिजात जोशी (थ्री इडियट्स), जयदीप साहनी,(बंटी और बबली, चक दे इंडिया), विक्रमादित्य मोटवानी ('देव डी', 'उड़ान', 'लुटेरा'), जीशान कादरी ('गैंग ऑफ़ वासेपुर', 'ओह वूमनिया'), उर्मी जुवेकर ('शरारत', 'रूल्स प्यार का सुपरहिट फ़ॉर्मूला', 'ओये लकी लकी ओये'), हिमांशु शर्मा ('तनु वेड्स मनु', 'राँझना'),

शरत कटारिया ('दम लगा के हइशा', 'तितली'), संदीप सिंह ('रक्त चरित्र', 'गोलियों की रासलीला राम लीला', 'मैरीकॉम', 'सरबजीत', 'भूमि', 'पीएम नरेन्द्र मोदी'), कनिका ढिल्लों ('मनमर्जियाँ'), अलंकृता श्रीवास्तव ('लिपस्टिक अंडर माय बुरका'),गौरी शिंदे ('डिअर जिंदगी'), रीमा कागती ('दिल धड़कने दो'), नंदिता दास ('फिराक', 'मंटो'), अनिरुद्ध चावला ('सबकी बजेगी बैंड', 'पीएम नरेन्द्र मोदी') अन्विता दत्त गौतम ('फिल्लौरी', 'शानदार'), जुही चतुर्वेदी ('विकी डोनर', 'पीकू'), अब्बास टायरवाला ('अशोका', 'डरना मना है', 'मकबूल', 'मैं हूँ ना', '2.0', 'वार' आदि) इत्यादि के नाम विशेष तौर पर लिए जाने चाहिए।

अभिनेता कादर खान चुटीले संवाद लेखन के लिए विख्यात रहे हैं, उन्होंने जिन फिल्मों में संवाद लिखकर अपनी लेखन प्रतिभा का परिचय दिया, उनमें 'रोटी', 'दिल दीवाना', 'रफू चक्कर', 'धरम वीर', 'खून पसीना', 'परवरिश', 'अमर अकबर अंथोनी', 'मुकद्दर का सिकंदर', 'सुहाग', 'मिस्टर नटवरलाल', 'कुर्बानी', 'अब्दुल्ला', 'याराना', 'लावारिस', 'नसीब', 'खुद्दार', 'नमक हलाल', 'विधाता', 'मवाली', 'जस्टिस चौधरी', 'कुली', 'हिम्मतवाला', 'शराबी', 'तोहफा', 'शिवा का इंसाफ', 'कर्मा', 'खून भरी मांग', 'गंगा जमना सरस्वती', 'अग्निपथ', 'हम', 'मैं खिलाड़ी तू अनाड़ी', 'साजन चले ससुराल' आदि शामिल हैं।

imdb ने हिन्दी के टॉप 10 पटकथा लेखकों में जिन्हें स्थान दिया है, उनमें राजकुमार हिरानी, जावेद अख्तर, सलीम खान, अभिजात जोशी, जयदीप साहनी, अनुराग कश्यप, बासु चटर्जी,आदित्य चोपड़ा, ख्वाजा अहमद अब्बास और जूही चतुर्वेदी को शामिल किया है ,लेकिन मुझे लगता है कि इस सूची को बनाते समय अनेक पुराने और महत्त्वपूर्ण फिल्म लेखकों की प्रायः अनदेखी की गयी है।

अल्फ्रेड हिचकॉक ने कहा था कि एक फिल्म बनाने के लिए केवल तीन चीजों को ज़रूरत होती है, स्क्रिप्ट, स्क्रिप्ट और केवल स्क्रिप्ट। इसी के अनुरूप अनेक महत्त्वपूर्ण लेखकों के उपन्यासों, कहानियों एवं नाटकों पर हिन्दी में फ़िल्में बनी हैं, जिनमें प्रेमचंद की चर्चा पहले की जा चुकी है। इनके अतिरिक्त शूद्रक (मृच्छकटिकम पर आधारित उत्सव), विलियम शेक्सपीयर ('मैकबेथ' पर आधारित 'मकबूल', 'ओथेलो' पर आधारित 'ओमकारा', 'हैमलेट' पर आधारित 'हैदर'), रबीन्द्रनाथ टैगोर की 'दोइ बीघा जोमीन' कविता एवं सलिल चौधरी की कहानी पर आधारित 'दो बीघा जमीन', रबीन्द्रनाथ टैगोर ('नौका डूबी' पर आधारित फिल्म 'मिलन'), शरत चन्द्र चटोपाध्याय ('देवदास', 'देव डी', 'परिणीता', 'मंझली दीदी'), बंकिम चन्द्र चटर्जी ('आनंदमठ', 'दुर्गेश नंदिनी'), चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' ('उसने कहा था'), मंटो ('टोबा टेक सिंह'), भगवतीचरण वर्मा ('चित्रलेखा'), फणीश्वरनाथ रेणु ('तीसरी कसम', 'पंचलाइट'), आर के नारायण ('गाइड'), मिर्जा हादी रुसवा ('उमराव जान'), भीष्म साहनी ('तमस'), मोहन राकेश ('आषाढ़ का एक दिन', 'उसकी रोटी', 'मलबे का मालिक'), निर्मल वर्मा ('माया दर्पण'), मुक्तिबोध ('सतह से उठता आदमी'), धर्मवीर भारती ('सूरज का सातवाँ घोड़ा', 'गुनाहों का देवता'), अमृता प्रीतम ('पिंजर'), मन्नू भंडारी ('यही सच है' पर आधारित 'रजनीगंधा'), यशपाल ('झूठा सच' पर आधारित फिल्म 'खामोश पानी'), अमृता प्रीतम ('पिंजर'), केशव प्रसाद मिश्र ('कोहबर की शर्त' पर आधारित 'नदिया के पार' और 'हम आपके हैं कौन'), बिमल मित्र ('साहब बीबी और गुलाम'), गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी ('सरस्वती चन्द्र'), रस्किन बांड ('अ फ्लाइट ऑफ़ पिजंस' पर आधारित 'जुनून', 'सुजैंस सेवेन हस्बैंड्स' पर आधारित 'सात खून माफ़'), महाश्वेता देवी ('संघर्ष', 'रुदाली', 'हजार चौरासी की माँ'), एरिक सेगल ('मैन वुमन एंड चाइल्ड' पर आधारित फिल्म 'मासूम'), बापसी सिधवा ('क्रेकिंग इंडिया' पर आधारित '1947 अर्थ'), चेतन भगत ('वन नाइट एट कॉल सेंटर' पर आधारित 'हेलो', 'फाइव पॉइंट सम वन' पर आधारित 'थ्री इडियट्स', 'थ्री मिस्टेक्स ऑफ़ माय लाइफ' पर आधारित 'काय पो छे', 'टू स्टेट्स'), ओ हेनरी ('द लास्ट लीफ' पर आधारित 'लुटेरा'), राजेंद्र यादव ('सारा आकाश'), कमलेश्वर ('एक सड़क सत्तावन गलियाँ' पर आधारित 'बदनाम बस्ती' और 'डाक बंगला'), आचार्य चतुरसेन ('धर्मपुत्र'), ज्ञान प्रकाश ('मुंबई फेबल्स' पर आधारित 'बॉम्बे वेलवेट'), चरण सिंह 'पथिक' ('दो बहनें' कहानी पर आधारित पटाखा, कसाई), विकास स्वरूप ('क्यू एंड ए' उपन्यास पर आधारित 'स्लम डॉग मिलिनेयर), खुशवंत सिंह ('ट्रेन टू पाकिस्तान'), काशीनाथ सिंह ('काशी का अस्सी' उपन्यास पर आधारित 'मोहल्ला अस्सी') इत्यादि शामिल हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से कुछ रोचक निष्कर्ष देखे जा सकते हैं। पहला यह कि सिनेमा और साहित्य के रिश्तों में प्रायः खटास ही देखने को मिलती है, जिसका नुकसान यह हुआ कि हिन्दी सिनेमा अपनी बहुलता में फार्मूलाबद्ध फ़िल्में बनाने के लिए अभिशप्त रहा और साहित्यकार भी

अपनी अमूल्य कृतियों को एक बड़े दर्शक वर्ग तक पहुँचा पाने में नाकाम रहे। दूसरी बात यह कि अनेक बड़े लेखक सिनेमा की ज़रूरतों को समझ पाने में असमर्थ रहे और कृति की 'आत्मा के साथ छेड़छाड़' से डरकर फिल्म जगत से दूर ही रहे। तीसरी बात सामाजिक मान्यता से जुड़ी है, जिसमें बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक सिनेमा को तथाकथित संभ्रांत जन में साहित्यिक मान्यता प्राप्त नहीं थी और इसे साहित्य से बेहद कमतर माना जाता था, यहाँ तक कि युवा पीढ़ी को बड़े बुजुर्गों से छिपकर फ़िल्में देखनी पड़ती थीं। इससे भी साहित्यकार सिनेमा से जुड़ने में हिचकते थे। चौथी बात यह कि हिन्दी साहित्य की कालजयी कृतियों पर बनी अधिकांश फ़िल्में प्रायः फ्लॉप हुईं, इससे भी साहित्यकार वर्ग में धीरे-धीरे यह धारणा बलवती होने लगी कि साहित्य का सिनेमाई रूपांतरण सफल नहीं हो सकता। पाँचवी बात फिल्मकारों द्वारा साहित्यकारों तथा फिल्म पटकथा लेखकों के साथ किये गए दोयम दर्जे के सुलूक से जुड़ी हुई है। फिल्मकारों ने अपनी फिल्मों में साहित्यकारों खासकर पटकथा और संवाद लेखकों को वह सम्मान नहीं दिया, जिसके वे हकदार थे। कई बार साहित्यिक दृष्टि से शून्यप्राय निर्माता-अभिनेता भी पटकथा लेखक के काम में अनावश्यक हस्तक्षेप करते रहे हैं। प्रेमचंद से लेकर डॉ. राही मासूम रज़ा तक अनेक लेखकों को फिल्म जगत से यह शिकायत रही है। सातवीं बात यह कि बहुत कम लेखकों को 'सिनेमा की आँख' की ज़रूरत की समझ रही है, शायद इसीलिए वे सिनेमाई रूपांतरण की दृष्टि से ज़रूरी परिवर्तनों को भी स्वीकार नहीं करते और साहित्य तथा सिनेमा का सफल हो सकने वाला गठजोड़ प्रायः इसी वजह से कई बार टूट जाता है। आठवीं बात यह कि आठवें दशक तक साहित्यिक कृतियों पर बनने वाला अधिकांश सिनेमा को या तो 'आर्ट फिल्म' या 'समांतर सिनेमा' के चौखटे में रखकर इसे तथाकथित प्रबुद्ध पाठक वर्ग तक सीमित रख दिया गया या फिर गलत पात्र चयन अथवा मुख्य धारा के पात्रों के स्थान पर कम लोकप्रिय पात्रों या अनाम पात्रों के चयन से इन फिल्मों को अकाल मृत्यु के लिए, डब्बा बंद होने के लिए या फिर औसत कमाई कर पाने के लिए विवश होना पड़ा, जिसके पीछे कई बार तथाकथित बड़े अभिनेता-अभिनेत्रियों द्वारा साहित्यिक कृतियों पर बनने वाली फिल्मों से दूरी बनाना भी एक कारण है। नवीं बात यह कि हिन्दी के फ़िल्मकार विलियम वायलर की यह महत्त्वपूर्ण बात भूल गए कि फिल्म बनाने के लिए 80 प्रतिशत स्क्रिप्ट और 20 प्रतिशत अच्छे अभिनेताओं की ज़रूरत है, इसके अलावा कुछ नहीं चाहिए। इसके स्थान पर उन्हें लगा कि अच्छे अभिनेता, कुछ फ़िल्मी मसाले और गीत-संगीत जोड़कर एक हिट फिल्म बनाई जा सकती है। इसलिए उन्होंने भी साहित्य के स्थान पर नाटकीय मसालों को तरजीह दी। यह क्रम हर दशक के हिसाब से अपने मसाले बदलता रहा या फिर पश्चिम अथवा किसी अन्य भारतीय भाषा की फिल्म की जूठन से हिन्दी फिल्म बनाकर परोसता रहा। अंतिम बात यह कि हिन्दी साहित्य ने बहुत कम ऐसे लेखक पैदा किये, जो सिनेमा की गहरी समझ रखते हों और उसकी ज़रूरत के मुताबिक लिखने को तैयार हों। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सिनेमा साहित्यिक विधा में नाटक के सबसे अधिक करीब है, लेकिन हिन्दी साहित्य जगत में सिनेमा को दृष्टिगत रखकर ऐसे नाटक प्रायः नहीं लिखे गए, जिन्हें पटकथा कहा जा सकता। अतः कहानियों और उपन्यासों से ही हिन्दी फ़िल्में बनाना साहित्यिक दृष्टि से परिष्कृत फिल्मकारों की विवशता रही।

ऊपर दिए गए निष्कर्षों से स्पष्ट है कि सिनेमा और साहित्य दोनों को एक दूसरे की ज़रूरत है, साहित्य और सिनेमा के मणिकांचन संयोग का फायदा लेखक, फिल्मकार और जनता एवं दर्शक, इन सभी को है। इसलिए ज़रूरत इस बात की है कि ये दोनों ही अपने-अपने कम्फर्ट ज़ोन से बाहर आकर जनहित में तथा अच्छा मनोरंजन देने के लिए एक साथ काम करें और एक दूसरे की विधा की भी जानकारी हासिल करें, क्योंकि जिस तरह साहित्यकार को फिल्म के तकनीकी पक्ष की सामान्य जानकारी ज़रूरी है, ठीक उसी तरह फ़िल्मकार को भी अच्छे साहित्य की समझ ज़रूरी है, तभी ये एक दूसरे को बेहतर समझ सकेंगे और दर्शकों को कुछ बेहतर दे सकेंगे, क्योंकि स्टीवन स्पीलबर्ग के शब्दों में कहें तो दर्शकों को खुश करना आसान नहीं होता, क्योंकि फिल्म से आप उन्हें प्रभाव देते हैं लेकिन अगर साथ में आपके पास अच्छी कहानी है तो यह काम आसान हो जाता है।

साहित्य संस्कृति, फ्लैट स॰ 505, पंचम तल, द कोर्ट यार्ड, माँ शेरावाली अस्पताल के निकट , शिवाजी नगर कानपुर रोड, झाँसी 284128
उत्तर प्रदेश मो 9450037871
अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

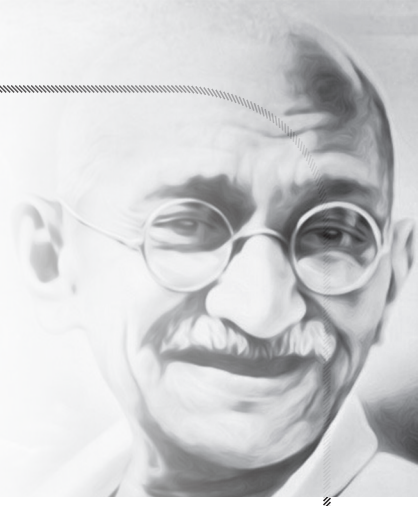

गाँधी संस्कृति, विश्वबंधुत्व एवं भारत का भविष्य

डॉ. कन्हैया त्रिपाठी

रुसी डी. समरीवाला ने अपने आलेख टूवर्ड्स अ प्लानेट-वाइड कल्चर ऑफ़ नॉन-वेवायलेंस में लिखा है-ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मानव प्रगति का मूल्यांकन करना चाहिए. यह सही है लेकिन मूल्यां_कन सबकुछ का करना चाहिए- व्यक्ति-समष्टि, राष्ट्र एवं प्रकृति का भी मूल्यांकन होना चाहिए। भारत ने आज अपने मूल्यांकन में क्या हासिल किया है, और गाँधी जी की वैश्विक स्तर पर मानवीय संदेश कितने ज़रूरी हैं, इस पर भी पड़ताल आज आवश्यक है। संयुक्त राष्ट्र में भारत की ओर से संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने कहा- एक ऐसा देश (भारत) जिसमें दर्जनों भाषाएँ हैं, सैकड़ों बोलियाँ हैं, अलग-अलग रहन-सहन, खानपान है। वाइब्रेंट डेमोक्रेसी का बे-हतरीन उदाहरण है। तो भला उसकी उपस्थिति और उसके गाँधीयन फिलॉसफी को क्यों नहीं आज के संदर्भ में देखा जाना चाहिए? नि:संदेह भारत ने उन्नति के कई कीर्तिमान बनाया है. सार्वभौम मूल्यों को सभी की स्वीकार्यता मिले, इस पर बल देने वाला भारत गाँधी के सर्वोदय, न्यासिता के सिद्धांत-ट्रष्टीशिप और करुणा की राह चलकर अपने नागरिकों की सुरक्षा और गरिमा के लिए सजग है।

महात्मा गाँधी भारतीय इतिहास में एक ऐसे श्रेष्ठ नक्षत्र का नाम है जिन्होंने दुनिया को अहिंसक सभ्यता और भारतीय संस्कृति को नए तरीके से दिशा दिया। यह एक ऐसी व्यवस्था का जन्म था जिससे मनुष्यता को बल प्राप्त हो, और जीवन जीने की सत्यान्वेषी पद्धति विकसित हो। उन्होंने प्रतिरोध की संस्कृति को भी सत्यानुगामी बनाया। गांधी जी की देन पुस्तक में राजेंद्र प्रसाद शुरुआत ही यहीं से करते हैं कि महात्मा गाँधी आज हिंदुस्तान के ही नहीं, बल्कि समूची दुनिया के एक विख्यात पुरुष हैं, किन्तु बचपन में वह भी उसी तरह के बच्चे होंगे, जिस तरह के बच्चे आज भी खेलते-कूदते देखते हैं।1 राजेंद्र जी ने आगे लिखा है कि वास्तव में महात्माजी ने जो कुछ हासिल किया है, जिस किसी के कारण महात्मा जी को हम इतना जानते और पूजते हैं, वह सबकुछ उन्होंने अपने प्रयत्न, साधना या तपस्या आदि जो कुछ कहें, के जरिये पाया है।2 यह तपस्या ही क्या गांधी को स्थापित करने की असल कारण है? गाँधी जी की आत्मकथा-सत्य के साथ मेरे प्रयोग और उनके द्वारा लिखी गई अनेक रचनाएँ- दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास, हिन्द स्वराज को पढ़ें, या साथ ही स्वास्थ्य की कुंजी, अनाशक्तियोग,नई बुनियादी तालीम, आश्रम की स्थापना,एकादश व्रत जैसी संकल्पना और उसके नियम, हरिजन और अछूतोद्धार के लिए यत्न, असहयोग की अहिंसक संवेदना, ग्रामीण जन-जीवन संबंधी विचार, न्यासिता के सवाल, सर्वोदय संबंधी विचार और अनेक ऐसी संकल्पनाएँ जो उन्होंने यंग इण्डिया, हरिजन, नवजीवन आदि में प्रकाशित की, उसका अवलोकन करें तो कोई भी अभीभूत होगा। गाँधी जी ने जीवन के प्रत्येक आयाम को छुआ, उन्होंने इतने सारे पत्राचार किए और सभी पत्रों को बहुत ही सामान्य बनाकर नहीं भेजा अपितु उसमें अपनी आत्मा को उतार दिया। यह श्रम गाँधी जी को बड़ा बनता है। यह सभी उपक्रम एक नई संस्कृति को गढ़ता है और इसे अगर गाँधी संस्कृति कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। डॉ। राधाकृष्णन ने लिखा है-अनेक तरीकों से उन्होंने इस देश की और दुनिया की सेवा की। वे महान राष्ट्रीय नेता थे। वे गुलामों के मुक्तिदाता थे। उन्होंने हमें प्यार की उस सक्रिय ताकत का रहस्य बतलाया, जो कभी विफल नहीं होती है। वे असाधारण नैतिक पुरुष थे जिसने दूसरों पर किसी प्रकार का प्रभाव डालने से पहले खुद को ही उस कसौटी पर चढ़ाया।3

आज हम २१वीं सदी के उस दौर में हैं जब सूचना और प्रौद्योगिकी एवं विकास के नए मॉडल नए भारत और नई दुनिया में कुछ नया गढ़ने की सोच रहे हैं,तब ऐसी बहुत सी मान्यताएं, स्थापनाएँ टूट रही हैं और नई स्थापनाएँ भी पुनर्स्थापित हो रही हैं। दुनिया के बीच संघर्ष और युद्ध के बीच लालच और वर्चस्व की होड़ अलग मची है। ऐसे में गाँधी जी एक स्तम्भ के रूप में हमें उपस्थित मिलते हैं, यह सामान्य बात नहीं है। गांधी प्रकृति, गाँधी आचरण और गांधी लिबास में अब केवल गाँधी जीवित नहीं हैं अपितु एक अहिंसक संस्कृति का वह वाहक बनकर उभरे हैं। लुई फ़िशर लिखते हैं अपनी पुस्तक गाँधी की कहानी में कि दूसरे देशों की अक्सर यात्रा करते हुए मैं जितना अधिक दुनिया को देखता हूँ, उतना ही मेरा विश्वास गहरा होता जाता है। अमेरिका, यूरोप,

एशिया (जिसमें भारत भी शामिल है) तथा अन्य देशों का मार्गदर्शन, अध्यात्मिक अवलम्बन तथा साहसपूर्ण कार्यों की मिसालों के लिए गांधी की ओर मुड़ने की आवश्यकता है। उनका जीवन मानवता की बहुत सी समस्याओं का हल उपस्थित करता है, बशर्ते कि हम केवल वही करें, जो उन्होंने किया था।4 बदलाव के दौर में भी वही लोग करें, यह लुई फ़िशर का वक्तव्य अतिरेक लग सकता है,लेकिन जो मानवता के लिए हितकारी है वह तो आत्मसात करके मानवता के पक्ष में करना अतिरेक नहीं है। जैसे उन्होंने अहिंसा की बात की,तो अहिंसा तो मानव मूल्य है। उसे आत्मसात करना तो किसी भी मनुष्य के लिए करुणा एवं प्रेम की स्वीकारोक्ति है। रविन्द्रनाथ ठाकुर ने बहुत बड़ी बात लिखी है गाँधी के संबंध में कि भक्ति तो हम कर सकते हैं महात्मा गाँधी की, जिनकी साधना सत्य की साधना है। मिथ्या के साथ समझौता करके उन्होंने सत्य की सार्वभौम धर्मनीति को अस्वीकार नहीं किया। भारत की युग साधना के लिए परम सौभाग्य का विषय है। महात्मा गाँधी ही एक ऐसे पुरुष हैं जिन्होंने प्रत्येक अवस्था में सत्य को माना है, चाहे वह सुविधाजनक हो या न हो।5 गाँधी ने सत्य और अहिंसा को एक ही सिक्के का दो पहलू बताया। उन्होंने साफ़-साफ यंग इण्डिया में लिखा कि हिंसा का मार्ग मेरी प्रकृति के विरुद्ध है।6 और कहा कि अहिंसा और सत्य का मार्ग तलवार की धार के सामान तीक्ष्ण है।7

गाँधी जी ने हरिजन के एक अंक जो 12 नवम्बर 1938 में प्रकाशित हुआ था, उसमें कहते हैं-अहिंसा उच्चतम कोटि का सक्रिय बल है। यह आत्मबल अर्थात अन्दर बैठे ईश्वरत्व की शक्ति है। अपूर्ण मनुष्य उस तत्व को पूरी तरह नहीं पकड़ सकता।-वह उसके सम्पूर्ण सत्य को सहन नहीं कर पाएगा, किन्तु अत्यल्प अंश भी हमारे अंदर सक्रिय हो जाए तो, उसके अद्भुत परिणाम निकल सकते हैं। सूर्य सारे विश्व को अपनी जीवनदायी ऊष्मा से भर देता है, पर अगर कोई उसके बहुत निकट जाएगा तो वह उसे जलाकर राख कर देगा। ईश्वरत्व के साथ भी यही बात है। हम अहिंसा की जितनी सिद्धि की बात करते जाते हैं, ईशतुली होते जाते हैं, पर हम कभी पूरी तरह ईश्वर नहीं बन सकते।8 किन्तु गाँधी जी के लिए सत्य अनुष्ठान के पीछे मान्यताएँ भी आकर्षित करने वाली हैं। उन्होंने माना मैं एक ही ईश्वर का दास हूँ और वह है सत्य।9 ईश्वर सत्य है, पर वह और भी बहुत कुछ है। इसलिए मैं कहता हूँ कि सत्य ही ईश्वर है।10 यह दुनिया जब हिंसा और अतिक्रमण की बनती जा रही है तब गाँधी जी की यह सत्य और अहिंसा की शिक्षा एक नई संस्कृति की वाहक है। उन्होंने एक नई सोच दी। नई विचार पद्धति विकसित करके दुनिया को सत्यानुरागी और अहिंसक पथ चुनने का आग्रह किया। इसे गांधीयन संस्कृति की आधारशिला माना जाए, तो शायद ही इस पर कोई आपत्ति जताए। गाँधी जी सत्य और अहिंसा को जीवन-सूत्र के रूप में इसलिए चाहते थे, क्योंकि वह यह जानते थे कि मनुष्य की तृष्णा और संग्रह की प्रवृत्ति उसे हिंसक बनती है। सोपान जोशी जी कहते हैं कि जैसे-जैसे धन-दौलत और शिक्षा का व्यापार बढ़ता है, सफल लोगों में करुणा और संवेदना कम हो जाती है।11 यह संवेदना हर समय-काल में ऊपर-नीचे होती रही है। गाँधी इस बात से भली तरह परिचित थे, कि हमारी दुनिया की आबादी क्या सोचती है और उसके भीतर क्या चल रहा है। बल्कि गांधीजी ने विश्व में अशांति और संघर्ष को भी अपने चिन्तन से अलग नहीं रखा। उन्होंने अपनी परख को प्रकट किया कुछ इस प्रकार-इतिहास एक के बाद एक लड़े गए युद्धों का अभिलेख है, किन्तु हम एक नए इतिहास के निर्माण का प्रयास कर रहे हैं-यह बात मैं, कम से कम जहाँ तक अहिंसा का संबंध है, राष्ट्रीय मानस के प्रतिनिधि के रूप में कह रहा हूँ। मैंने तलवार के सिद्धांत को तर्क की तुला पर तोलकर देख लिया है, मैंने संभावनाओं पर विचार कर लिया है, और मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मानव का भविष्य जंगल के नियम के स्थान पर प्रेम के नियम की प्रतिष्ठा करने में निहित हैं।12 दरअसल, गाँधीजी जिस प्रेम के नियम की बात कर रहे हैं, वही विश्वबंधुत्व की कुंजी है। दुनिया में सहिष्णुता, प्रेम, करुणा एवं दया विश्वबंधुत्व के लिए आवश्यक है। किन्तु प्रेम के नियम से ही यह संभव है। सभी समाज में, पारस्परिक सहिष्णुता ही व्यवहार का एकमात्र संभव नियम है।13 सहिष्णु कौन हो सकता है जो क्रोध को बस में करे, क्योंकि गाँधी जी यह भी कहते हैं कि-क्षमा आत्मा का गुण है, इसलिए यह एक सकारात्मक गुण है। यह नकारात्मक नहीं है। भगवान् बुद्ध ने कहा है-क्रोध को अ-क्रोध को जीतो। यह अ-क्रोध क्या है? यह एक सकारात्मक गुण है और इसका अर्थ है तुम्हें अपने अंदर इस गुण का विकास करना चाहिए जिससे कि तुम क्रोधी व्यक्ति के पास जाकर उसके क्रोध का कारण पूछ सको। यदि तुमने उसे किसी रूप में चोट पहुंचाई है, तो अपना सुधार कर सको, अन्यथा उसकी त्रुटि बता सको और यह प्रतीत करा सको कि क्रोधित होना गलत है।14 इस प्रकार गाँधी जी उन बुनियादी चीजों को रेखांकित करते हैं जिससे लोगों के भीतर बंधुत्व की भावना उद्भूत हो सकती है। वह चाहते थे कि यदि व्यक्ति आत्मिक शुद्धि कर लेगा तो उसे विश्वबंधुत्व में शामिल होने से कोई नहीं रोक सकता। राममनोहर लोहिया ने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि राष्ट्र को बौने से बौना बनाकर अपनी जेब में रखने का जो शर्मनाक चलन आज चला है उस चलन के बीच यह ज़रूरी हो चला है, कि हम अपने मानसिक क्षितिज पर नई खिड़कियाँ खोलें!15 विश्वबंधुत्व की भावना में तो राष्ट्रों के भीतर भी यही हो, यह संवेदना जागृत होनी चाहिए। दुनिया इतनी तेजी से अपनी नैतिक पृष्ठभूमि में बदलाव कभी न कर सकी किन्तु यदि अहिंसा, प्रेम और अ-क्रोध से दुनिया को जीतना चाहे, तो वह असंभव है क्या, यह सवाल हो सकता है।

गांधी जी ने तो हर असंभव को संभव कर दिखाया। बलराम नंदा ने अपनी पुस्तक गांधी सचित्र जीवन गाथा में लिखा है-गांधीजी ने मानव जाति का विभाजन 'अच्छे' और 'बुरे', इन दो सरल वर्गों में नहीं किया था। उनका

विश्वास था कि हर मानव में, भले ही वह 'शत्रु' हो, 'सद' का कोई न कोई अंश अवश्य होता है। 'बुरे' तो कार्य होते हैं, 'व्यक्ति' ऐसा कोई नहीं होता जिसमें बुराई ही बुराई हो। गाँधीजी की सत्याग्रह प्राविधि का उद्देश्य विरोधी पर दबाव डालना नहीं था, ऐसी शक्तियाँ सक्रिय करना था जिससे विरोधी का हृदय परिवर्तन हो जाय।16 यह हृदय परिवर्तन ही तो सबसे कठिन कार्य है। गांधीजी ने अपने दक्षिण अफ्रीका के प्रवास से लेकर भारत के स्वाधीनता संघर्ष तक जितने भी उपवास, व्रत या सक्रिय प्रतिरोध किए, उसके उद्देश्य तो हृदय परिवर्तन ही थे। कुछ घटनाओं को छोड़ दिया जाए, तो गाँधीजी सबमें सफल हुए। अछूतोद्धार की समस्या को निपटाने हेतु उन्होंने जो मानसिक परिवर्तन का मन में संकल्प लिया, वह भी सर्वविदित है। इस प्रकार वह अंग्रेजों और भारतीयों को एक सन्देश देना चाहते थे कि आत्मबल से सब कुछ जीता जा सकता है। शरीरबल और गोला-बारूद से काम लेना सत्याग्रह के सिद्धांत का विरोधी है।17गाँधी कहते हैं कि सत्याग्रह को हमने सत्य का बल बताया है।18अब ये सत्य तो जानते ही हैं कि गाँधी जी के लिए ईश्वर है, इसप्रकार गाँधी जी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से व्यक्ति-मनुष्य निर्माण करने के पक्षधर थे। उन्होंने इसी में सबकी भलाई और मनुष्यता के जीवित रहने की संकल्पना की। बलराम नंदा ने लिखा है कि गांधीजी ने अहिंसा में अपने विश्वास का समर्थन करते हुए उन छोटे राष्ट्रों को इसे अपनाने का सुझाव दिया था, जो भयंकर पाशविक शक्ति से विनष्ट हो जाने के भय से आतंकित थे। ....(उन्होंने लिखा है कि गाँधी जी कहते हैं कि)मैंने अपने से कहा कि अब भी संसार अहिंसा को नहीं अपनाता, तो मानवता का आत्मघात अवश्यम्भावी है।19दुनिया को सचेत करने वाले गाँधी, इस वैश्विक भाईचारगी और पृथ्वी पर मनुष्यता की सुरक्षा-संरक्षा वाली दृष्टि से सभी के हृदय में स्थान बनाते हैंवह परमाणविक और पाशविक शक्तियों के बरक्स मानवता और अहिंसा को खड़ा करते हैं। जब आप डोमिनिक लापियर और लैरी कॉलिन्स की पुस्तक बारह बजे रात के पढ़ेंगे और उसमें नोआखाली के प्रसंग का अवलोकन करेंगे, तो आज़ाद होते भारत देश की स्थिति से आपअवगत होते हैं। गांधीजी ने नोआखाली में हिन्दू और मुसलमान के बीच खूनी-जंग को खत्म करने के जो अद्भुत प्रयास किये उसकी सिलसिलेवार कथा है इस पुस्तक में। भारत में सांप्रदायिक हिंसा और सांप्रदायिक सौहार्द को बहाल करने के लिए महात्मा गाँधी के प्रयास, उनकी निर्भयता और हिम्मत को दर्शाते हैं। इसके पीछे भी गांधी की एक अच्छी मनसा थी। वह चाहते थे कि मैं भारत को स्वतंत्र और शक्तिशाली देखना चाहता हूँ ताकि वह सारी दुनिया की भलाई के लिए शुद्ध मन से और अपनी इच्छा से त्याग कर सकें। जब व्यक्ति का मन शुद्ध होता है तो वह परिवार के लिए त्याग करेगा, परिवार गाँव के लिए, गाँव जिले के लिए, जिला प्रान्त के लिए, प्रान्त राष्ट्र के लिए और राष्ट्र सबके लिए। मैं खुदाई राज चाहता हूँ, इस धरती पर ईश्वर का राजा।20इसमें गाँधी की मूल संवेदना स्पष्ट हुई है कि गाँधी आखिर कैसे एक छोटी सी ईकाई को महत्व देकर लक्ष्य को देखते थे। अकेले व्यक्ति से दुनिया की भलाई हेतु 'मन की शुद्धता' और 'त्याग की कसौटी' पर उनकी परख, केवल उस व्यक्ति की नहीं थी अपितु वह तो एक उनके मापने का और दर्शाने का तरीका ही था जिससे वे समस्त मनुष्यता के कल्याण को स्थापित करना चाहते थे। 'न्याय के राज' की वह मांग करते हैं। ईश्वर या न्यायके राज्य में विश्व शांति की कल्पना गाँधी जी करते थे। इसलिए वह सम्पूर्ण धरती पर ईश्वर का राज्य चाहते थे। संयुक्त राष्ट्र के महासचिव अंतोनियो गुटेरेस ने सितम्बर 2019 में कहा-गांधी ने अहिंसा को न केवल एक दर्शन और एक राजनीतिक रणनीति के रूप में, बल्कि न्याय और परिवर्तन को प्राप्त करने के साधन के रूप में बढ़ावा दिया। गुतेरेस आगे कहते हैं कि...उनके मूल्य वास्तव में सीमाओं से परे हैं। शायद गांधी की सबसे महत्वपूर्ण विरासत शांति की संस्कृति का निर्माण करना, अहिंसक असहयोग की प्रभावशीलता को साबित करना और दुनिया का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करना था कि हम क्या करते हैं और हम क्या करने में सक्षम हैं।21 गाँधीके बारे में गुटेरेस के ये शब्द उनकी वैश्विक छवि का बोध कराती हैं और उनकी दुनिया को मानवता के शांति हेतु दी गई शिक्षा को अभिव्यक्त करती है।

रुसी डी। समरीवाला ने अपने आलेख टूवर्ड्स प्लानेट-वाइड कल्चर ऑफ़ नॉन-वेवायलेंस में लिखा है-ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मानव प्रगति का मूल्यांकन करना चाहिए। यह सही है लेकिन मूल्यांकन सबकुछ का करना चाहिए- व्यक्ति-समष्टि, राष्ट्र एवं प्रकृति का भी मूल्यांकन होना चाहिए। भारत ने आज अपने मूल्यांकन में क्या हासिल किया है, और गाँधी जी की वैश्विक स्तर पर मानवीय संदेश कितने ज़रूरी हैं, इस पर भी पड़ताल आज आवश्यक है। संयुक्त राष्ट्र में भारत की ओर से संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने कहा- एक ऐसा देश (भारत) जिसमें दर्जनों भाषाएँ हैं, सैकड़ों बोलियाँ हैं, अलग-अलग रहन-सहन, खानपान है। वाइब्रेंट डेमोक्रेसी का बेहतरीन उदाहरण है।22 तो भला उसकी उपस्थिति और उसके गाँधीयन फिलॉसफी को क्यों नहीं आज के संदर्भ में देखा जाना चाहिए? निःसंदेह भारत ने उन्नति के कई कीर्तिमान बनाया है। सार्वभौम मूल्यों को सभी की स्वीकार्यता मिले, इस पर बल देने वाला भारत गाँधी के सर्वोदय, न्यासिता के सिद्धांत-ट्रष्टीशिप और करुणा की राह चलकर अपने नागरिकों की सुरक्षा और गरिमा के लिए सजग है,तब भी भारत के समक्ष अनेक चुनौतियाँ हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर भारत की उत्कृष्ट उपस्थिति है, किन्तु पूरी वैश्विक सभ्यता के समक्ष भारत जलवायु-परिवर्तन, सातत्य-सभ्यता को नए तरीके से दुरुस्त करने की कोशिश कर रहा है। जबकि दुनिया के अनेक देशों में शरणार्थियों और भूख से मरने वालों की बाढ़ आई है। गाँधी के सामाजिक समरसता के संदेश,उनकी अहिंसक सत्याग्रह की आवश्यकता वाले संदेश, पुनः विमर्श में आ रहे हैं। तो ऐसे में गांधी संस्कृति-'अहिंसक समाज की संस्कृति'के स्थापना की नई आवश्यकता समझी जा रही है। लोगों ने गाँधी जी के स्वच्छता संबंधी विचार को आत्मसात किया है। पर्यावरणीय समस्या से भारत कैसे निपटेगा, यह बड़ा सवाल है? गाँधी की राह चलकर चिपको

आन्दोलन, याद आता है। गाँधी-मूल्यों और संस्कृतियों को आत्मसात करने वाले चिपको के आन्दोलन से जुड़े लोग क्या दुनिया को प्रकृति की सुरक्षा का नया सन्देश दे सकेंगे? इसी प्रकार उनके अहिंसा और प्रेम के नियम से क्या दुनिया में स्थायी शांति के मार्ग खुलेंगे?इस पर से यह कहा जा सकता है कि इसके लिए गांधीजी सक्षम थे और सक्षम हैं। गाँधीजी का विश्व-बंधुत्व तो आज के भारत के लिए और दुनिया की सभ्यता के लिए, आज सबके उत्थान के लिए अमूल्य अवदान है, क्योंकि ग्लोबल होती और कनेक्ट होती दुनिया बिना सहयोग के एक कदम चल ही नहीं सकती। हिंसा से तो कदापि नहीं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है कि हमारे अंतःकरण और आचरण में रिपु (काम, क्रोध-लोभादिक छः विकार, जो मनुष्य के शत्रु कहलाते हैं) और पाप का संग्राम चल रहा है, फिर भी हमें सत्यव्रत महात्मा से पुण्य-तपस्या की दीक्षा लेनी चाहिए।23

आज़ आवश्यकता इस बात की है कि गाँधी को सही अर्थों में हम समझें, नहीं तो सभ्यता के संकट को समझना और मानवीय गरिमा के साथ प्रकृति की सुरक्षा करना कठिन हो जाएगा। विश्वबंधुत्व में गाँधी-संस्कृति यदि सहज स्वीकार्य न होती तो मार्टिन लूथर किंग'द्वीतीय', नेल्शन मंडेला से लेकर एंतोनियो गुतेरेस तक गांधी को आत्मसात करने की बात न करते और संयुक्त राष्ट्र महात्मा गाँधी के जन्मोत्सव को अहिंसा दिवस मनाने के लिए प्रस्ताव न पारित करता। कुमारी इथेल मैनिन ने गाँधी की सहादत पर लिखा-जिस मनुष्य का अपनी आत्मा पर अधिकार है, उसे गुलाम नहीं बनाया जा सकता। उसका शरीर नष्ट हो जाने से तो उसकी आत्मा अधिकाधिक शक्तिशाली होती जाती है।24 गाँधी जी अपनी अंतिम सांस तक अपनी आत्मा की सुने, और उन्होंने जो कुछ किया वह आत्मा की आवाज़ पर।वैष्णव-जन तो तेने रे कहिए...ईश्वर अल्ला तेरे नाम...आदि को स्वीकारने वाले गाँधी, सभी धर्मों और मतावलंबियों को आदर देने वाले गाँधी, सांप्रदायिक सौहार्द और देश के लिए आत्मोत्सर्ग तक जाने वाले गाँधी ने भारत को इतना सम्मान दिलाया है, जिसको मापना सदियों तक आसान नहीं है। उनके जीवन के अनेक प्रयोग, उठाए गए कदम और पूरी सभ्यता के लिए दिए गए अनूठे और विशिष्ट विचार निःसंदेह आने वाली पीढ़ियों को सदैव सदमार्ग पर चलने की प्रेरणा देंगे। दुनिया में बढ़ी भारत की लोकप्रियता में गाँधी की यह प्रतिष्ठा निःसंदेह भारत के भविष्य को भी प्रभावित करेगी।

(लेखक भारत गणराज्य के महामहिम राष्ट्रपति जी के विशेष कार्य अधिकारी रह चुके हैं और अहिंसक सभ्यता के पैरोकार हैं।)

सन्दर्भ:

1. राजेंद्र प्रसाद, गाँधी जी की देन, सस्ता साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 1956, पृष्ठ 9
2. वही
3. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, हम इंसान बनेंगे तो गाँधीजी करीब मिलेंगे, गाँधी-मार्ग, अहिंसा एवं संस्कृति का द्वैमासिक, संपादक:कुमार प्रशांत, वर्ष60, अंक 5, 2018, सितम्बर-अक्तूबर, गाँधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, पृष्ठ 17
4. लुई फ़िशर, दो शब्द,गांधी की कहानी, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली-1, 2008 (यह लुई फ़िशर ने 15 अगस्त, 1947 को लिखा है।)
5. रवीन्द्र रचना संचयन, संकलन: असित कुमार बंदोपाध्याय, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली-1,1987, पृष्ठ:702
6. आर के प्रभु एवं यू.आर. राव (संकलन एवं संपादन), महात्मा गाँधी के विचार, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, 1994, (यंग इण्डिया, 11 अक्टूबर, 1928, पृष्ठ:342 पर उद्धृत)
7. आर के प्रभु एवं यू.आर. राव (संकलन एवं संपादन), महात्मा गाँधी के विचार, नवजीवन पब्लिशिंग हॉउस, 1994, पृष्ठ: 119
8. वही, द्रष्टव्य: हरिजन, 12नवंबर, 1938, पृष्ठ: 326
9. वही,पृष्ठ58, द्रष्टव्य: हरिजन, 15अप्रैल, 1939, पृष्ठ: 87
10. वही, पृष्ठ63, द्रष्टव्य: हरिजन, 25मई, 1935, पृष्ठ: 115
11. सोपान जोशी, अमीरी: पीर पराई न जाने रे, गांधी मार्ग, संपादक: अनुपम मिश्र, वर्ष 58, अंक: 1, जनवरी-फरवरी, 2016, पृष्ठ 31
12. आर. के. प्रभु एवं यू.आर. राव (संकलन एवं संपादन), महात्मा गाँधी के विचार, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, 1994, पृष्ठ: 415 (द्रष्टव्य: हरिजन, 03जुलाई, 1937, पृष्ठ: 165)
13. वही, पृष्ठ417, द्रष्टव्य: यंग इण्डिया, २३ सितम्बर, 1926, पृष्ठ 334
14. वही, द्रष्टव्य: यंग इण्डिया, 12जनवरी, 1928, पृष्ठ11
15. राममनोहर लोहिया, मनुष्य को बचाना बहुत जरूरी हो गया है!, गाँधी मार्ग, संपादक: कुमार प्रशांत, अंक 61, अंक 6, नवंबर-दिसंबर 2019, पृष्ठ: 15
16. बलराम नंदा, गाँधी सचित्र जीवनगाथा, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली। द्वितीय संस्करण-1989, पृष्ठ 90
17. महात्मा गाँधी, हिन्द स्वराज, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली-1, पृष्ठ 73
18. वही, पृष्ठ-76
19. बलराम नंदा, गाँधी सचित्र जीवनगाथा, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली। द्वितीय संस्करण-1989, पृष्ठ 93
20. कॉलिन्स और लापियर, रात के बारह बजे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, आवृत्ति 2014, पृष्ठ- 399
21. https://www.un.org/press/en/2019/sgsm19765.doc.htm
22. संयुक्त राष्ट्र में प्रधानमंत्री के अभिभाषण से (25 सितम्बर, 2021)
23. रवीन्द्र रचना संचयन, संकलन: असित कुमार बंदोपाध्याय, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली-1,1987, पृष्ठ:706
24. कुमारी ईथेल मनिन, अहिंसा की शक्ति, गाँधी अभिनंदन ग्रंथ, संपादक: सर्वपल्ली राधाकृष्णन, सस्ता सहित्य मण्डल प्रकाशन, 2019, पृष्ठ: 187

यूजीसी-एचआरडीसी, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर-470003 मध्य प्रदेश मो. 9818759757
Email: hindswaraj2009@gmail.com

'गोदान' में परंपरा और आधुनिकता

डॉ. सुनीता रानी घोष

'गोदान' में किसानों की पुरानी पीढ़ी (होरी) यह मानती है कि भले ही उनके किसी स्वार्थ की पूर्ति न होती हो, कोई अतिरिक्त लाभ न मिले, किंतु हाकिम-हुक्काम से बीच-बीच में मिलते रहने और दुआ-सलाम करते रहने से कम से कम वह नुकसान तो न पहुँचाएगा। लेकिन आधुनिक चेतना से युक्त युवा पीढ़ी को यह पसंद नहीं कि जमींदार की बेगार भी करो और भरे समाज के सामने उसके कारिंदों की गालियाँ भी सुनो, पूरा लगान देकर भी बेइज्जती सहो, ऐसी दुआ-सलाम का क्या फायदा- "कुछ देर अपने विद्रोह को दबाए रखने के बाद गोबर बोला- यह तुम रोज-रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियाँ सुनाता है, बेगार देनी ही पड़ती है, नजर-नजराना सब तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी की क्यों सलामी करो।" प्रेमचंद 'गोदान' में गोबर के रूप में किसान एवं मजदूर युवा वर्ग के अधिकारों एवं परिवेश के प्रति सजगता का चित्रण करते हैं- "यह पाप का धन पचे कैसे? इसीलिए दान-धर्म करना पड़ता है।

वर्तमान में जिन कार्यों एवं तत्वों को समाज के बहुलांश की स्वीकृति प्राप्त होती है, वे ही कुछ समय पश्चात मान्यताओं एवं विश्वासों का रूप ग्रहण कर समाज के लिए महत्वपूर्ण एवं आवश्यक बन जाते हैं और भविष्य में समाज, साहित्य, संस्कृति या धर्म के क्षेत्र में परंपरा का स्थान ग्रहण कर लेते हैं। परंपरा मानव समाज की एक गतिशील प्रक्रिया है, जिसका संबंध मात्र अतीत से नहीं, बल्कि वह अतीत की पुनर्रचना में योगदान देती हुई वर्तमान से लेकर भविष्य तक की यात्रा करती हुई निरंतर विकासशील रहती है। सही अर्थ में परंपरा में केवल वे प्रथाएँ , रीतियाँ, मान्यताएँ या विश्वास ही समाविष्ट होते हैं जो समकालीन परिवेश के अनुकूल हों। परंपरा में मात्र वही प्रथाएँ एवं मान्यताएँ समाविष्ट होती हैं जो समाज के लिए बंधन नहीं, वरन मार्ग-निर्देशन का कार्य करती हैं। परंपरा मात्र घिसी-पिटी मान्यता, धारणा या रूढ़ि नहीं, वह मनुष्य की सजगता, उसकी चिंतन शक्ति, उसकी कर्मशीलता एवं विवेक का परिणाम होती है- "रूढ़ियों एवं परंपरा का संभवतः यही मौलिक प्रभेद है। रूढ़ियाँ आप से आप बन जाया करती हैं, जैसे हाथ में घट्टे पड़ जाया करते हैं। परंपरा का निर्माण मनुष्य के गतिशील, आत्मसजग, मनन-चिंतन, उद्भावना एवं कर्म से होता है।"[1]

आधुनिकता वर्तमान या समकालीन परिवेश से जुड़ी वह जीवनदृष्टि है जो वैज्ञानिकता के आधार पर अतीत से चली आ रही परंपरा और समकालीन संदर्भों के विवेकशील अनुशीलन एवं परिशीलन का परिणाम होती है। आधुनिकता का संबंध केवल समसामयिकता से नहीं होता। वह काल के अस्तित्व की अवहेलना करती हुई अतीत के अनेक प्रसंगों को प्रासंगिक तथा वर्तमान के अनेक प्रसंगों एवं तत्वों को अप्रासंगिक बनाती है। आधुनिकता नवीनता को बिना किसी आधार के स्वीकृति प्रदान नहीं करती और न ही परंपरा का एकाएक विरोध करती है, वरन वह सजगता के साथ परंपरा का मूल्यांकन करते हुए उसे समकालीन परिवेश से संबद्ध करके समाजोपयोगी बनाती है। आधुनिकता का परंपरा से कोई विरोध नहीं है। आधुनिकता अपनी रचनात्मकता के लिए परंपरा का विश्लेषण कर उसमें से उपयोगी अंशों को छाँटती है और ये उपयोगी अंश आधुनिकता के आधार होते हैं। वस्तुतः आधुनिकता में समय महत्वपूर्ण नहीं है वरन गतिशीलता महत्वपूर्ण है। आधुनिकता का कोई भी रूप स्थिर नहीं है। एक ही समय में आधुनिक तथा अ-आधुनिक दोनों ही प्रकार के व्यक्ति मिल सकते हैं- "आधुनिकता गति की द्योतक है, काल की नहीं। एक काल में नितांत आधुनिक भी रह सकते हैं और नितांत अ-आधुनिक भी। जिनमें मूल्यों की गतिशीलता के प्रति जागरूकता नहीं है, जो विकल्प करने में सक्षम नहीं हैं वरन मान्यताओं में विश्वास लेकर चलते हैं, जिज्ञासाहीन हैं और सत्य के नए आयामों के समक्ष आँखें बंद कर लेते हैं- वे आधुनिक नहीं हैं। इस बात से दो बातें सिद्ध होती हैं। पहली यह कि आधुनिकता

कोई आरोपित कर्मकांड अथवा कल्ट नहीं है। उसका कोई रूप स्थिर नहीं है।"[2] अतः आधुनिकता एक चिंतन है जिसमें नैरंतरता का गुण है। यह चिंतन किसी काल विशेष से संबद्ध नहीं होता, वरन काल की सीमा लाँघकर निरंतर गतिशील रहता है, मध्ययुग के संत कबीरदास का दृष्टिकोण भी आधुनिकता से युक्त है। आधुनिकता को समसामयिकता या समकालीनता समझ लिया जाता है, जबकि आधुनिकता इनसे पृथक जीवनदृष्टि है - "समकालीनता और आधुनिकता में कोई एकरूपता नहीं है। मैथ्यू आर्नल्ड और रविशंकर दो भिन्न शास्त्रानुशासन के लोग हैं- वे आधुनिक हैं, किंतु वे समकालीन नहीं हैं। स्पष्ट है आधुनिकता, समकालीनता, समसामयिकता और तात्कालिकता भिन्न- भिन्न चीजें हैं।"[3]आधुनिकता आधुनिकीकरण भी नहीं है, इसका संबंध विवकेसम्मत दृष्टि, बौद्धिक जागरूकता और प्रगतिशीलता से है।

इसलिए जिस रचनाकार को अपनी परंपरा का जितना गहरा और समृद्ध बोध होगा, वह आधुनिकता की सर्जना में उतना ही कुशल होगा। प्रेमचंद ने अपने समस्त साहित्य के माध्यम से यही सिद्ध करने का प्रयास किया है। प्रेमचंद अपने युग के महान विचारक थे। प्रेमचंद ने अपनी साहित्य-सर्जना का आरम्भ जनता एवं समाज की सेवा के संकल्प के साथ किया था और उस संकल्प को आजीवन सफल रूप में निभाया भी। प्रेमचंद शोषित एवं दलित मानवों के जीवन में परिवर्तन लाकर समाज को परिवर्तित करना चाहते थे और इस परिष्कार की प्रक्रिया में उन्होंने रूढ़ियों को तोड़ा, संकीर्णता का विरोध किया और नवीन मूल्यों की सर्जना करते हुए अपनी आधुनिकतावादी दृष्टि का परिचय दिया।

'गोदान' प्रेमचंद की अंतिम पूर्ण एवं अन्यतम कृति है। परंपरा एवं आधुनिकता के बीच सामंजस्य एवं विरोध दोनों ही स्थितियों का चित्रण इसे अद्भुत बनाने में सक्षम हुआ है। प्रेमचंद सफल उपन्यास की परिभाषा देते हुए लिखते हैं-" जिस उपन्यास को समाप्त करने के बाद पाठक अपने अंदर उत्कर्ष अनुभव करे, उसके सद्भाव जाग उठें, वही सफल उपन्यास है।" [4] इस परिभाषा पर 'गोदान' खरा उतरता है। 'गोदान' में परंपरा और आधुनिकता के बीच संगत तालमेल भी पाठक की सदवृत्तियों को उभार सकने में समर्थ हुआ है।

अपने परिवार एवं परिवारीजनों की सहायता एवं रक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देना हमारे भारतीय समाज की विशेषता है। ऊपरी तौर पर हम चाहे अपने परिवारीजनों से कटे-कटे दिखें पर हमारी परंपरा हमारे हृदय के स्नेह-स्रोत को पूर्णतया शुष्क नहीं होने देती। संयुक्त परिवार में साथ-साथ पले-बढ़े भाई चाहे विपरीत परिस्थितियों के कारण अलग- अलग छत के नीचे जीवन बिताने पर मजबूर हो जाएँ, परंतु भाई-भाई का आपसी स्नेह एवं लगाव समाप्त नहीं होता - "होरी के मुख का रंग ऐसे उड़ गया था, जैसे देह का सारा रक्त सूख गया हो। तलाशी उसके घर हुई तो, उसके भाई के घर हुई तो, एक ही बात है। हीरा अलग सही; पर दुनिया तो जानती है कि वह उसका भाई है; मगर इस वक्त उसका कुछ वश नहीं। उसके पास रुपए होते तो इसी वक्त पचास रुपए लाकर दरोगा जी के चरणों में रख देता और कहता- सरकार, मेरी इज्जत अब आपके हाथ है।"[5] बेटी के विवाह में स्वेच्छा से दान देने की परंपरा वर पक्ष की माँग के अनुसार दहेज की रूढ़ि के रूप में परिवर्तित हो चुकी है। प्रेमचंद इसकी भयावहता को 'गोदान' में बेमेल विवाह, यहाँ तक कि कभी-कभी गरीब माता-पिता द्वारा लड़की बेच देने की मजबूरी के रूप में चित्रित करते हैं। प्रेमचंद ने 'गोदान' में बेटी के पिता के रूप में होरी की विवशता एवं असहायता का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है- "रामसेवक होरी से दो- ही चार साल छोटा था। ऐसे आदमी से रूपा का ब्याह करने का प्रस्ताव ही अपमानजनक था। कहाँ फूल सी रूपा और कहाँ वह बूढ़ा ठूँठ। जीवन में होरी ने बड़ी-बड़ी चोट सही थी, मगर यह चोट सबसे गहरी थी। आज उसके ऐसे दिन आ गए हैं कि उससे लड़की बेचने की बात कही जाती है और उसमें इंकार करने का साहस नहीं है। ग्लानि से उसका सिर झुक गया।"[6] इस उपन्यास का शीर्षक ''गोदान'' भी भारतीय हिंदू समाज की उस मान्यता पर आधारित है जिसमें मृत्यु के अवसर पर गो-दान की परंपरा है- "हीरा ने रोते हुए कहा- भाभी, दिल बड़ा करो गो-दान करा दो, दादा चले।.. और कई आवाजें आईं – हाँ गो-दान करा दो, अब यही समय है।"[7]

'गोदान' में किसानों की पुरानी पीढ़ी (होरी) यह मानती है कि भले ही उनके किसी स्वार्थ की पूर्ति न होती हो, कोई अतिरिक्त लाभ न मिले, किंतु हाकिम-हुक्काम से बीच-बीच में मिलते रहने और दुआ-सलाम करते रहने से कम से कम वह नुकसान तो न पहुँचाएगा। लेकिन आधुनिक चेतना से युक्त युवा पीढ़ी को यह पसंद नहीं कि जमींदार की बेगार भी करो और भरे समाज के सामने उसके कारिंदों की गालियाँ भी सुनो, पूरा लगान देकर भी बेइज्जती सहो, ऐसी दुआ-सलाम का क्या फायदा- "कुछ देर अपने विद्रोह को दबाए रखने के बाद गोबर बोला- यह तुम रोज-रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियाँ सुनाता है, बेगार देनी ही पड़ती है, नजर-नजराना सब तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी की क्यों सलामी करो।" [8] प्रेमचंद 'गोदान' में गोबर के रूप में किसान एवं मजदूर युवा वर्ग की अधिकारों एवं परिवेश के प्रति सजगता का चित्रण करते हैं- "यह पाप का धन पचे कैसे? इसीलिए दान-धर्म करना पड़ता है, भगवान का भजन भी इसीलिए होता है। भूखे-नंगे रहकर भगवान का भजन करें, तो हम भी देखें। हमें कोई दोनों जून खाने को दे, तो हम आठों पहर भगवान का जाप ही करते रहें। एक दिन खेत में ऊख गोड़ना पड़े तो सारी भक्ति भूल जाय।"[9] मनुष्य की जो शक्ति राष्ट्र के विकास एवं उन्नति में लगनी

चाहिए, उसे वह परस्पर के लड़ाई-झगड़ों, छल-फरेब, बेईमानी, षड्यंत्र, अंधविश्वास एवं रूढ़ियों में नष्ट कर देता है। धर्म और मोक्ष का मिथ्या अहंकार पाले हुए मनुष्य रूढ़ियाँ छोड़ना नहीं चाहता, मृत बच्चे के समान सीने से चिपकाए रखने में ही सुख का अनुभव करता है। प्रेमचंद शिक्षा के प्रचार-प्रसार के पश्चात भी स्थिति के ज्यों के त्यों बने रहने पर अफसोस जाहिर करते हैं - "हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर रूढ़ियों और विश्वासों और इतिहासों के मलवे के नीचे दबे पड़े हैं, उठने का नाम नहीं लेते, वह सामर्थ्य ही नहीं रही। जो शक्ति, जो स्फूर्ति मानव-धर्म को पूरा करने में लगनी चाहिए थी, सहयोग में, भाईचारे में, वह पुरानी अदावतों का बदला लेने और बाप-दादों का ऋण चुकाने की भेंट हो जाती है।"[10] प्रेमचंद ने 'गोदान' के माध्यम से समाज के स्वस्थ नवनिर्माण के लिए दिग्भ्रमित भारतीय जनता को एक नई एवं सीधी राह दिखाने का प्रयास किया। भारत की जनता सांप्रदायिक सद्भाव में विश्वास रखती है। यदि राजनेता अपने स्वार्थ की खातिर विभिन्न समुदायों को न लड़वाएँ तो जीवन कितना आनंदमय हो जाए। प्रेमचंद 'गोदान' में सामुदायिक समन्वय का उदाहरण प्रस्तुत करके वैचारिक परिपक्वता की मिसाल कायम करते हैं- "गोबर ने सबको राम-राम किया। हिंदू भी थे, मुसलमान भी थे; सभी में मित्रभाव था, सब एक-दूसरे के दुख-दर्द के साथी। रोजा रखने वाले रोजा रखते थे, एकादशी रखने वाले एकादशी। कभी-कभी विनोद भाव में एक दूसरे पर छींटे भी उड़ा लेते थे। गोबर अलादीन की नमाज को उठाबैठी कहता, अलादीन पीपल के पेड़ के नीचे स्थापित सैकड़ों छोटे-बड़े शिवलिंग को बटखरे बताता, लेकिन सांप्रदायिक द्वेष का नाम भी न था। गोबर घर जा रहा था सब उसे हँसी-खुशी विदा करना चाहते हैं।"[11]

भारतीय परंपरा में स्त्री को देवी, शक्ति न जाने क्या-क्या कहा गया है। प्रेमचंद भी 'गोदान' में मेहता के द्वारा वीमेंस लीग में दिए गए भाषण के माध्यम से नारी का कुछ इसी तरह से यशोगान करते हैं- "मैं प्राणियों के विकास में स्त्री के पद को पुरुष के पद से श्रेष्ठ समझता हूँ, उसी तरह जैसे प्रेम और त्याग और श्रद्धा को हिंसा और संग्राम और कलह से श्रेष्ठ समझता हूँ। अगर हमारी देवियाँ सृष्टि और पालन के देवमंदिर से हिंसा और कलह के दानव-क्षेत्र में जाना चाहती हैं, तो उससे समाज का कल्याण न होगा।"[12] इसी परंपरागत भारतीय पातिव्रत्य धर्म के एकांगी आदर्श की आड़ में नारी शोषित एवं प्रताड़ित होती रही है। लेकिन प्रेमचंद नारी की ही भाँति पुरुष से भी मर्यादित आचरण की अपेक्षा रखते हैं। 'गोदान' में स्त्री पात्र सोना और गोविंदी अपने पति के दुराचरण का विरोध करती हैं। सोना का विरोध तो बहुत मुखर है। प्रेमचंद मानते हैं- "प्रेम सीधी-सादी गऊ नहीं, खूँखार शेर है, जो अपने शिकार पर किसी की भी आँख नहीं पड़ने देता।"[13] प्रेम के क्षेत्र में निष्ठा अनिवार्य है। यहाँ प्रेमचंद नारी व पुरुष दोनों को ही समान अधिकार देते हुए अपनी आधुनिक दृष्टि का परिचय देते हैं- "अगर कोई पुरुष मेरे और मेरी स्त्री के बीच में आने का साहस करे, तो मैं उसे गोली मार दूँगा, और उसे न मार सकूँगा, तो अपनी छाती में मार लूँगा। इसी तरह अगर मैं किसी स्त्री को अपने और अपनी स्त्री के बीच लाना चाहूँ तो मेरी पत्नी को भी अधिकार है कि वह जो चाहे, करे।"[14] परंपरागत भारतीय समाज तलाक का विरोधी है। 'गोदान' में प्रेमचंद भी तलाक अथवा विवाह-विच्छेद के विरोधी हैं- "विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूँ और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुष को है न स्त्री को। समझौता करने से पहले आप स्वाधीन हैं, समझौता हो जाने के बाद आप के हाथ कट जाते हैं।"[15]

'गोदान' में प्रेमचंद नारी शिक्षा का जोरदार समर्थन करते हैं किंतु वह नारी के कार्यक्षेत्र को पुरुषों के कार्यक्षेत्र से पृथक मानते हैं- "मैं नहीं कहता, देवियों को विद्या की जरूरत नहीं है। है और पुरुषों से अधिक। लेकिन वह विद्या और शक्ति नहीं, जिससे पुरुष ने संसार को हिंसाक्षेत्र बना डाला है। अगर वही विद्या और वही शक्ति आप भी ले लेंगी तो संसार मरुस्थल हो जाएगा। आपकी विद्या और आपका अधिकार हिंसा और विध्वंस में नहीं, सृष्टि और पालन में है।"[16] नारी का प्रमुख कर्मक्षेत्र वे घर ही मानते हैं और घर के बाहर भी नारी का कार्य सेवा, परोपकार और त्याग के आदर्शों से युक्त होना चाहिए। उपन्यास के अंत में प्रेमचंद मालती जैसी आधुनिक नारी का भी इसी रूप में कायाकल्प करते हैं। प्रेमचंद जैसे महान विचारक एवं गतिशील चिंतक के उपर्युक्त विचारों में अवश्य परिवर्तन अन्य स्थल पर दिखाई देता है, जब एक दुखी पिता अपने पत्र में विवाह से संबंधित नारी की दुर्दशा का जिक्र प्रेमचंद से करते हैं तो यही प्रेमचंद इस पत्र के संदर्भ में लिखते हैं - "लड़कियों को अच्छी शिक्षा दी जाए और उन्हें संसार में अपना रास्ता आप बनाने के लिए छोड़ दिया जाए, उसी तरह जैसे हम लड़कों को छोड़ देते हैं। उनको विवाहित देखने का मोह हमें छोड़ देना चाहिए और जैसे युवकों के विषय में हम उनके पथभ्रष्ट हो जाने की परवाह नहीं करते, उसी प्रकार हमें लड़कियों पर भी विश्वास करना चाहिए। तब यदि वह गृहिणी जीवन बसर करना चाहेगी तो अपनी इच्छानुसार अपना विवाह कर लेगी, अन्यथा अविवाहित रहेगी।"[17]

उस समय भारतीय बाल विधवा की स्थिति बहुत दयनीय थी, पुनर्विवाह के उदाहरण पढ़े-लिखे शहरी समाज में भी लगभग न के बराबर थे। ऐसे में प्रेमचंद इस उपन्यास में गाँव में भी झुनिया के रूप में बाल विधवा का चित्रण करते हैं और उसे गोबर जैसा अविवाहित युवा प्रेमी मिलता है जो उसका हाथ सदा के लिए थामकर अपने साथ ले जाता है, लेकिन किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में उसे अपने घर के

द्वार पर छोड़कर और यह तसल्ली करके कि उसके उदार माता-पिता ने झुनिया को आश्रय दे दिया है, माता-पिता के प्रति कृतज्ञता एवं दायित्व बोध से युक्त होकर कुछ कमाकर लाने के लिए शहर चला जाता है। होरी बिरादरी से डरता था, किंतु यह बिरादरी किस काम की जो व्यर्थ के प्रतिबंध लगाती है, यह बात धनिया भी भली प्रकार समझती थी। वे झुनिया को आश्रय देने का परिणाम जानते थे, किंतु कठोरता के ऊपरी आवरण में लिपटा उनका कलेजा उसके प्रति दायित्व बोध से युक्त हो जाता है। होरी व धनिया झुनिया को आश्रय देते हैं जबकि इसकी सजा इन्हें आजीवन भुगतनी पड़ती है- "... डर मत बेटी, डर मत। तेरा घर है, तेरा द्वार है, तेरे हम हैं। आराम से रह। जैसी तू भोला की बेटी है, वैसी ही मेरी बेटी है। जब तक हम जीते हैं, किसी बात की चिंता मत कर। हमारे रहते कोई तुझे तिरछी आँखों से न देख सकेगा। भोज-भात जो लगेगा, वह हम सब दे लेंगे, तू खातिर-जमा रख।"[18]

प्रेमचंद से पूर्व उपन्यास के चरित्र एवं पात्रों के रूप में समाज के तथाकथित आभिजात्य वर्ग का आधिपत्य था। प्रेमचंद हिंदी साहित्य के पहले उपन्यासकार हैं जिन्होंने अपने उपन्यासों में जमीन से जुड़े सर्वहारा किसानों एवं मजदूरों को न केवल पात्रों के रूप में चुना वरन नायक होरी तथा गोबर के रूप में उनका चित्रण कर उन्हें गरिमा प्रदान की। आलोचना के क्षेत्र में खलबली मच गई, क्योंकि उस युग में होरी, गोबर, धनिया या झुनिया जैसे पात्र प्रधान चरित्र एवं नायकत्व की परिभाषा पर खरे नहीं उतरते थे। इस पद की आवश्यक योग्यता का उनमें अभाव था। प्रेमचंद व्यवस्था के साथ-साथ व्यक्ति में भी सुधार चाहते थे। वे व्यक्ति में करनी और कथनी की एकता पर बल देते थे। आचरण एवं वाणी के विरोधाभास पर उन्हें सख्त एतराज था- "मैं नकली ज़िंदगी का विरोधी हूँ। अगर माँस खाना अच्छा समझते हो तो खुलकर खाओ। बुरा समझते हो, तो मत खाओ, यह तो मेरी समझ में आता है; लेकिन अच्छा समझना और छिपकर खाना, यह मेरी समझ में नहीं आता। मैं तो इसे कायरता भी कहता हूँ और धूर्तता भी जो वास्तव में एक हैं।"[19] सजग चिंतक प्रेमचंद बहुत पहले ही यह समझ गए थे कि साम्यवादी व्यवस्था का अंत समीप है- "धन को आप किसी अन्याय से बराबर फैला सकते हैं। लेकिन बुद्धि को, चरित्र को, और रूप को, प्रतिभा को और बल को बराबर फैलाना तो आपकी शक्ति से बाहर है। छोटे- बड़े का भेद केवल धन से ही नहीं होता। मैंने बड़े-बड़े धन कुबेरों को भिक्षुकों के सामने घुटने टेकते देखा है, और आपने भी देखा होगा। रूप के चौखट पर बड़े-बड़े महीप नाक रगड़ते हैं। क्या यह सामाजिक विषमता नहीं है? आप रूस की मिसाल देंगे। वहाँ इसके सिवाय और क्या है कि मिल के मालिक ने राजकर्मचारी का रूप ले लिया है। बुद्धि तब भी राज करती थी, अब भी करती है और हमेशा करेगी।"[20]

साहित्य के हजारों वर्षों के लंबे इतिहास में जिन विभूतियों को विश्वव्यापी सम्मान प्राप्त हुआ, प्रेमचंद उन्हीं में से एक हैं। उनकी रचनाओं में क्रांतिकारी सामाजिक चेतना का उन्मीलन हुआ है। प्रेमचंद अपने युग में जितने प्रासंगिक थे, उससे कहीं अधिक प्रासंगिक आज भी हैं और आने वाली पीढ़ियों को भी प्रभावित करते रहेंगे। उन्होंने भारतीय समाज की पूर्ववर्ती एवं समसामयिक परंपराओं की व्याख्या एवं पुनरव्याख्या वैज्ञानिक एवं यथार्थवादी संदर्भों में प्रस्तुत की है। प्रेमचंद जीवंत परंपराओं के जहाँ प्रबल पक्षधर हैं, वहीं मृत, रूढ़ एवं निर्जीव परंपराओं के मुखर विरोधी। इसके पीछे उनकी भारतीय समाज के नवनिर्माण में अगाध आस्था मुख्य रूप से प्रेरक शक्ति के रूप में सतत क्रियाशील रही है। उन्होंने अपने आधुनिकता एवं परंपरा के विवेकसम्मत एवं वैज्ञानिक स्वरूप को ही 'गोदान' के माध्यम से स्वीकृति प्रदान की है।

संदर्भ -

1. अमृतराय, सहचिंतन, सर्जना प्रकाशन, इलाहाबाद 1967, पृष्ठ-50
2. लक्ष्मीकांत वर्मा, नए प्रतिमान पुराने निकष, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,1966, पृष्ठ -37
3. गंगाप्रसाद विमल, आधुनिकता साहित्य के सन्दर्भ में, दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली, मद्रास, बम्बई, कलकत्ता, 1978, पृष्ठ-3
4. प्रेमचंद, कुछ विचार, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1961, पृष्ठ-68
5. प्रेमचंद , 'गोदान', सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद 1961, पृष्ठ- -116
6. वही, पृष्ठ-352-353
7. वही, पृष्ठ-365
8. वही, पृष्ठ-20
9. वही, पृष्ठ-23
10. वही, पृष्ठ-201
11. वही, पृष्ठ-206
12. वही, पृष्ठ-162
13. वही, पृष्ठ-317
14. वही, पृष्ठ-170
15. वही, पृष्ठ-65
16. वही, पृष्ठ-165
17. प्रेमचंद के विचार, भाग-2,पृष्ठ-280, भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली, 1989
18. प्रेमचंद, गोदान, पृष्ठ-126
19. वही, पृष्ठ-59
20. वही,पृष्ठ-59

फ्लैट-101, टावर-5, शंकरग्रींस, ताजनगरी फेस-2, होटल डबल ट्री बाय हिल्टन के पास, आगरा -282001 मोबाइल - 09837793355
(हिंदी विभागाध्यक्ष, आगरा कॉलेज आगरा)

मीनाक्षी स्वामी के कथा साहित्य में स्त्री सशक्तिकरण

डॉ. मृगेन्द्र राय

"कहानी "सोशल साइट" की नायिका दुष्कर्म की शिकार रिया कोर्ट में जलील होने पर जब उसके मन में आत्महत्या का कुविचार आया तो निम्न पंक्तियों की प्रेरणा से वह आत्महत्या का कुविचार त्याग देती है। सुसाइड नोट उसी कापी में रखने के लिए उसने कापी को खोला तो उसकी नजर पीले हाईलाइटर से चमकती एक लाइन पर पड़ी "जीना है तो मरने के लिए पहले तैयार रहो।"..... अचानक उसकी आँखों में उस दिन की पूरी घटना घूम गई। स्कूल में मुख्यमंत्री आई थी, उन्होंने अपने भाषण में कहा था। उसे यह बात बहुत अच्छी लगी थी सो उसने अपनी कापी में लिख ली थी। उसे उनके भाषण की और भी कई बातें याद आ गई। कुछ पल के लिए इस हादसे की बात वह भूल गई और अतीत के उन पलों में खो गई। और जब लौटी तो वह कोई और ही रिया थी।"इन पंक्तियों से प्रेरित रिया सशक्त होकर लौटती है। उसकी सोच उसे दृढ़ता प्रदान करती है। "उसकी बातों को दिल पर लेकर जान दे देना ! ये तो अपने प्रति खुद ही अन्याय हुआ।"

मध्य युग से आधुनिक युग तक स्त्रियों का शोषण, उनकी पराधीनता और उन्हें दोयम दर्जे के नागरिक के रूप में देखने की प्रवृत्ति आम रही है। भारतीय संस्कृति में यद्यपि नारी का सम्मान, उसकी प्रतिष्ठा वैदिक युग से रही है। प्रायः ऋषियों-मुनियों के आश्रमों में स्त्रियों की महत्वपूर्ण भागीदारी दिखाई देती है। किन्तु जैसे - जैसे समय बदलता गया, विदेशी आक्रांताओं के प्रहार से देश क्षुब्ध होता रहा और स्त्रियों को भी पर्दे के भीतर दुबकने के लिए अभिशप्त होना पड़ा। स्थिति यहाँ तक बनी कि पारम्परिक हिंदू समाज में भी स्त्रियों का वह सम्मान नहीं रह गया, जिसकी वे हकदार थीं। अंग्रेजों के शासन काल में भी स्थिति विद्रूप ही रही। 1857 की क्रांति की ज्वाला में महारानी लक्ष्मीबाई जैसी अनेक वीरांगनाओं ने अपने आत्म बलिदान से नारी सम्मान की अलख को अवश्य जगाया। के.एम. पणिक्कर का यह कथन लक्षणीय है - "जब स्वतंत्रता ने पहली अंगड़ाई ली तब भारत के राजनीतिक जीवन में स्त्रियों को जो पद प्राप्त हुआ, उसे देख कर बाहरी दुनिया चौक पड़ी क्योंकि वह तो हिंदू स्त्रियों को पिछड़ी हुई, अशिक्षित और प्रतिक्रिया_वादी सामाजिक व्यवस्था में जकड़ी हुई समझने की अभ्यस्त थी।"1 महात्मा गांधी के नेतृत्व में आजादी की जो विस्तृत लड़ाई छेड़ी गई, उसमें स्त्रियों की भागीदारी और उनकी सक्रिय भूमिका, उनकी शक्ति के प्रति हमारे सोच में बदलाव का संकेत करती है। कांग्रेस के नेतृत्व के साथ क्रांतिकारियों के संघर्ष में भी स्त्री की भूमिका देश और जनमत का ध्यान आकृष्ट करती रही है। इस पृष्ठभूमि में आजादी के बाद से ही हमारे सुधी नेताओं ने स्त्री के सशक्तीकरण और उनकी दुर्बलताओं के शोषण के विरुद्ध उठ खड़े होने का आह्वान किया। इसके लिए उन्होंने स्त्री शिक्षा पर बल दिया। के.एम. पणिक्कर लिखते हैं - "स्त्री शिक्षा ने विद्रोह की उस कुल्हाड़ी की धार तेज कर दी, जिससे हिंदू सामाजिक जीवन की जंगली झाड़ियों को साफ करना संभव हो गया।"2 साहित्य समाज की गतिविधियों से भला अछूता कैसे रह सकता है ? अतएव लेखन के धरातल पर आधुनिक काल में कहानी, उपन्यास, रेखाचित्र आदि अनेक विधाओं में स्त्री सशक्तीकरण का स्वर प्रभावी रूप में सुनाई देता है। जयशंकर प्रसाद की तितली, ध्रुवस्वामिनी, महादेवी की भक्तिन, प्रेमचंद की जालपा, धनिया आदि पात्र स्त्री सशक्तीकरण के जीवंत उदाहरण हैं।

वर्तमान समय में मीनाक्षी स्वामी हिंदी कथा साहित्य की चर्चित लेखिका हैं। "धरती की डिबिया", "अच्छा हुआ मुझे शकील से प्यार नहीं हुआ", "संकलित कहानियाँ" उनके कहानी संग्रह और "भूभल", "नतोहम्", "सौ कोस मूमल" उनके महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। उनके साहित्य में स्त्री जीवन के सशक्त पहलुओं का विवेचन प्रस्तुत शोध लेख का मूल विषय है। उनकी कृतियाँ स्त्रियों में आत्मविश्वास जागृत करने का सामर्थ्य

रखती हैं। उनके कथा साहित्य में नारी चेतना का जागरण शिद्दत से उपस्थित है। उनके यहाँ महिलाओं के संवैधानिक तथा कानूनी अधिकारों के साथ स्त्री सशक्तिकरण की अवधारणा को बल मिलता है। धीरे-धीरे यह चेतना नारीवादी आंदोलन में परिवर्तित होती दीख पड़ती है। पुरुष सत्ता के विरुद्ध महिलाएं आवाज उठाने लगीं। बावजूद इसके महिलाएँ व्यावहारिक रूप से पूरी तरह सशक्त हो गई हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। "वस्तुतः सशक्तिकरण एक प्रक्रिया है जो महिलाओं में गतिशीलता, आत्मविश्वास और जागरूकता का संचार करती है। जिससे निर्णयात्मक प्रक्रिया में उनकी प्रभावी भागीदारी संभव हो सके तथा विशेष योग्यता द्वारा विकास की दिशा को न केवल नियंत्रित कर सकें बल्कि उसकी दिशा को अपने हित में मोड़ने की क्षमता रख सकें।"3 मीनाक्षी स्वामी के कथा साहित्य में महिला सशक्तिकरण का यही स्वरूप स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यही नहीं उनके कथा साहित्य में स्त्री सशक्तिकरण के साथ ही स्त्री और पुरुष को साथ लेकर चलने का आग्रह भी स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है। वे मानती हैं कि समाज स्त्री पुरुष से मिलकर बना है और कोई भी समस्या केवल स्त्री की नहीं वरन पूरे समाज की है। एक की समस्या से दूसरा भी उतना ही पीड़ित होता है। उदाहरणार्थ उपन्यास भूभल की नायिका कंचन सोचती है - "पर ये भी तो है कि दोनों से मिलकर समाज बना है, एक की प्रॉब्लम हो तो दूसरा भी पीड़ित होता है।"4 भूभल उपन्यास के नायक मणि ने सरकार से अपील करते समय कहा - "इसे केवल स्त्री की समस्या ना मानें। स्त्री पारिवारिक ढाँचे की धुरी है। उसकी समस्या से पूरा परिवार और समाज प्रभावित होता है अतः पुरुषों से भी सहयोग का आह्वान है। कोमल और नन्ही बूँदें जब संगठित होती हैं तो चट्टानों को भी काट देती हैं। हम सब एकजुट होकर समाज को सुंदर बनाएँ।5

जहाँ तक मीनाक्षी स्वामी की कहानियों में स्त्री सशक्तिकरण की बात है, उनकी कहानी "बगुला बैठा ध्यान में" की नायिका संस्कारों से इतनी सशक्त है कि स्वयं पर कुदृष्टि रखने वाले पुरुष का हृदय परिवर्तन अपने सुसंस्कारों से कर देती है। ट्रेन में जाते समय जब पुरुष की कुदृष्टि नायिका पर पड़ती है तो नायिका के व्यवहार से उसकी सोच कैसे बदलती है, देखिए - "तभी अचानक उसका पैर मेरे पैर से लगा। बगुले भाव से बंद, अधमुंदी आँखों से मैंने देखा, उसने पैर पूरी तरह पीछे किए और चुपचाप हाथ बढ़ाकर मेरे पैरों को छुआ फिर माथे से लगाया, जैसे क्षमायाचना कर रही हो।"6 सहयात्री पुरुष सोचता है - "उस संस्कारित स्त्री के शालीन आचरण से मैं भीतर ही भीतर आंदोलित हो चला। भीतर जमी शरारतों की शिला ग्लानि के ताप से बर्फ सी पिघलने लगी। तभी तेज हवा का झोंका आया और मेरे भीतर का बगुला उड़ गया। उसके बाद मेरे भीतर बगुला नहीं रहा। उसकी जगह.....मेरे भीतर यह एहसास आ गया कि नारी और भी बहुत कुछ है देह के अलावा।"7 इस प्रकार सहयात्री की भावनाएँ परिवर्तित दिखाई पड़ती हैं। ऐसे तमाम बगुले ध्यान लगाए मछलियों की ओर बैठे हैं,जो मौका पाते ही उसे अपनी चोंच में दबा लेते हैं लेकिन यदि मछली में शक्ति है तो वह चोंच से निकल कर अपने गंतव्य तक पहुँच जाती है। यह तो मछली की शक्ति पर निर्भर करता है कि बगुले का सामना कैसे किया जाए?

कहानी "सोशल साइट" की नायिका दुष्कर्म की शिकार रिया कोर्ट में जलील होने पर जब उसके मन में आत्महत्या का कुविचार आया तो निम्न पंक्तियों की प्रेरणा से वह आत्महत्या का कुविचार त्याग देती है। सुसाइड नोट उसी कापी में रखने के लिए उसने कापी को खोला तो उसकी नजर पीले हाईलाइटर से चमकती एक लाइन पर पड़ी "जीना है तो मरने के लिए पहले तैयार रहो।"..... अचानक उसकी आँखों में उस दिन की पूरी घटना घूम गई। स्कूल में मुख्यमंत्री आई थीं, उन्होंने अपने भाषण में कहा था। उसे यह बात बहुत अच्छी लगी थी सो उसने अपनी कापी में लिख ली थी। उसे उनके भाषण की और भी कई बातें याद आ गईं कुछ पल के लिए इस हादसे की बात वह भूल गई और अतीत के उन पलों में खो गई। और जब लौटी तो वह कोई और ही रिया थी।"8 इन पंक्तियों से प्रेरित रिया सशक्त होकर लौटती है। उसकी सोच उसे दृढ़ता प्रदान करती है। "उसकी बातों को दिल पर लेकर जान दे देना ! ये तो अपने प्रति खुद ही अन्याय हुआ। गलती किसी की और मैं ही खुद को सजा दूँ... दूसरे तो बाद में अन्याय करेंगे, पहले तो मैं खुद ही खुद पर अन्याय कर रही हूँ। सोचते-सोचते हाथ में रखा सुसाइड नोट चिंदे-चिंदे कर दिया। आत्महत्या का विचार उसे बहुत ही मूर्खतापूर्ण लगा। यदि ऐसा कर लिया होता तो? सोचकर वह काँप गई।.....जो भी हो, मैं हर स्थिति का सामना करूँगी। कफन बाँधकर ही जीना होगा। उसने दृढ़ता से सोचा।"9 यह दृढ़ता उसे नई सोच, नए विचार और

नई चेतना के साथ समाज में खड़े होने की ताकत प्रदान करती है। तभी तो वह अपना पक्ष सोशल मीडिया में बहुत मजबूती से रखती है। अन्याय, अत्याचार की शिकार रिया नहीं चाहती कि कोई और लड़की ऐसे हादसे के चक्रव्यूह में फँसे। इसीलिए वह यह पोस्ट लिखती है - "मगर अपनी बात, अपना पक्ष सबके सामने कैसे रखूँ? देर तक सोचती रही। फिर उसकी नज़र कम्प्यूटर पर पड़ी। सोशल साइट...हाँ यह ठीक रहेगा, आखिर मेरे सारे मित्र इससे जुड़े हैं वे इसे तो देखते ही हैं। अब तक रिया का खोया हुआ आत्मविश्वास लौट आया था। उसने अपना सोशल साइट का अकाउंट खोला और लिखा.....मैं चाहती हूँ कि मेरे मित्र या कहूँ कि मेरे सच्चे मित्र होने के नाते आप मेरे पक्ष को अपने विवेक से समझें और मेरा मनोबल बढ़ाएँ। यह मित्रता के साथ आपके विवेक की भी परीक्षा की घड़ी है। मैं अपनी गलती स्वीकार भी करती हूँ और मुझे इसका पश्चाताप भी है। इस सच को भी मंजूर करती हूँ कि यदि ये हादसा न हुआ होता तो मुझे अपनी गलती समझ में भी नहीं आती। मैंने मर्यादा का उल्लंघन किया, सामाजिक और नैतिक नियमों को तोड़ा। यह मेरी गलती है। अपने अमर्यादित आचरण की सजा मुझे मिल चुकी है। मगर मैं आत्महत्या करके एक और बड़ी गलती करने जा रही थी। मगर समय पर मेरा विवेक जाग गया। अब मैं इसका प्रायश्चित इस तरह करना चाहती हूँ कि दूसरों को इस गलत राह पर जाने से रोकूँ।"10 उसकी यह सोच उन लड़कियों को भविष्य में सचेत रहने के लिए प्रेरित करेगी। यही कारण है कि संवेदनशील जागरूक समाज और दुनिया भर के हजारों लाखों लोग रिया के पक्ष में खड़े हो जाते हैं। "और जब उसने अपना सोशल नेटवर्क अकाउंट देखा तो सुखद आश्चर्य से भर गई। कल्पना से परे, देश ही नहीं दुनिया भर के हजारों लाखों लोग उसका मनोबल बढ़ाने के लिए उसके साथ थे।"11 यह पोस्ट पढ़कर रिया का ही नहीं उन सभी लड़कियों का भी मनोबल बढ़ जाता है। स्पष्ट है कि रिया का यह आत्मविश्वास उसमें नई चेतना का संचार करता है। इसमें संदेह नहीं कि आत्मविश्वास के बल पर व्यक्ति बड़ा से बड़ा कार्य करने में सक्षम होता है।

कहानी "अमृतघट" की नायिका अमृता प्रेम में पराधीन होना नहीं स्वीकार करती। वह भीतर से स्वयं को खोज कर इतना संपूर्ण और परितृप्त कर लेती है कि भीतरी सुकून के लिए बाहरी कारणों पर आश्रित नहीं रहती।

"अब तो वह हवा का जादू भरा संगीत सुनती, यह उसे बड़ा भला लगता। अब वह अमृत बरसाती चांदनी पीया करती और चांदनी पीकर आनंदविभोर हुआ करती। उसके हृदय का घट फिर चांदनी से भरने लगा। अब फिर अमृता की आँखों में भरी थी चांदनी, निर्मल धवल चांदनी, झख-झख सफेद चांदनी।... जब अमृता छककर चांदनी पीने लगी तो फिर घट से छलकती हुई चांदनी सारे समंदर में बहने लगी। अब सारे समंदर में बह रही थी- चांदनी ही चांदनी। इस चांदनी में था - अमृता का अपना अक्स।" "अब अमृता ना तो पराधीन थी और ना ही किसी आशा से भरी थी। उसके सारे पल सुख से भरे थे। अब उसने अपने भीतर का सुकून पा लिया था। उसके हृदय में स्थित प्रेम का अमृत बरसने लगा था।"12 उपर्युक्त पंक्तियों की प्रेरणा और अपनी सोच से वह प्रेम की पराधीनता से निकल कर पुनः स्वायत्त अमृतमयी अमृता बन जाती है। यही अमृता छद्म प्रेम के जाल में फँसी अनेक अमृताओं के लिए प्रेरक बन जाती है।

"कस्तूरी" कहानी की नायिका जीवन के समीकरण इस तरह बिठाती है कि खुद को सशक्त बना लेती है। वह पति के भटकाव से क्षुब्ध होकर विद्रोह की आग में झुलसते हुए उससे अलग रहने का निर्णय लेती है। अपनी कर्म चेतना के द्वारा वह स्वयं को सशक्त बनाती है तभी तो- "सुख कहीं बाहर से नहीं आता उसे अपने भीतर ही तलाश कर साफ करके चमकाना पड़ता है। कस्तूरी फल बेचती है और जिंदगी भी वैसे ही जीती है जैसे फल खाए जाते हैं, गूदा-गूदा खा लेती है, छिलके गुठली फेंक देती है।"13 वह लेखिका और उसके भाई जज साहब के समझाने पर पुनः अपने पति जगदीश को सही पथ पर चलने का अवसर देती है। यद्यपि कस्तूरी अनपढ़ है फिर भी उसकी सोच और दृढ़संकल्प शक्ति उसे समर्थ बनाती है, तभी तो उसका पति उसके समक्ष अपनी गलती का एहसास कर वापस लौट आता है। यह कस्तूरी की सोच का ही परिणाम है जिसकी परिणति उसके परिवार के साथ सामंजस्य बिठाने में सफल होती है। यही कस्तूरी उन ग्रामीण स्त्रियों के लिए प्रेरक एवं कारगर उदाहरण सिद्ध होती है। यहाँ लेखिका ने एक साधारण ग्रामीण स्त्री को आत्मनिर्भर और सशक्त व्यक्तित्व प्रदान किया है।

"सौ कोस मूमल" उपन्यास की प्रेम कथा में भी स्त्री सशक्ति-करण देखने को मिलता है। राजकुमारी मूमल सदियों पहले भी अपने महल में स्वतंत्र जीवन जी रही थी। यही नहीं अपने जीवन साथी के चयन के लिए भी वह स्वतंत्र थी। क्योंकि वह स्वयं साहसी और वीर थी, अतः उसने वीर राजकुमार के चयन के लिए भी परीक्षा की व्यवस्था की थी। इसमें इतिहास और लोकवार्ता के संयुक्त वृत्त पर बुनी हुई कहानी है। "जी हुकुम रूपवती के साथ वह वीर भी हैं और बुद्धिमान भी.....ऊँट सवारी तलवारबाजी सब कर लेती हैं।"14 रा-जकुमारी मूमल युद्ध कौशल में पारंगत हो अपनी रक्षा स्वयं करने में समर्थ है, वह शूरवीर योद्धाओं को भी चुनौती दे सकती है। इसीलिए मरुभूमि की यह कहावत प्रचलित हो गई - "जिनका शरीर पाषाण का और लोहे के वस्त्र हों उनके लिए भी मूमल के महल में जाना कठिन है।" 15 पवित्र काक नदी के किनारे था खूबसूरत बाग, रेगिस्तान में भी अपनी हरियाली से ठंडक देता था, बाग के बीच था महल जहाँ राजकुमारी मूमल अपनी सहेलियों साथ रहती थी। मांगणियार(लोक गायक) जगह-जगह जाते और अपने गीतों में मूमल के रूप, वीरता और बुद्धि का बखान करते थे। ऐसे ही मांगणियार अमरकोट के राजकुमार महेन्द्र के महल के बाहर मूमल के रूप सौंदर्य का बखान करने लगे। इसे सुनकर राजकुमार महेन्द्र बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने मूमल को अपनी महारानी बनाने की इच्छा जाहिर की। तब मांगणि-यारों ने बताया कि जो राजकुमार, मूमल की शर्तों पर खरा उतरेगा, वो उसी से विवाह करेंगी। मांगणियारों ने यह भी बताया कि उनका महल भूल-भुलैय्या है, साथ ही वहाँ शेर, सांप, बिच्छू हैं, आग का कुआँ है। जो इन सबको पार करके मूमल तक पहुँचेगा, राजकुमारी उसी का वरण करेंगी। और आज तक कोई राजकुमार यह नहीं कर सका है। लक्खा बाद में पता कर लेता है कि तीन लोग इसका भेद जानते हैं। उसमें एक राजकुमारी की मुख्य दासी और सखी सुजान भी है। लक्खा सुजान से किसी तरह महल का भेद जान लेता है। इसके सहारे राजकुमार महेन्द्र मूमल के महल में प्रवेश कर लेते हैं। दोनों में अपार प्रेम हो जाता है। वह हर रात अमरकोट से लोद्रवा तक सौ कोस की दूरी तय करके मूमल से मिलने आता है। एक रात उसे आने में बहुत देर हो जाती है। उसी रात मूमल की बहन सूमल को पुरुष वेश में उसके पलंग पर सोई हुई देखकर लौट जाता है। मूमल को बेवफा समझ कर फिर नहीं आता है। किसी तरह मूमल इस बात का पता लगाती है। वास्तविकता जानकर अपनी सच्चाई सामने लाती है। ऐतिहासिक कथा पर आधारित उपन्यास स्त्री की उस ताकत को, उस अपराजेय शक्ति को सामने लाता है, जहां वह स्वयं पर लगे बेवफाई के झूठे कलंक को मिटाने के लिए आकाश पाताल एक कर देती है। मूमल निर्दोष होते हुए भी दृढ़ता और साहस के साथ राजकुमार महेन्द्र के संशय का निराकरण करना चाहती है। इसीलिए वह अपनी सखी सुजान से कहती है - "कुछ तो जरूर करेंगे। इतना बड़ा कलंक राजकुमार महेंद्र ने हम पर लगाया है, हम चुप नहीं बैठेंगे। प्रेम में भरोसा तो जरूरी होता है, उन्होंने हम पर भरोसा ही नहीं किया..... असल बात तो यह है सुजान, राजकुमार को खुद पर ही भरोसा नहीं था। खैर अपने माथे का कलंक तो हम मिटा कर ही रहेंगे।"16 यहाँ मिटाकर ही रहेंगे शब्द मूमल की दृढ़ता एवं संकल्पशीलता का द्योतक है और वह अपने पथ पर निकल पड़ती है। "कहते हुए राजकुमारी ने मर्दाना वेश धारण किया बालों को पगड़ी में छुपाया। नकली मूँछ लगाई। अंगरखा, धोती और म्यान में चमचमाती तलवार।"17 इस तरह वह पुरुष वेश धारण कर राजकुमार के सारे गुण सीखती हैं। अंततः मूमल राजकुमार महेन्द्र को सत्य उद्घटित कर उनकी शंका का निवारण करती है। मूमल उन स्त्रियों में नहीं हैं जिन्हें शो केस में कैद कर प्रदर्शन की वस्तु बना दिया जाता है। वह स्वयं पर लगे आक्षेप का निवारण अपनी संघर्ष शक्ति के साथ करती हैं। कहना न होगा मूमल का व्यक्तित्व तत्कालीन समाज के लिए ही नहीं वरन वतर्मान समाज में प्रकाशपुंज का काम करेगा।

इसी तरह "मीनाक्षी स्वामी के उपन्यास भूभल में जिस सशक्त स्त्री का अंकन हुआ है, वैसा कम ही दिखाई देता है। खास तौर पर कानूनी व्यवस्थाओं की कमियों पर ध्यान देते हुए नायिका कंचन अपने संघर्ष के बलबूते पर महिलाओं को अधिकार और सम्मान दिला सकी। "कंचन ऐसे ही मनस्ताप से जूझती हुई सामाजिक व्यवस्थाओं, जटिलताओं को ढोने के बावजूद टूटती बिखरती नहीं है। वह अपने भीतर मौजूद चेतना की अग्नि से इनके प्रवाह को मोड़ कर अपने समय और समाज के बीच उस अग्नि को प्रज्वलित रखती है, जो धीरे-धीरे लौ बनने को आतुर है।"18 कंचन स्वाभिमान और आत्मविश्वास से परिपूर्ण है। अन्याय और

भेदभाव से अपने दृढ़ चरित्र और मनोबल के बलबूते पर जूझती है। बाल्यावस्था से ही शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने वाली कंचन शिक्षा पूरी करके न्यायाधीश के पद पर प्रतिष्ठित होती है। तब उसे लगता है,"कंचन ने अपने कानों में उसकी फुसफुसाहट भी सुनी, अब तुम बहुत कुछ कर सकती हो, सब कुछ बदल सकती हो। यह फुसफुसाहट विश्वास बनकर उसके भीतर बैठ गई। उसे लगा वह सारी दुनिया का अन्याय खतम कर सकती है, भारी बदलाव ला सकती है.....अपना कद उसे इतना ऊँचा लगा कि जैसे अब वह हाथ ऊँचा करके आसमान को छू लेगी और चाहेगी तो पकड़कर नीचे भी ले आएगी।"19 कंचन बचपन से ही अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है। परिवार में अपनी पढ़ाई के प्रति उपेक्षा पाकर वहाँ विरोध करती है और भाई के समान अधिकार पाती है। स्कूल में अन्य बच्चों के साथ विवाद में वह अपने भाई को बचाती है। अपने प्रति बुरी नजर रखने वाले लड़कों को स्कूल और कॉलेज में भी सबक सिखाती है। "दीपक दूसरे लड़कों के सामने डींग हाँक रहा था कंचन ने उन्हीं के सामने उस पर चढ़ा नकाब उतार दिया था और वह बुरी तरह खिसियाया हुआ था, उसका मनोबल भी टूटा हुआ था।"20 किशोरावस्था में ही कंचन के महिला सशक्तिकरण को लेकर स्वतंत्र विचार थे। उसने वाद विवाद प्रतियोगिता में रटाए गए विचारों को छोड़कर अपने व्यक्तिगत विचार रखे। उसने कहा -"स्त्री पूरी तरह से समर्थ ही है। मगर उसे अपनी सामर्थ्य का एहसास होना जरूरी है। समर्थ बनाने के लिए उसे सबसे पहले खुद को पुरुष से कमजोर समझने के पूर्वाग्रह से मुक्त होना होगा। अपना आत्मविश्वास जगाना होगा। अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी। पुरुष की परछाई बनने से बचना होगा। निरीह बनकर अत्याचार सहना और इसे आदर्श मानना गलत है। इस आदर्श को बदलना होगा।"21 पढ़ाई पूरी होने पर जब वह न्यायाधीश बनती है तब बलात्कार से पीड़ित महिलाओं को कानूनी छिद्रों के चलते न्याय मिलने में बाधा पाने पर राष्ट्रव्यापी आंदोलन के माध्यम से कानूनों में बदलाव करने में सफलता पाती है। उपन्यास की सशक्त नायिका कंचन का संघर्ष पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ता है। प्रकट है कि कंचन समाज की शोषित, पीड़ित महिलाओं के पक्ष में पूरी तरह से प्रतिबद्ध है। उसकी यह प्रतिबद्धता राष्ट्रीय स्तर पर अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रहती है।

उपर्युक्त विमर्श से स्पष्ट है कि कथा लेखिका मीनाक्षी स्वामी स्त्री को सामाजिक संदर्भों के व्यापक परिप्रेक्ष्य में चित्रित कर उसे इतना सशक्त और अपने लक्ष्य के प्रति इतना प्रतिबद्ध बना देती हैं कि वह जीवन की किसी भी परिस्थिति के सामने खड़ा होने से न हिचकती है न उसके कदम डगमगाते हैं। इतना ही नहीं उसका प्रयत्न होता है सम्पूर्णता की साधना और जीवन की चरितार्थता का वरण।

संदर्भ -

1. के.एम. पणिक्कर, हिंदू समाज निर्णय के द्वार पर, पृष्ठ 37
2. वही, पृष्ठ 37
3. डॉ. माधवी लता दुबे, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित पुस्तक समाजशास्त्रीय निबंध, पृष्ठ 2
4. मीनाक्षी स्वामी, भूभल, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 183
5. वही पृष्ठ 255
6. मीनाक्षी स्वामी , संकलित कहानियाँ, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, 2019, पृष्ठ 111
7. वही,पृष्ठ 111
8. मीनाक्षी स्वामी ,धरती की डिबिया, श्रीया प्रकाशन 2013, पृष्ठ 61
9. वही, पृष्ठ 61
10. वही, पृष्ठ 62
11. वही पृष्ठ
12. वही, पृष्ठ 84
13. अच्छा हुआ मुझे शकील से प्यार नहीं हुआ, किताबघर, दिल्ली 2001, पृष्ठ 40
14. मीनाक्षी स्वामी , सौ कोस मूमल, स्टोरी मिरर प्रकाशन ,गुड़गांव, हरियाणा, पृष्ठ 14-15
15. वही पृष्ठ 16
16. वही, पृष्ठ 12
17. वही पृष्ठ 107
18. भूभल,फ्लैप
19. वही, पृष्ठ 102
20. वही, पृष्ठ 55
21. वही, पृष्ठ 41

एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी विभाग, गुरु नानक खालसा कॉलेज, माटुंगा (पूर्व), मुंबई 400019, ईमेल mrig10@gmail.com, मो. 9869158885

नई शिक्षा नीति और पर्यावरण

प्रदीप कुमार ठाकुर

"तात्कालीन समय तथा चुनौतियों से सम्यक तरीके से निपटने हेतु बनाए गए इन कानूनों का उद्देश्य प्राकृतिक संतुलन बनाए रखना एवं वनसंपदा व वन्यजीवों का संरक्षण करना था। बावजूद इसको प्रभावी तथा समुचित तरीके से कार्यान्वित करने में पूर्णत: सफलता नहीं मिली। बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण, अत्यधिक औद्योगिक उत्पादन संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के कारण पर्यावरण में पैदा हुए बदलावों को नजरंदाज किया जाता रहा, जिसका समय-समय पर खामियाजा भुगतना पड़ा। प्राकृतिक आपदाएँ हों अथवा मानव निर्मित आपदाएं, दोनों के पीछे मूल कारण पर्यावरण के महत्व तथा उसके प्रति जागरुकता में कमी होना है। यद्यपि सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति को 1992 ई0 में संशोधित कर उसमें पर्यावरण संरक्षण को एक कोर के रूप में शामिल करने के लिए संशोधित किया गया था, जिसके आसपास एक राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा विकसित की गई थी पर उसको व्यावहारिक रूप से लागू नहीं किया जा सका। किंतु नई नीति इस अंतराल को पूरा करने की भरसक कोशिश करती हुई प्रतीत हो रही है।"

इक्कीसवी शताब्दी के साथ कदमताल करती हुई भारतीय अर्थव्यवस्था वर्ष 2024-25 तक पांच ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था वाला देश बनने का लक्ष्य लेकर प्रगति की राह पर अग्रसर है। अपने महत्त्वाकांक्षी एवं दीर्घकालीन उद्देश्य की प्राप्ति के क्रम में वह बुनियादी तथा बहुस्तरीय सुधारों को अमल में ला रहा है। इसी कड़ी में भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में किए गए बहुप्रतीक्षित बदलाव ने एक नए युग का मार्ग प्रशस्त करने में अपनी युगांतकारी भूमिका का निर्वाह किया है। बदलते परिवेश तथा नित नूतन चुनौतियों का मुकाबला करने तथा एक बौद्धिक, तार्किक तथा वैज्ञानिक चेतना से युक्त समाज के निर्माण में ऐसे सुधारों की अहम भूमिका है। ऐसी नीतियाँ हमारे दूरगामी चिंतन तथा सुदृढ़ भविष्य के लिए हमारी तैयारियों की तरफ इशारा करती है। इस परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 सरकारी नीतियों तथा सुधारों की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल है।

शिक्षा नीति चौंतीस वर्ष पुरानी राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 को प्रतिस्थापित करेगी तथा स्वतंत्र भारत की तीसरी शिक्षा नीति होगी। मई 2016 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के विकास के लिए गठित समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के लिए कुछ इनपुट तैयार किए गए। जून 2017 में पूर्व इसरो प्रमुख डॉ0 के कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मसौदे के लिए एक समिति का गठन किया गया, जिसने 31 मई 2019 को राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2019 का मसौदा प्रस्तुत किया। अंतत: 29 जुलाई 2020 को इसे जारी किया गया। नई शिक्षा नीति के तहत केंद्र एवं राज्य सरकार के सहयोग से शिक्षा क्षेत्र पर देश की जीडीपी के छह प्रतिशत हिस्से के बराबर निवेश का लक्ष्य रखा गया है।

वास्तव में यह नीति सामयिक, सर्वसमावेशी, बहुपयोगी तथा भविष्योन्मुखी है। यही कारण है कि इसका विजन स्पष्ट है। इस संबंध में स्वयं तात्कालीन शिक्षा मंत्री रमेश पोखरियाल निशंक, प्रकाश कुमार को साक्षात्कार देते हुए कहते हैं कि "नई नीति का विजन ही ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करना है जिसमें भारतीय परंपराओं और मूल्यों को जगह मिले, शिक्षा प्रणाली में इंडिया की जगह भारत की झलक मिले। इसका उद्देश्य ऐसी समतावादी और उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रणाली बनाना है जिसमें एक ज्ञान आधारित समाज का निर्माण हो "1स्पष्ट है कि शिक्षा नीति वृहद अर्थों में बहुआयामी है और एक साथ नए लक्ष्यों को साधने में समर्थ है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में एक ऐसे पाठ्यक्रम और अध्यापन प्रणाली विधि के विकास पर बल दिया गया है जिसके तहत पाठ्यक्रम के

बोझ को कम करते हुए छात्रों को इक्कीकवीं सदी के कौशल के विकास, अनुभव आधारित शिक्षण और तार्किक चिंतन को प्रोत्साहित करने पर विशेष ध्यान दिया गया है। साथ ही इस नीति में छात्रों की रचनात्मक सोच/तार्किक निर्णय और नवाचार की भावना को प्रोत्साहित करने पर बल दिया गया है। इस शिक्षा नीति का अंतरिम लक्ष्य एक ज्ञानवान समाज का निर्माण करना है ताकि एक समृद्ध, शक्तिशाली तथा आत्मनिर्भर भारत का सपना साकार हो सके। यही कारण है कि इस नीति में तकनीकी शिक्षा, भाषाई बाध्यताओं को दूर करने, दिव्यांग छात्रों के लिए शिक्षा को सुगम बनाने पर विशेष बल दिया गया है। इस नीति में प्रस्तावित सुधारों के अनुसार कला और विज्ञान, व्यावसायिक तथा शैक्षिक विषयों एवं पाठ्यक्रम व पाठ्येतर गतिविधियों के बीच बहुत अधिक अंतर नहीं होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के ड्राफ्ट में स्पष्ट उल्लेखित है कि "सभी स्तरों पर पाठ्यचर्या और शिक्षा विधि का समग्र केंद्रबिंदु शिक्षा प्रणाली को रटने की पुरानी प्रथा से अलग वास्तविक समझ और ज्ञान की ओर ले जाना है। शिक्षा का उद्देश्य संज्ञानात्मक समझ न होकर चरित्र निर्माण और इक्कीसवीं सदीं के मुख्य कौशल से सुसज्जित करना है।"2 ध्यातव्य है कि इस नीति में एक तरह से उन सारे व्यवधानों, अड़चनों तथा अंतर्विरोधों को दूर करने की कोशिश की गई है, जो दीर्घकालीन लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक हो तथा विद्यार्थियों में समग्र विकास को सुनिश्चित कर सकें। प्राचीन ज्ञान विज्ञान की समृद्ध भारतीय परंपरा से जोड़ते हुए इस नीति को समयानुकूल, सहज तथा व्यावहारिक बनाया गया है जिससे विकास की राह सुगम हो सके।

भारतीय संविधान, जिसे 1950 में लागू किया गया था वह सीधे तौर पर पर्यावरण संरक्षण के प्रावधानों से नहीं जुड़ा था। सन् 1972 के स्टॉकहोम सम्मेलन ने भारत सरकार का ध्यान पर्यावरण संरक्षण की ओर दिया। सरकार ने 1976 में संविधान में संशोधन कर दो महत्वपूर्ण अनुच्छेद 48 ए तथा 52 ए (जी) जोड़े। अनुच्छेद 48 ए राज्य सरकार को निर्देश देता है कि वह पर्यावरण की सुरक्षा और उसमें सुधार सुनिश्चित करें तथा देश के वनों तथा वन्यजीव की रक्षा करें। अनुच्छेद 51 ए (जी) नागरिकों को कर्तव्य प्रदान करता है कि वे प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करें तथा उसका संवर्धन करें और सभी जीवधारियों के प्रति दयालु रहें, किंतु व्यावहारिक रूप से उसे कार्यान्वित नहीं किया जा सका, फलस्वरूप यह मात्र कानून बनकर रह गया। हालांकि इस दिशा में पहले से प्रयत्न किए जाते रहे, किंतु उनका जमीनी आकलन संतोषजनक नहीं रहा। पर्यावरण की गुणवत्ता की इस कमी में प्रभावी नियंत्रण व प्रदूषण के परिप्रेक्ष्य में सरकार ने समय-समय पर अनेक कानून व नियम बनाए। कुछ पर्यावरणीय कानून एवं नियम इस प्रकार हैं :-

- जल प्रदूषण संबंधी कानून
- रीवर बोडर्स एक्ट,1956
- जल (प्रदूषण निवारण एंव नियंत्रण) अधिनियम 1974
- जल उपकर (प्रदूषण निवारण एंव नियंत्रण) अधिनियम 1977
- पर्यावरण सरंक्षण अधिनियम, 1986
- वायु प्रदूषण संबंधी कानून
- फैक्टरीज एक्ट, 1948
- इनफलेमेबल सेज एक्ट 1952
- वायु (प्रदूषण निवारण एंव नियंत्रण) अधिनियम 1981
- भूमि प्रदूषण संबंधी कानून
- इंडस्ट्रीज़ (डवेलपमेंट एंड रेगुलेशन), अधिनियम , 1951
- इनसेक्टीसाइडस एक्ट,1968
- अर्बनलैण्ड (सीलिंग एंड रेगुलेशन) एक्ट, 1976
- बन तथा वन्यजीव संबंधी कानून
- फारेस्ट कंजरवेशन एक्ट, 1960
- वाइल्ड लाईफ प्रोटेक्शन एक्ट, 1972
- फारेस्ट कंजरवेशन एक्ट, 1980
- वाइल्ड लाइफ (प्रोटेक्शन) एक्ट, 1995
- जैव विविधता अधिनियम, 2002-3

तात्कालीन समय तथा चुनौतियों से सम्यक तरीके से निपटने हेतु बनाए गए इन कानूनों का उद्देश्य प्राकृतिक संतुलन बनाए रखना एवं वनसंपदा व वन्यजीवों का संरक्षण करना था। बावजूद इसको प्रभावी तथा समुचित तरीके से कार्यान्वित करने में पूर्णत: सफलता नहीं मिली। बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण, अत्यधिक औद्योगिक उत्पादन संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के कारण पर्यावरण में पैदा हुए बदलावों को नजरंदाज किया जाता रहा, जिसका समय-समय पर खामियाजा भुगतना पड़ा। प्राकृतिक आपदाएँ हो अथवा मानव निर्मित आपदाएँ, दोनों के पीछे मूल कारण पर्यावरण के महत्व तथा उसके प्रति जागरुकता में कमी होना है। यद्यपि सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति को 1992 ई0 में संशोधित कर उसमें पर्यावरण संरक्षण को एक कोर के रूप में शामिल करने के लिए संशोधित किया गया था, जिसके आसपास एक राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा विकसित की गई थी पर उसको व्यावहारिक रूप से लागू नहीं किया जा सका। किंतु नई

नीति इस अंतराल को पूरा करने की भरसक कोशिश करती हुई प्रतीत हो रही है। शिक्षा संबंधी इस नई नीति में पर्यावरण जागरुकता, जल और संशोधन संरक्षण और स्वच्छता शामिल है। साथ ही स्थानीय समस्याओं का समना करने वाले महत्वपूर्ण मुद्दों के ज्ञान पर विशेष जोर दिया गया है। पर्यावरण शिक्षा में जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, अपशिष्ट प्रबंधन और स्वच्छता के विषयों को शामिल किया गया है। यह जैव-विवधता के संरक्षण,जैविक संसाधनों के प्रबंधन, वन और वन्यजीव संरक्षण के बारे में भी ठोस पहल करता है। बहुविषयक तथा अन्तरविषयी पाठ्यक्रम पर जोर ने इस नीति को नया कलेवर प्रदान किया है। शिक्षा नीति की इस नवीनता ने पुरान प्रतिमानों की जगह नए दृष्टिकोण को प्रधानता दी है। इस संदर्भ में इस नीति के बारे में तात्कालीन शिक्षा मंत्री संजय धोत्रे का विचार द्रष्टव्य है जहाँ वे कहते हैं कि "with respect to school education the makers of the policy have given special emphasis on learning to be holistic, experimental, integrative and enjoyable. The policy aims at 'real understanding and towards learning How to learn'."4 इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि नई शिक्षा नीति में पर्यावरण-शिक्षा को अनुभव आधारित पाठ्यक्रम द्वारा सीखने के कौशल पर विशेष जोर दिया गया है।

वास्तव में शिक्षा ही वह प्रभावी माध्यम है, जिसके जरिए, विद्यार्थियों में अपने वातावरण तथा परिवेश के प्रति लगाव पैदा किया जा सकता है। क्योंकि जब तक पयार्यवरण शिक्षा को उनके दैंनंदिन व्यवहार जगत से नहीं जोड़ा जाएगा तब तक उनमें पर्यावरण के प्रति सचेतनता जागृत करना संभव नहीं है। स्वयं तात्कालीन शिक्षा मंत्री रमेश पोखरियाल निशंक इस नीति की विशिष्टता बताते हुए कहते हैं – " The NEP will enable students to more towards 'learning to learn' with the spirit of critical inquiry, problem solving and creativity, students will be provided with a platform to evolve themselves in a culture of multidisciplinary education and innovation".5 लंबे समय से स्कूली शिक्षा में इस तरह के गुणात्मक बदलावों की आवश्यकता महसूस की जा रही थी, जिसे पूरा करने की दिशा में शिक्षा संबंधी नई नीति ने ठोस भूमिका निभाने की पुरजोर कोशिश की है।

वस्तुत: नई शिक्षा नीति बढती जरूरतों को पूरा करने की दिशा में एक लक्ष्य केंद्रित प्रयास है। परंपारिक शिक्षा में विद्यमान मूल्य, जिसे उपनिवेशीय, औद्योगिक तथा वैश्विक अनुभवों ने पदस्थापित कर दिया था, उसे पुनर्गठित करने के क्रम में नई नीति उल्लेखनीय भूमिका निभा सकती है। ज्ञान, अन्वेषण, अनुसंधान, चर्चा, विश्लेषण तथा आलोचनात्मक चिंतन आधारित शिक्षा के जरिए पर्यावरणीय चिंता के प्रति समाज को सचेत करना इस शिक्षा नीति का प्रमुख ध्येय है। अगर व्यक्ति तथा समाज अपने नित्यकर्म में गुणात्मक परिवर्तन लाए तो पर्यावरण का बेहतर प्रबंधन संभव हो सकता है। इसके लिए जरूरी है कि विद्यार्थी पादप जगत, जैव –विविधताओं से भरे जैव-जगत इत्यादि के बारे में जानकारी हासिल करें तभी पर्यावरण से उनका प्राकृतिक जुड़ाव संभव होगा और वे जीव-जंतुओं की रक्षा करना, वृक्षों के औषधीय महत्व को समझना तथा वातावरण के प्रतिकूल प्रभावों से अवगत होंगे। रोचक तथा अद्यतन पाठ्यक्रम व पाठ्य पुस्तकें इसमें पूरक भूमिका निभाने में सहायक होंगी। निष्कर्षत: कहें तो व्यक्ति तथा समाज द्वारा प्रदूषित पर्यावरण को अपनी स्वयं की समस्या के रूप में देखना होगा तभी विभिन्न पर्यावरण संबंधी समस्याओं से निपटने में हम सक्षम हो सकेंगे।

संदर्भ-सूची

1. outlookhindi.com/story/interview-ramesh-pokhriyal-nishank (आउटलुक
2. 24 अगस्त, 2020 '21 वीं सदी की माँग पूरी करेगी नई शिक्षा नीति')
3. education.gov.in/sites/upload_files/MHRD/Files/NEP Final_Hindi-pdf
4. hi-vikaspedia.in/rural-energy/Policy-support/ भारत-की-पर्यावरण-नीति
5. Equcation for new india-Yojana journal(monthly),Ed Shuchita Chaturvedi-
6. Publication Division, New Delhi,January,2021,Page no-20
7. National Education Policy Article-Yojana journal (monthly), Ed-Shuchita Chaturvedi-
8. Publication Division, New Delhi,Sept 2021,Page no-7

मूल्यांकक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड 7, आर के पुरम
सेक्टर-1, दिल्ली 110066, मो - 9330561518

'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ उपन्यास' में आदिवासी जीवन की चुनौतियाँ

डॉ. कमलेश कुमारी

"भारत देश में कुछ जातियाँ सुदूर क्षेत्रों में बसी हुई हैं जिनकी अपनी सभ्यता एवं सस्कृति है। वे भारत की मूल जातियाँ हैं जिन्हें आदिवासी कहा जाता है। उन तक विकास, शिक्षा, नई परियोजनाओं आदि का लाभ नहीं पहुँच पाता। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के अभाव में वे अज्ञान के अंधेरे में जीने को विवश हैं तथा अशिक्षित होने के कारण उन्हें रोजगार के भी अच्छे अवसर नहीं मिलते। वन प्रदेश में रहने वाले लकड़ी काटकर एवं बेचकर जीविकोपार्जन के साधन खोजते हैं। जबकि नदियों के किनारे, समुद्र तटों पर रहने वाले मछली, सीपी आदि को पकड़कर जीवनयापन करते हैं। कहने का अभिप्राय है कि उनके पास व्यवस्थित रूप में जीविकोपार्जन अर्थात रोजगार के साधन नहीं होते। शिक्षा के अभाव में वे नगरों में जाकर रोजगार खोजने में असमर्थ हैं। आधुनिक युग तकनीकी युग है। तकनीकी ज्ञान से वंचित आदिवासी नगरों, महानगरों में फैले कल-कारखानों एवं अन्य उद्योग धंधों में नौकरी पाने में असमर्थ होते हैं। विकास के नाम पर वनों को उजाड़ा जा रहा है।"

हाशिए के समाज अर्थात आदिवासियों को केंद्र में रखकर लिखे गए उपन्यासों में पात्र, स्थान, घटनाएँ, विचार, आन्दोलन भले ही काल्पनिक हों किन्तु किसी न किसी रूप में आदिवासी समाज के सच को उजागर करते हैं। हिंदी साहित्य में आदिवासी समाज का प्राथमिक चित्रण आंचलिक कथाओं तक सीमित था किन्तु आठवें दशक तक आते-आते कथाकारों ने इसको सामाजिक चेतना से युक्त किया जिसमें आदिवासियों के जीवन, सामाजिक परिवेश, सांस्कृतिक परम्पराएँ, आर्थिक स्थिति को परत-दर-परत देखने और समझने की कला विकसित हुई। उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की तीव्र प्रक्रिया के फलस्वरूप आदिवासियों के जीवन में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और कार्पोरेट्स का हस्तक्षेप होने लगा। इसके कारण आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन के पारम्परिक अधिकारों का भी अतिक्रमण प्रारम्भ हुआ। इस बाह्य हस्तक्षेप से आदिवासी क्षेत्रों में संघर्ष तेज हुआ। वास्तव में तद्जन्य परिस्थितियों ने आदिवासियों के समक्ष अस्तित्व एवं अस्मिता के गंभीर प्रश्न खड़े किए।

आदिवासियों की संस्कृति, जीवन शैली, विस्थापन, बेरोजगारी, यूरेनियम से उत्पन्न विकिरण की मार से पीड़ित एवं कष्टमय जीवन का चित्रण करते हुए महुआ माजी द्वारा लिखित मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ उपन्यास का प्रकाशन 2012 में राजकमल प्रकाशन द्वारा किया गया। उपन्यास का कथानक 33 उपखण्डों में विभाजित किया गया है जिनके शीर्षक उपखण्ड की कथावस्तु के आधार पर रखे गए हैं। उपन्यास का प्रमुख पात्र सगेन है जो यूरेनियम की रेडियोधर्मिता के कारण होने वाले पर्यावरण प्रदूषण, विस्थापन एवं बेरोजगारी का विरोध करता है। सगेन के दादा जाम्बीरा रेकोण्डा एवं उनके परिवार के माध्यम से ही संपूर्ण कथानक का ताना-बाना बुना गया है।

सारंडा क्षेत्र में एक ओर लौह अयस्क की खदान है तो दूसरी ओर मरंग गोड़ा के पास यूरेनियम की खदान स्थापित की जाती है। यूरेनियम की खदान के पास टेलिंग डेम बनाने के लिए आदिवासियों की जमीन का अधिग्रहण कर लिया जाता है जिससे वे विस्थापित होकर रोजी-रोटी के लिए तरस जाते हैं। यूरेनियम की धुलाई से निकलने वाले पानी को तो टेलिंग डेम में डाल दिया जाता है किंतु वर्षा के पानी का ऊपर से बहकर निकलने से तालाब, नाले, भूमिगत जलस्रोत सभी प्रदूषित हो जाते हैं जिससे मछलियाँ भी मर जाती हैं और अनाज आदि पर दुष्प्रभाव पड़ता है। यूरेनियम से विभिन्न प्रकार के रेडियोधर्मी कण एवं किरणें निकलती हैं जिनमें प्रमुख हैं गामा किरणें जो पूरे वातावरण को प्रदूषित करती हैं। यूरेनियम के विकिरण से आदिवासी के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जिसके कारण विकलांगता, कैंसर, टीबी, त्वचा रोग आदि स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

विकास योजनाओं के नाम पर वन विकास निगम वन प्रदेश में पेड़ों की कटाई करवाने लगा तथा उसके भ्रष्ट अधिकारी मूल्यवान पेड़ों की तस्करी भी करने लगे। आदिवासियों एवं उनके पशुओं पर वन में प्रवेश करने पर प्रतिबंध लगा दिया जिससे एक ओर तो आदिवासियों को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा तो दूसरी ओर पर्यावरण भी प्रदूषित होने लगा। लेखिका का तो यह भी मानना है कि विकास के नाम पर ऊर्जा स्रोतों का अधिक दोहन पर्यावरण प्रदूषण का एक बहुत बड़ा कारण है।

यूरेनियम के खनन से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। यूरेनियम से रेडियोधर्मी तत्व निकलते हैं जिनमें अल्फा, बीटा के कण होते हैं तथा गामा किरणें भी निकलती हैं जो पर्यावरण के साथ-साथ लोगों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती हैं। यूरेनियम की खदानें एवं टेलिंग डैम के लिए वृक्षों को काटा जाता है तथा जमीन का अधिग्रहण किया जाता है जो आदिवासी संस्कृति के लिए घातक सिद्ध होता है, ''जमीन चले जाने से उनकी संस्कृति, उनकी रिश्तेदारी भी खतरे में पड़ गयी है। वह संस्कृति, जो प्रकृति की गोद में पनपी है, फली फूली है।''1

सरकार विकास योजनाओं के लिए एवं विकास के नाम पर स्थापित किए जाने वाले उद्योगों के लिए भूमि का अधिग्रहण करती है। अधिग्रहण करते समय भू-मालिकों को बाजार की दर पर मुआवजा नहीं दिया जाता बल्कि अपनी शर्तों के मुताबिक मुआवजा दिया जाता है। शिक्षित क्षेत्रों के लोग तो कोर्ट की शरण में जाकर उचित मुआवजा प्राप्त कर ही लेते हैं किन्तु अशिक्षित, अज्ञानी आदिवासियों को न तो बाजार भाव का पता होता है न ही न्यायालयों का, यहाँ तक कि उनके पास जमीन के कागज भी नहीं होते। ऐसी अवस्था में सरकार अथवा विदेशी पूँजीनिवेशक अथवा पूँजीपति आदिवासियों की जमीन ले लेते हैं। उनके पास आजीविका का फिर कोई साधन ही नहीं होता। अपनी जमीन वापिस लेने के लिए आदिवासियों द्वारा किए जा रहे संघर्ष का उपन्यास में चित्रण किया गया हैं, ''आदिवासी निडर होकर प्रशासन से अपने पूर्वजों की उन जमीनों की वापसी का दावा भी करने लगे थे जिन्हें उनसे छीन लिया गया था।''2

अशिक्षित आदिवासियों से उनकी जमीन के कागज दिखाने को कहा गया, ''अगर यह जमीन तुम्हारे पुरखों की है तो अवश्य ही तुम्हारे पास जमीन के पट्टे होंगे। दिखाओ?'' तब बेचारे आदिवासियों के पास यही जवाब था, ''हम कागज कलम की भाषा नही जानते। जंगल के बीच, जहाँ-जहाँ हमारे गांव थे, वहाँ-वहाँ ससनदिरी (कब्र) में हमारे पुरखों की निशानी के रूप में गाड़े गए खड़े पत्थर ही हमारे पट्टे हैं। उजड़े हुए गाँवों की निशानी, अखाड़ा, सरना स्थल और खेतों के अवशेष ही हमारें पट्टे हैं...हमें हमारी जमीन वापस चाहिए।''3

वर्तमान युग में पूँजीवादी व्यवस्था, विकास योजनाओं, बाजारीकरण, औद्योगिकीकरण, आदि के कारण पर्यावरण को हानि पहुँचाई जा रही है। पूँजीपति पैसे के लालच में वन प्रदेश से बहुमूल्य लकड़ियाँ, वन्य जीवों की खाल, हड्डियों आदि की तस्करी करते हुए पर्यावरण को हानि पहुँचाई है। दूसरी ओर विकास के नाम पर विद्युत परियोजनाएँ, सड़क निर्माण आदि के लिए पेड़ों की कटाई हो रही है, नदियों पर बाँध बनाएँ जा रहे हैं। पहाड़ों में खनन हो रहा है जिसके कारण पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। पर्यावरण प्रदूषण का सर्वाधिक प्रभाव आदिवासियों के जीवन पर पड़ रहा है। आदिवासी लोगों का जीवन प्राकृतिक आपदाओं, निर्धनता, बेरोजगारी आदि के कारण पहले ही जटिल एवं दुष्कर रहा है। पर्यावरण को होने वाली हानि उनके जीवन को और भी जटिलतम एवं कष्टकारक बना रही है।

मरंग गोड़ा में यूरेनियम अयस्क निकालने के लिए खदान स्थापित की जाती है और यूरेनियम के कणों का विनाशकारी प्रभाव आसपास रहने वाले लोगों के स्वास्थ्य पर पड़ता है। सगेन ने यूरेनियम से होने वाले विकिरण के बारे में अध्ययन किया तो उसे पता चला कि ''मरंग गोड़ा के लोगों को होने वाली अधिकतर लाइलाज बीमारियों की जड़ में यूरेनियम से होने वाला विकिरण है न कि किसी दुष्ट बोंगा का प्रकोप या डाइन विद्या, जैसा कि वहाँ के अज्ञानी लोग अब तक समझते रहे हैं और निर्दोषों पर जुल्म ढाते रहे हैं।''4 इतना ही नहीं विकिरण जीन के साथ छेड़छाड़ करके स्त्री-पुरुष की जनन क्षमता को प्रभावित करता है, ''यह स्त्री-पुरुष की जनन क्षमता को भी प्रभावित करके उन्हें बांझ बना देने की ताकत रखता है।''5 बच्चों में जन्मजात मानसिक, शारीरिक विकलांगता एवं अन्य विकृतियों का कारण भी विकिरण ही होता है।

विस्थापन के मुद्दे को लेकर झारखंड में उभरे जनआंदोलन ने रेडियोधर्मिता विरोधी आंदोलन का रूप लेकर पर्यावरण प्रदूषण की ओर सरकार एवं सामान्य जन को जागरूक करने का प्रयास किया, ''भले ही मुआवजा देकर कंपनी ने कुछ लोगों का भला किया हो पर इसके कारण हमारा वातावरण तो प्रदूषित होता ही रहेगा न। हमारी आने वाली पीढ़ियाँ तो बीमार होती ही रहेंगी न! हमारी विकलांगता, हमारी असामयिक मौत देख वैसे भी हमारे पुरखों की आत्मा रो रही है। कंपनी चाहे कितना भी मुआवजा क्यों ने दे दे, बीमारों के इलाज की व्यवस्था कर दे क्योंकि हमारा स्वास्थ्य, हमारी स्वच्छ हवा ही हम गरीबों की एकमात्र पूँजी थी।''6

यूरेनियम से निकलने वाली गैस, किरणें और उस पर गिरकर बहने वाला पानी क्रमशः वायु और जल स्रोतों को प्रदूषित ही नहीं करता

अपितु जहरीला भी बना देता है। उपन्यास का पात्र नायर साहब तो यहाँ तक कहते हैं, "यूरेनियम खनन के दौरान निकलने वाली रैडान गैस हवा को प्रदूषित करने वाला मुख्य कारक है। उसी से धीमा जहर फैलाया जा रहा है इलाके में।''7 वे आगे चलकर और भी स्पष्ट करते हैं, "यूरेनियम खनिज से निकलने वाली किरणें भी हवा को दूषित करती हैं।''8

प्रदूषित जल का व्यापक प्रभाव आसपास रहने वाले लोगों पर तो पड़ता ही है। साथ ही साथ मृदा-प्रदूषण को भी आमंत्रित करता है, 'रेडियोधर्मी पदार्थों से दूषित पानी को जब सिंचाई के लिए इस्तेमाल किया जाता है तो उससे मिट्टी प्रदूषित होती है और उस मिट्टी में उपजा अनाज, उपजी फसलें भी जहरीली हो जाती हैं।'' 9 नायर साहब स्पष्ट करते हैं कि "गैस तो गैस, रासायनिक अवशेष को जहाँ डाला जाता है वहाँ की मिट्टी में पाए जाने वाले मानवोपयोगी प्राकृतिक रसायनों का संतुलन भी बिगड़ जाता है और इसका खामियाजा आसपास के निवासियों को भुगतना पड़ता है।''10

सगेन यूरेनियम खदानों एवं यूरेनियम के खनन के दुष्प्रभाव पर चिंता व्यक्त करते हुए कहता है, "हम आदिवासियों के पास संपत्ति के नाम पर होती है शुद्ध हवा, हरे भरे स्वस्थ पेड़, स्वच्छ पानी, जंगलों से ढँके पहाड़, पंछी, जानवर, जंगली फूल-फलों से लदे पेड़. . .। अब सब खत्म हो रहे हैं। इनके साथ-साथ हमारी संस्कृति भी नष्ट हो रही है।''11

यूरेनियम अथवा परमाणु के कचरे से विकिरण फैलता है जिसका घातक प्रभाव पर्यावरण एवं लोगों के स्वास्थ्य पर पड़ता है। उपन्यास का पात्र पत्रकार आदित्यश्री इस संदर्भ में कहता है, "आपके यहाँ परमाणु कचरा कहाँ फेंका जाता है। उससे आसपास के इलाके के लोगों का स्वास्थ्य प्रभावित हो रहा है या नहीं। पीने का पानी, मछलियाँ और अनाज तथा सब्जियाँ जहरीली तो नहीं हो रही. . .।''12

यूरेनियम खदानों से होने वाले विकिरण तथा नि:सृत होने वाले अन्य रेडियोधर्मी तत्व के कारण आदिवासी क्षेत्रों का पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। मरंग गोड़ा में यूरेनियम के मलबे को डालने के लिए टेलिंग पोंड बनाए जाने से आसपास के क्षेत्रों पर अत्यंत घातक प्रभाव पड़ रहा है। "माइनिंग के लिए आदिवासियों की धरती से बलात्कार। टेलिंग पॉन्ड के हजारों लीटर रेडियोधर्मी जल द्वारा मिट्टी तथा चट्टानों की दरारों से होते हुए जमीन के अंदर ही अंदर आसपास के खेतों तथा जल स्रोतों तक पहुँचकर उन्हें दूषित करने की वजह से. . .अरबों टन रेडियोधर्मी चट्टानों की ब्लास्टिंग तथा प्रोसेसिंग की वजह से. . .वातावरण में रैडॉन गैस तथा अन्य रेडियोधर्मी पदार्थों के फैलाव से तरह-तरह की स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न हुईं. . .जंगल से मिलने वाले फल, पंछी, जानवर खत्म हो गए, खेत नष्ट हो गए।''13

धनाभाव एवं सुविधाओं के अभाव में आदिवासियों का जीवन कष्टमय होता है। वे न तो अपने रहने की उचित व्यवस्था कर पाते हैं और न ही पहनने के लिए उचित वस्त्रों तथा भोजन की। घास-फूँस से आच्छादित झोंपड़ी ही उनका घर होता है जो वर्षा, आंधी अथवा जंगली जानवरों से उनकी रक्षा नहीं कर पाती। 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में जंगली हाथियों का दल झोंपड़ी में पुत्र सहित गहरी नींद में सो हुई जम्बीरा की पत्नी को कुचलकर चला जाता है। अर्थात वह झोंपड़ी उसको नहीं बचा पाती, "उसके प्राण पखेरू भी उड़ने के बदले हाथी के भारी भरकम पैरों तले ही दबकर...फँसकर रहे गए थे। सीने से नंगे बच्चे को चिपकाए मेन्जारी की क्षत विक्षत देह जमीन पर औंधी पड़ी मिली थी।''14

वन प्रदेश में बाढ़, भू-स्खलन तूफान आदि प्राकृतिक आपदाओं के अतिरिक्त दलदली क्षेत्र को भी प्राकृतिक आपदा के रूप में देखा जा सकता है। दलदल पर घास उग आती है और उस घास के लालच में व्यक्ति आगे बढ़कर गहरी दलदल में धँस जाता है। "मनुष्य ही नहीं बड़े-बड़े पशु भी दलदल में फँसकर काल-कवलित हो जाते हैं। सुकुर मुनी घास लाने अपनी जेठानी हिलि के साथ वन में जाती है। वहाँ बड़ी घास देखकर वह आगे बढ़ती है तो उसका पाँव कीचड़ में फँस जाता है। वह घबराकर पाँव निकाल लेती है तब उससे हिलि कहती है, दिखा नहीं तुझे उसके सामने का वह बड़ा-सा दलदल? वो तो अच्छा हुआ जो किनारे ही पाँव पड़े थे तेरे। थोड़ा और आगे कदम बढ़ाती तो समा ही जाती सीधे अंदर।''15 और रात्रि में एक हथिनी अपनी बच्ची सहित उसी दलदल में फँस जाती है।

भारत देश में कुछ जातियाँ सुदूर क्षेत्रों में बसी हुई हैं जिनकी अपनी सभ्यता एवं सस्कृति है। वे भारत की मूल जातियाँ हैं जिन्हें आदिवासी कहा जाता हैं। उन तक विकास, शिक्षा, नई परियोजनाओं आदि का लाभ नहीं पहुँच पाता। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के अभाव में वे अज्ञान के अंधेरे में जीने की विवश है तथा अशिक्षित होने के कारण उन्हें रोजगार के भी अच्छे अवसर नहीं मिलते। वन प्रदेश में रहने वाले लकड़ी काटकर एवं बेचकर जीविकोपार्जन के साधन खोजते हैं। जबकि नदियों के किनारे, समुद्र तटों पर रहने वाले मछली, सीपी आदि को पकड़कर जीवनयापन करते हैं। कहने का अभिप्राय है कि उनके पास व्यवस्थित रूप में जीविकोपार्जन अर्थात रोजगार के साधन नहीं होते, शिक्षा के अभाव में वे नगरों में जाकर रोजगार खोजने में असमर्थ हैं। आधुनिक युग तकनीकी युग है। तकनीकी ज्ञान से वंचित आदिवासी नगरों, महानगरों में फैले कल-कारखानों एवं अन्य उद्योग धंधों में नौकरी पाने में असमर्थ होते हैं। विकास के नाम पर वनों को उजाड़ा जा रहा है। नदियों पर बाँध बनाए जा रहे हैं जिसके कारण आदिवासियों को नगरों-महानगरों की ओर पलायन करना पड़ रहा है। उनके परम्परागत

आजीविका के साधन छिन रहे हैं। उन्हें पलायन करने के उपरांत उदरपूर्ति के लिए मजदूरी करनी पड़ती है। चूँकि वे अशिक्षित हैं इसलिए पूँजीपतियों, ठेकेदारों, जमींदारों के द्वारा उनका शोषण भी किया जाता है। उन्हें मजदूरी का उचित पारिश्रमिक नहीं दिया जाता। बेरोजगारी के कारण वे आर्थिक विपन्नता के जाल में फँसकर कष्टमय एवं दयनीय जीवन जीने को विवश हैं। आदिवासी स्त्रियों को भी उदरपूर्ति के लिए मजदूरी ही करनी पड़ती है और उनका भी शारीरिक एवं आर्थिक शोषण किया जाता है। बेरोजगारी के कारण आदिवासी समाज को विभिन्न समस्याओं जैसे- भुखमरी, गरीबी, अपमान, निराशा, प्रताड़ित जीवन आदि विभिन्न समस्याओं से जूझना पड़ता है।

आदिवासी क्षेत्रों में विकास कार्य करवाए जा रहे हैं। विकास कार्य चाहे सरकार द्वारा करवाए जा रहे हों चाहे पूँजीपतियों द्वारा कारखाने आदि स्थापित करके। किंतु इसके लिए आदिवासियों की रोजी-रोटी के साधन ज़मीन को छीन लिया जाता है जिससे वे बेरोजगार हो जाते हैं। बेरोजगारी की समस्या से जूझते आदिवासियों की किसी को अर्थात सरकार को अथवा पूँजीपतियों को कोई परवाह नहीं रहती, 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में आदिवासियों की बेरोजगारी की समस्या को अत्यंत सटीक ढंग से उठाया गया है, "विस्थापित तथा बेरोजगार स्थानीय लोगों को नौकरी देने की माँग भी जोर पकड़ती जा रही थी।"16

बिहार में कुछ नेता आदिवासियों की समस्याओं के निराकरण के लिए प्रयत्नशील होकर आंदोलन करते हैं। ऐसे नेताओं में सूरज सिंह, बेसरा, सुकुमार मारड़ी आदि प्रमुख हैं। आंदोलन में उठाए जाने वाले मुद्दों की चर्चा करते हुए सगेन कहता है, "कई इलाकों में जल, जंगल, जमीन, नौकरी, रोजगार, विस्थापन जैसे मुद्दों पर आंदोलन की शुरुआत हो चुकी थी।"17

नक्सलवाद अथवा माओवाद के पनपने के अनेक कारण थे। किंतु सबसे प्रमुख कारण भूमि अधिग्रहण के कारण विस्थापित हुए लोगों की बेरोजगारी था। "सबसे बड़ा मुद्दा बेरोजगारी का था। . .विकास के नाम पर 85 लाख आदिवासियों को उजाड़ दिया गया। इनमें से तीन चौथाई का भी पुनर्वास नहीं हुआ। रोजगार तो दूर, राज्य द्वारा उन्हें जीवनयापन की न्यूनतम सुविधाएँ भी नहीं दी गयीं। यही असंतोष नक्सली घटनाओं की वृद्धि का कारण बना था। तुम्हीं सोचो, आदिवासियों से जबरन जंगल के अधिकार छीन लिए गये जो उनके जीविकोपार्जन के साधन थे। कीमती खनिजों के खनन के लिए उनकी जमीन छीनी गयी।"18

यूरेनियम की खदानों के लिए भूमि का अधिग्रहण किया जाता है एवं आदिवासियों के रिहायसी मकान तोड़ दिए जाते हैं जिससे उन्हें विस्थापन की पीड़ा सहनी पड़ती है और जमीन अधिग्रहण के कारण वे बेरोजगार भी हो जाते हैं। जिस पर चिंता व्यक्त करते हुए लिखा गया है, "शुरुआती दिनों में विस्थापित कितने ही परिवारों को अभी तक जमीन का न तो मुआवजा मिला, न नौकरी। अभी तक उन परिवारों के वारिस न्यायालय के चक्कर काट रहे हैं।"19

भारत जनसंख्या वृद्धि की दृष्टि से विश्व में दूसरे स्थान पर है। यह एक विकासशील राष्ट्र है जिसमें विभिन्न जातियों, धर्मों एवं विभिन्न संस्कृति के लोग रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा एवं आवास की सुविधाएँ उपलब्ध कराना केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों का दायित्व है, किंतु इतने विशाल देश में प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपर्युक्त सुविधाओं को जुटा पाने में सरकारें सफल नहीं हुई हैं। नगरीय जीवन को तो अधिकांश सुविधाएँ उपलब्ध करवाई गई है। किंतु ग्रामीण क्षेत्रों में और विशेषकर सुदूर प्रांतों में बसने वाली आदिवासी जातियाँ इन सुविधाओं से वंचित हैं। आदिवासी जातियों के लिए शिक्षा का उचित प्रबंध नहीं किया गया है। न तो उनके लिए अच्छे विद्यालय हैं और न ही महाविद्यालय। निर्धनता के कारण अभावग्रस्त जीवन जीने वाले ये लोग नगरों में जाकर शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं। यदि कहीं इनके क्षेत्र में स्कूल हैं तो भी आर्थिक विपन्नता के कारण एवं जीवनयापन के साधनों के अभाव के कारण आदिवासियों के बच्चे स्कूल नहीं जा पाते और वे शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। अशिक्षित व्यक्ति को जीवन में अनेक समस्याओं एवं कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

आदिवासी क्षेत्रों में चिकित्सालयों का अभाव है। आदिवासी निर्धनता के कारण कुपोषण के शिकार होकर रुग्ण हो जाते हैं। चिकित्सालयों के अभाव के कारण वे उचित समय पर ईलाज नहीं करवा पाते। अर्थाभाव के कारण नगरों, महानगरों में जाकर इलाज करवाना उनकी पहुँच से बाहर है। वे अपने आसपास रहने वाले नीम-हकीमों, अल्पज्ञानी वैद्यों से इलाज करवाते हैं या फिर जादू-टोने-टोटके के चक्कर में पड़कर ओझा, मुल्ला-मौलवियों एवं ढोंगी तांत्रिकों के पास जाते हैं। उचित इलाज न होने के कारण असमय में कालकवलित हो जाते हैं।

आदिवासी कबीलों में रहते हैं। वन प्रदेश से काटी हुई लकड़ियों एवं पेड़ों के पत्तों से बनाई हुई झोंपड़ियों में निवास करते हैं। दीन-हीन, आर्थिक दृष्टि से विपन्न ये लोग टिकाऊ एवं पक्के मकान नहीं बना पाते। पक्के मकान न बना पाने का एक कारण प्राकृतिक आपदा भी है। कभी नदियों में बाढ़ आती है तो कभी वन प्रदेश में वनों की कटाई होती है तो कभी समुद्र में ज्वार-भाटे तथा तूफान भी आते रहते हैं। सफाई की उचित व्यवस्था न हो पाने के कारण विभिन्न प्रकार की बिमारियाँ इन्हें दबोच लेती हैं।

बच्चों की अकाल मृत्यु हो रही है तो बड़े भी बीमारियों के चलते मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं, मनुष्यों के साथ-साथ पशु भी विकलांग पैदा हो रहे थे, "जब वहाँ कई घरों में गाय, बकरी भी विकलांग पैदा हो रहे थे या

जन्म के बाद ही मर जा रहे थे तो इंसानों का क्या भरोसा? जब से उसने सुना था कि जतरू चाचा की बकरी का जबड़ा और मसूड़ों सहित सारे दाँत सड़ गल कर गिर चुके हैं।''20

आदिवासियों को भिन्न-भिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिनमें स्वास्थ्य की समस्या प्रमुख समस्या है। मरंग गोड़ा में यूरेनियम के विकिरण से बीमारियाँ बढ़ रही हैं जबकि कंपनी वाले बीमारियों का कारण कुछ और बताते हैं। इसी मध्य उपन्यास के पात्र जॉन के कहने से सगेन ने गुजरात के प्रसिद्ध एन.जी.ओ. के डॉक्टरों को मरंग गोड़ा के मरीजों के स्वास्थ्य परीक्षा के लिए आमंत्रित किया, ''कंपनी के लोगों से छुपाकर मरंग गोड़ा के वीभत्स चेहरे वाले विकलांग बच्चों, अपाहिज, बूढ़ों, टी.बी., थैलेसेमिया, थायरॉयेड, दमा आदि से पीड़ित लोगों या कैंसर के घाव से बजबजाते रोगियों से मिलवाना पड़ा। एक-एक मरीज की जाँच कर करके अनुभवी डॉक्टर विकिरणजनित उस बीमारी का खुलासा करते।''21 जबकि कंपनी विकिरण की रोकथाम के लिए उचित प्रबंध नहीं कर रही थी।

यूरेनियम का दुष्प्रभाव व्यक्ति के स्वास्थ्य पर पड़ता है जिसकी सरकार को अथवा कंपनी मालिकों को कोई चिंता नहीं, जबकि यह प्रभाव अत्यंत घातक होता है, ''यह कैसी विडंबना है कि हमारी औरतें बांझ हो रही हैं. . .हमारे बच्चे विकलांग पैदा हो रहे हैं. . .हमारे लोग जवानी में ही कैंसर या टी.बी. से मर रहे हैं और हम इसके विरोध में आवाज उठाते हैं. . .कोई कदम उठाते हैं तो देशद्रोही करार दिये जाते हैं।''22

राष्ट्र के विकास के लिए विदेशी पूँजी निवेशकों को पूँजी निवेश कर औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित करने के लिए आमंत्रित किया जाता है। उन्हें अन्य सुविधाओं के साथ-साथ जमीन भी मुहैया करवाई जाती है। जमीन का अधिग्रहण करते समय वहाँ रह रहे लोगों के हित-अहित को नहीं देखा जाता। 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में यूरेनियम निकालने के लिए एक खदान की स्थापना होती है जिसके कचरे के उत्सर्जन के लिए डैम बनाने के लिए बहुत से आदिवासियों के घर उजाड़े जाते हैं, ''देखते-देखते करीब बाईस झोंपड़ियाँ उजाड़ दी गयीं। सगेन की आंखों के सामने चित्रकारी की हुई रंगीन दीवारें भरभराकर गिर पड़ीं। मिट्टी के घड़े टूट-फूटकर बिखर गए। . .कहा गया कि खदान कंपनी की मिल से निकले कचरे को गिराने के लिए बनाया गया है वह। मुआवजे के थोड़े बहुत पैसे देकर पल्ला झाड़ लिया कंपनी वालों ने।''23

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि समाज की मुख्यधारा से कटे हुए उपेक्षित आदिवासी जनजातियों की पीड़ा एवं समस्या को लेखिका ने अन्तस की गहराइयों से अपने उपन्यास में चित्रण किया है। शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास आदि सुविधाओं से वंचित आदिवासी नारकीय जीवन जीने को विवश हैं। अंधविश्वासी, अशिक्षित आदिवासियों का बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के मालिकों, पूँजीपतियों, ठेकेदारों एवं सरकारी अधिकारियों द्वारा शोषण आम बात है, इसकी अभिव्यक्ति हुई है। आदिवासियों की दुर्दशा, जीवन संघर्ष, विकिरण, प्रदूषण और विस्थापन पर केन्द्रित उपन्यास के निष्कर्ष रूप में लेखिका सगेन के माध्यम से कहलाती हैं, ''तुम लोगों के पास आज बेशक विकास के अलग अलग उन्नत मॉडल है मगर हमें पूरा यकीन है कि विकास का आदिवासी मॉडल ही इस धरती को...समस्त प्राणियों को बचा सकता है।''24

संदर्भ-सूची

1. मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, महुआ माजी, पृ. 335
2. वही, पृ. 116
3. वही, पृ. 116
4. वही,पृ. 158
5. वही, पृ. 160
6. वही, पृ. 177
7. वही, पृ. 191
8. वही,पृ. 191
9. वही, पृ. 192
10. वही, पृ. 194
11. वही,पृ. 192
12. वही, पृ. 254
13. वही, पृ. 340
14. वही, पृ. 48
15. वही,पृ. 81
16. वही, पृ. 121
17. वही, पृ. 161
18. वही, पृ. 337
19. वही, पृ. 355
20. वही,पृ. 120
21. वही, पृ. 182
22. वही, पृ. 249
23. वही,पृ. 89
24. वही, पृ. 402

अध्यक्ष, हिंदी विभाग, अहीर कॉलेज, रेवाड़ी (हरियाणा) 123401

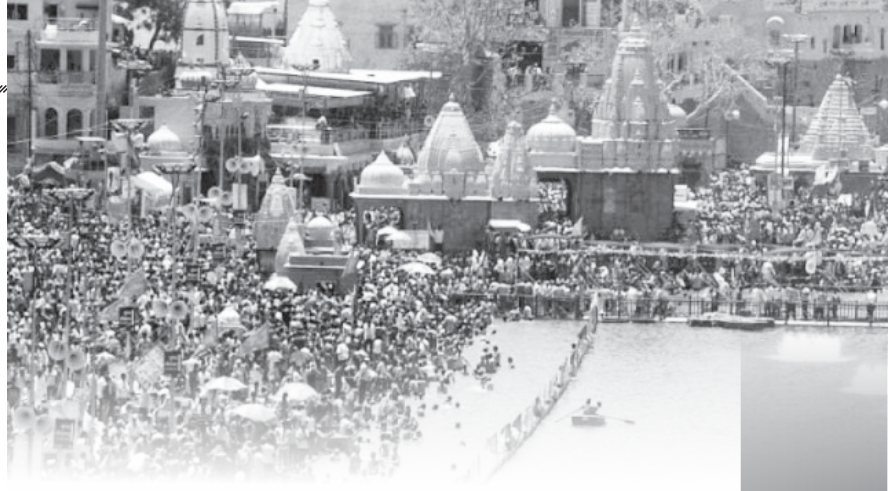

'औपनिवेशिक युग में प्रयागराज (इलाहाबाद) के पत्र-पत्रिकाओं की विकास यात्रा'

पूजा

सन 1907 में वसंत पंचमी के दिन महामना मदन मोहन मालवीय ने 'अभ्युदयपत्र का प्रकाशन शुरू किया। यह एक साप्ता-हिक पत्र था जिसके संपादक पुरुषोत्तम दास टंडन, सत्यानंद सिन्हा, कृष्णकांत मालवीय, गणेश शंकर विद्यार्थी, वेंकटेश नारायण तिवारी भी रहे। 'अभ्युदय' एक राजनैतिक पत्र था जो इलाहाबाद के चर्चित पत्रों में से एक माना जाता है, इस पत्र में समय-समय पर साहित्यिक तथा सामाजिक विषयों पर भी लेख प्रकाशित होते रहते थे। किन्तु सन 1932 में घासीराम व्यास की तीन कविताएँ इंकलाब जिंदाबाद, खटके, पीठ दिखैयो नहींआदि प्रकाशित होने के कारण इस पत्रिका को ब्रिटिश सरकार ने जुर्माना लगाकर हमेशा के लिए बंद कर दिया। सन 1907 में ही इलाहाबाद से उर्दू के साप्ताहिक पत्र 'स्वराज' का प्रकाशन भी होता है, जिसके पहले संपादक शांति नारायण भटनागर थे। इसके दो वर्ष बाद सन 1909 में पंडित सुन्दरलाल के संपादकत्व में कर्मयोगीपत्र की भी शुरुआत होती है।

इतिहासकार अबुल फजल के 'आईने अकबरी' से यह ज्ञात होता है कि इलाहाबाद शहर की स्थापना 1575 ई. में मुगल बादशाह अकबर के शासन काल में हुई। अकबर ने इलाहाबाद के गंगा, यमुना एवं सरस्वती (अदृश्य) नदी के संगम पर एक किले की नींव डालकर नगर को नए ढंग से बसाया जिसका नाम 'इलाहाबास' रखा गया। 'इलाहाबास' का अर्थ होता है अल्लाह का शहर इसलिए 'इलाहाबाद' को 'अल्लाहाबाद' भी कहा जाता है। लेकिन समय के अंतराल में धीरे-धीरे शहर का नाम 'इलाहाबास' से 'इलाहाबाद' हो गया।

इलाहाबाद ऐसा शहर है जिसका महत्व प्राचीन काल से ही रहा है। यह शहर इतना प्राचीन है कि इसका उल्लेख अनेक प्राचीन धर्म ग्रंथों, रामायण, महाभारत, वेद, उपनिषद आदि में मिलता है। इन सभी प्राचीन ग्रन्थों में इलाहाबाद को 'प्रयाग' नाम से अभिहित किया गया है। इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि प्रयाग इस शहर का सबसे प्राचीन नाम है जिसका उदाहरण तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' में देखा जा सकता है -

"भारद्वाज मुनि बसही प्रयागा"

शहर के नामकरण पर यदि ध्यान दिया जाए तो वह समय-समय पर बदलता रहा है इलाहाबाद को प्राचीन समय से लेकर अब तक कई नामों से जाना गया है जैसे आरंभ में 'प्रयाग' मध्यकाल में 'इलाहाबास', 'इलाहाबाद', 'अल्लाहाबाद' इत्यादि एवं आधुनिक युग में यह शहर 'इलाहाबाद' के नाम से काफी लंबे समय तक चर्चित रहा। लेकिन सन 2018 ई. में उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ द्वारा इस शहर का नाम बदलकर प्रयागराज कर दिया गया है। इस तरह वर्तमान में यह स्थान प्रयागराज के नाम से जाना जाता है।

इलाहाबाद के लम्बे इतिहास में बहुत से परिवर्तन दिखाई देते हैं। प्राचीन समय में इलाहाबाद जहाँ हिदू धर्म के केंद्र के रूप में प्रसिद्ध था वहीं मध्यकाल में मुगल शासक अकबर के समय यह एक नगर के रूप में विकसित हुआ जिसके बाद इलाहाबाद की पहचान हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों धर्मों के केंद्र के रूप में होने लगी। सन 1857 ई. की क्रांति के उपरांत इलाहाबाद पर मुग़ल शासन को समाप्त कर ब्रिटिश सरकार ने अपना पूर्ण आधिपत्य कर लिया।

भारत में औपनिवेशिक युग की शुरुआत 18वीं सदी के मध्य से मानी जाती है किंतु इलाहाबाद में औपनिवेशिकता का प्रभाव उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ से होता है, जब ब्रिटिश सरकार द्वारा शहर के किले पर नियंत्रण कर लिया गया। किंतु ब्रिटिश सरकार शहर पर अपना पूर्ण आधिपत्य 1857 की क्रांति के बाद ही स्थापित कर पाती है। सन 1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद अंग्रेजों ने इलाहाबाद में तीव्रता से

अपने साम्राज्य का विस्तार किया और इलाहाबाद को उत्तर पश्चिम प्रांत का मुख्यालय बना दिया।

सन 1900 ई. से 1920 ई. तक इलाहाबाद संयुक्त प्रांत की राजधानी रहा। राजधानी बनने के बाद अंग्रेजों ने शहर का विस्तार अपने ढंग से किया। इस बात के साक्षी हैं यहाँ के स्कूल, कॉलेज, संस्थाएँ, हाईकोर्ट, चर्च, इमारतें, कॉलोनियाँ इत्यादि की स्थापत्य कलाएँ। अंग्रेजों द्वारा शहर की निर्माण प्रक्रिया के संदर्भ में नरेश मेहता लिखते हैं कि- "अंग्रेजों की विशेषता यह रही है कि वह अपने साथ अपना इंग्लैंड साथ लिए रहते हैं स्थान मिला नहीं कि लंदन की तर्ज पर डेरे तंबू खड़े कर दिये मुंबई, कोलकाता या दिल्ली में बड़ा लंदन तो इलाहाबाद जैसे शहरों में छोटा लंदन मगर अंग्रेज मय अपने घोड़े बग्गी के साथ माल रोड सिविल लाइंस के साथ रहना पसंद करता था।"

इस तरह इलाहाबाद प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद एक धार्मिक नगर के साथ-साथ आधुनिक अस्तित्व में भी दिखाई देता है जहां औपनिवेशिक सत्ता शहर को अपने अनुरूप बदल देती है। जिसमें गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम के साथ-साथ प्राचीनता, मध्यकालीनता और आधुनिकता के भी संगम को भली-भाँति देखा जा सकता है।

औपनिवेशिक युग में इलाहाबाद राजनीति और साहित्य दोनों के केंद्र के रूप में उभर कर सामने आता है। जिसका कारण है भारत में मुद्रण का आना। मुद्रण के आने के बाद इलाहाबाद से अनेक पत्र-पत्रिकाओं की शुरुआत होती है और लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं का स्वाधीनता आंदोलन व हिंदी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

इलाहाबाद में पत्र-पत्रिकाओं की शुरुआत सन् 1865 ई. में अंग्रेजी अखबार 'पायनियर' से मानी जाती है जिसके प्रथम संपादक जुलियन रोबिनसन तथा संस्थापक जॉर्ज एलन थे। 'पायनियर' जिस समय इलाहाबाद से प्रकाशित हो रहा था उस समय उसकी स्थिति बहुत अच्छी मानी जाती थी और यह अखबार केवल भारत में ही नहीं बल्कि श्रीलंका, नेपाल, इंग्लैंड, अफगानिस्तान इत्यादि देशों में भी भेजा जाता था। 'पायनियर' अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित होने वाला एक सरकारी पत्र था जो अपने शुरुआती दौर में सप्ताह में केवल तीन बार छपता था, लेकिन कुछ वर्ष बाद सन् 1868 ई. में यह पत्र दैनिक हो गया। 1 अगस्त 1933 में 'पायनियर' के संपादक डेसमंड यंग के समय इस पत्र को राजनीतिक तथा व्यावसायिक कारणों के चलते इलाहाबाद से लखनऊ स्थानांतरित कर दिया गया और लखनऊ से ही इस पत्र का हिंदी संस्करण भी प्रारंभ हुआ।

औपनिवेशिक युग में 'पायनियर' के बरस्क और भी अनेक अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं का आरंभ इलाहाबाद से हुआ जैसे पंडित अयोध्या नाथ कुंजरू का पहला औपनिवेशिकता विरोधी एवं राष्ट्रीय समाचार पत्र 'इंडियन हेराल्ड जिसकी शुरुआत सन् 1879 ई. में हुई और आर्थिक अभाव के कारण यह तीन वर्ष के अंतराल में ही बंद हो गया। किन्तु इस पत्र के माध्यम से अयोध्या नाथ कुंजरू ने ब्रिटिश सरकार की नीतियों की जमकर भर्त्सना की। इसी के कुछ वर्ष बाद सन् 1885 ई. में आदित्य नाथ भट्टाचार्य द्वारा सम्पादित साप्ताहिक पत्र 'द इंडियन यूनियन' की शुरुआत हुई। इस पत्र की शुरुआत आदित्य नाथ भट्टाचार्य ने राजा रामपाल सिंह के सहयोग से की और इसके संपादक मंडल में अपने शिष्य मदन मोहन मालवीय को भी जोड़ लिया। इन्डियन हेराल्ड के बंद हो जाने से अयोध्यानाथ कुंजरू भी इसके संपादक मंडल से जुड़ गये। इस पत्र के अंतर्गत पत्रकारिता के उच्च आदर्शों का पालन करते हुए सरकार की कटु आलोचना भी होती थी।

प्रयाग से निकलने वाली पत्रिकाओं की अगली श्रेणी में मॉडर्न रिव्यू का नाम प्रमुख है। इस पत्रिका का प्रकाशन रामानंद चटर्जी द्वारा सन् 1901 ई. में किया गया, किन्तु कुछ समय बाद ही रामानन्द चटर्जी के स्थानांतरण के कारण इस पत्रिका का दफ्तर कलकत्ता चला गया। मॉडर्न रिव्यू के साथ ही उर्दू में निकलने वाले कायस्थ समाचारपत्र का अंग्रेजी संस्करण भी निकालने का कार्य सन् 1899 ई. में रामानंद चटर्जी ने आरम्भ किया और सन् 1900 ई. तक इसका कार्यभार संभाला। रामानन्द चटर्जी के बाद इस पत्र का अंग्रेजी संस्करण सच्चिदानंद सिन्हा ने निकालना प्रारंभ किया और सन 1903 ई. में सच्चिदानंद सिन्हा ने कायस्थ समाचारपत्र का नाम बदलकर हिंदुस्तान रिव्यू कर दिया।

सन 1903 ई. में ही सच्चिदानंद सिन्हा ने एक राजनैतिक पत्र इण्डियन पीपुल की भी शुरुआत की। लेकिन अपनी व्यस्तता के कारण सच्चिदानंद सिन्हा ने कुछ समय बाद ही इस पत्र का संपादन कार्य सी.वाई.चिंतामणि को सौंप दिया। इण्डियन पीपुल शुरुआत में साप्ताहिक पत्र था जो एक वर्ष बाद अर्द्ध-साप्ताहिक हो गया। इण्डियन पीपुल के साथ-साथ प्रयाग से निकलने वाली अनेक अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में जिस पत्र ने सबसे ज्यादा प्रसिद्धि हासिल की वह पंडित मदन मोहन मालवीय द्वारा संपादित समाचार पत्र लीडर है।

पंडित मदन मोहन मालवीय द्वारा लीडर की शुरुआत मोतीलाल नेहरू के सहयोग से 24 अक्टूबर 1909 में विजयादशमी के दिन की गयी थी। 'लीडर' भारत का एक ऐसा समाचार पत्र था जो सरकार के लिए हमेशा सिरदर्द बना रहा इसके बावजूद यह पत्र उस समय के सभी

समाचार पत्रों में सबसे ज्यादा छाया रहा। औपनिवेशिक भारत में लोक प्रचलित अखबार लीडर उस समय सरकार के लिए कितना चुनौतीपूर्ण था इस बात की पुष्टि मशहूर शायर अकबर इलाहाबादी के शेर से की जा सकती है -

जर्मन का फतेह हो जंग के मैदान में
सरकार का फतेह हो लीडर के अखबार में।

मदनमोहन मालवीय की बहुमुखी प्रतिभा और उनके द्वारा संपादित लीडर की बहु प्रसिद्धि के कारण द इंडियन यूनियन और इण्डियन पीपुलपत्रों को लीडरमें समाहित कर लिया गया। सन 1911 तक मदन मोहन मालवीय इस पत्र के प्रमुख संपादक और नागेन्द्रनाथ गुप्त व सी.वाई.चिंतामणि सहायक संपादक थे।

लीडर के संपादक सी.वाई.चिंतामणि से कुछ आपसी मनमुटाव के होने के कारण 5 फरवरी 1917 में मोतीलाल नेहरू ने स्वतंत्र पत्र इंडीपेंडेंट की शुरुआत की और कुछ ही समय में इस पत्र ने आम जनमानस के बीच बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। इस पत्र का मुख्य उद्देश्य महात्मा गाँधी द्वारा चलाये गये असहयोग आन्दोलन का प्रचार-प्रसार करना था।

सन 1943 ई. में तुषार कांति घोष द्वारा अमृत बाज़ार पत्रिका का इलाहाबाद संस्करण प्रारंभ किया गया जिसमें औपनिवेशिक भारत में चल रही गतिविधियों को मुख्य रूप से स्थान दिया जाता था। पहले यह पत्र कलकत्ता से निकलता था लेकिन तुषार कांति घोष जब कलकत्ता छोड़ कर प्रयाग में बस गये तब उन्होंने अपने इस पत्र का प्रकाशन यहीं से जारी रखा। स्वतंत्रता पश्चात इस पत्रिका का नाम बदलकर नोदर्न इंडिया पत्रिका कर दिया गया और इसका हिंदी संस्करण अमृत प्रभात नाम से शुरू किया गया।

औपनिवेशिक दौर में इस शहर से निकलने वाली अंग्रेजी की लगभग इन सभी पत्र-पत्रिकाओं में स्वाधीन भारत की महत्वाकांक्षा, ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध और राष्ट्रवादी नीतियों को महत्व दिया जाता था।

सरकारी पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त औपनिवेशिक युग में इलाहाबाद से हिंदी की भी अनेक पत्र-पत्रिकाओं का आरंभ हुआ। यहाँ से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं को हम तीन चरणों में बाँट कर देख सकते है-

प्रथम चरण - (1868 ई. - 1900 ई.)

द्वितीय चरण - (1900 ई. - 1920 ई.)

तृतीय चरण - (1920 ई. - 1947 ई.)

प्रथम चरण में इलाहाबाद से हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं के क्रम में सर्वप्रथम सदासुख लाल द्वारा संपादित सन 1868 ई. में 'वृतांत दर्पण' पत्र का उल्लेख मिलता है। इस पत्र के बाद तत्कालीन समय में इलाहाबाद की सबसे चर्चित पत्रिका पंडित बालकृष्ण भट्ट द्वारा प्रकाशित 'हिंदी प्रदीप' को माना जाता है।

'हिंदी प्रदीप' की शुरुआत सन 1877 में होती है और 1877 ई. से 1909ई. तक यह पत्रिका लगातार इलाहाबाद से प्रकाशित होती रही। हिंदी प्रदीप एक ऐसा राष्ट्रवादी पत्र था जिसका उद्देश्य देशवासियों को जागृत कर उनमें देश भक्ति का प्रचार-प्रसार करने के साथ-साथ हिंदी के उन्नयन व विकास को बढ़ाना था। इस पत्र में राष्ट्रवादी लेख छापने के कारण पंडित बालकृष्ण भट्ट को हमेशा सरकार के उग्र व्यवहार का सामना करना पड़ा लेकिन फिर भी भट्ट जी ने कभी हार नहीं मानी और अनेक मुसीबतों को सहते हुए निडर भाव से हिंदी प्रदीप का प्रकाशन करते रहे। हिंदी प्रदीप को अनेक चेतावनियों के बाद 1 अप्रैल 1908 के अंक में प्रकाशित पंडित माधव शुक्ल की कविता 'बम क्या है, को ब्रिटिश सरकार के लिए घातक समझते हुए सन 1910 में इसे हमेशा के लिए बंद कर दिया गया।

"डरो न केवल इसमें बुद्धि भरम है। सोचो यह क्या है जो कहलाता है बम है।।

यह नहीं स्वदेशी आंदोलन का फल है। नहीं वायकाट या स्वराज कि कल है।।"

- 'बम क्या है'

बालकृष्ण भट्ट एक सामान्य परिवार से आते थे किंतु आर्थिक तंगी और राजनीतिक दबाव के बावजूद वह 'हिंदी प्रदीप' को असाधारण लगन और कर्मठता से संपादित करते रहे। भट्ट जी भारतेन्दु मंडल के प्रमुख साहित्यकार तो थे लेकिन उनकी प्रवृत्ति आलोचनात्मक थी जो उन्हें भारतेन्दु युग से अलग बनाती थी। इस सन्दर्भ में डॉ रामविलास शर्मा कहते हैं कि बालकृष्ण भट्ट का 33 वर्षों तक हिंदी प्रदीप चलाना एक ऐतिहासिक घटना है। धुन और लगन का इससे बड़ा उदाहरण हिंदी साहित्य के इतिहास में दूसरा नहीं है। उनके पास कार्तिक प्रसाद खत्री के जैसे न साधन थे, न वह भारतेंदु की भाँति सोने के पालने में झुलाए गये थे, जो समाज उन्हें हाथों-हाथ लेता। वह एक साधारण परिवार में उत्पन्न हुए थे।

यह पत्रिका तमाम अवरोधों के बाद भी 33 वर्षों तक इलाहाबाद की भूमि से औपनिवेशिक सत्ता को निरंतर ललकारती रही और इसका

प्रकाशन भले ही बंद कर दिया गया किंतु इतनी लम्बी अवधि तक प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका ने उस समाज में क्रांति की लहर भली-भाँति फूँक दी थी। साथ ही हिंदी साहित्य को भी एक ऐसे नए मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया था जिसके उन्नयन और विकास को नहीं रोका जा सका।

'हिंदी प्रदीप' के समानांतर ही सन 1880 ई. में साप्ताहिक पत्र प्रयाग मित्र का संपादन पंडित जगन्नाथ शर्मा राज्य-वैद्य के द्वारा किया गया। इसी के साथ सन 1880 ई. में देवकीनन्दन त्रिपाठी द्वारा संपादित 'प्रयाग समाचार' पत्र और सन 1881 ई. में पंडित जगन्नाथ वैद्य द्वारा संपादित 'आरोग्य दर्पण' का आरम्भ भी इलाहाबाद से होता है।

पत्रिका के दूसरे चरण अर्थात द्विवेदी युग में इलाहाबाद से महत्वपूर्ण विषयों जैसे साहित्य, राजनीति, समाज, बच्चों, महिलाओं, धर्म इत्यादि को आधार बनाकर बहुत सी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। किन्तु इस चरण के अंतर्गत इलाहाबाद से निकलने वाली यदि किसी पत्रिका को खड़ी बोली हिंदी के उत्थान और राष्ट्र निर्माण के लिए जाना जाता है तो वह महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित 'सरस्वती' पत्रिका है। शुरुआती दौर में सरस्वती के संपादक राधा कृष्ण दास, बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री, बाबू जगन्नाथ दास और किशोरी लाल गोस्वामी थे। सन 1901 से 1903 तक इसका संपादन कार्य बाबू श्यामसुंदर दास ने किया। सन 1903 में सरस्वती का संपादकत्व द्विवेदी जी ने संभाल लिया और अपनी अद्भुत प्रतिभा से कुछ ही माह में पत्रिका को राष्ट्रीय बना दिया। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में इलाहाबाद से जुड़े लगभग हर साहित्य प्रेमी इस पत्रिका से जुड़े हुए थे जैसे श्यामसुंदर दास, कार्तिक प्रसाद खत्री, राधा कृष्ण दास, जगन्नाथदास रत्नाकर, किशोरी लाल गोस्वामी, पंडित माधव राव सप्रे, पंडित राम नरेश त्रिपाठी, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारी सिंह दिनकर इत्यादि।

सरस्वती पत्रिका का महत्व इस बात से है कि इसके माध्यम से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने विभक्तियों विरामादि चिन्हों के प्रयोग को सुनिश्चित कर खड़ी बोली हिंदी को मानकीकृत और व्याकरणीकृत कर उसे समृद्ध बनाने का प्रयास किया। द्विवेदी जी के इस महत्वपूर्ण कार्य के संदर्भ में पंडित रामचंद्र शुक्ल का यह कथन है कि -

सरस्वती के संपादक के रूप में उन्होंने आई हुई पुस्तकों के भीतर व्याकरण और भाषा की अशुद्धियाँ दिखाकर लेखकों को बहुत सावधान कर दिया। यद्यपि कुछ हठी और अनाड़ी लेखक अपनी भूलों और गलतियों का समर्थन तरह-तरह की बातें बनाकर करते रहे, पर अधिकतर लेखकों ने लाभ उठाया और लिखते समय व्याकरण आदि का पूरा ध्यान रखने लगे। गद्य की भाषा पर द्विवेदी जी के शुभ प्रभाव का स्मरण जब तक भाषा के लिए शुद्धता आवश्यक समझी जाएगी, तब तक बना रहेगा।

सन 1907 में वसंत पंचमी के दिन महामना मदन मोहन मालवीय ने 'अभ्युदयपत्र' का प्रकाशन शुरू किया। यह एक साप्ताहिक पत्र था जिसके संपादक पुरुषोत्तम दास टंडन, सत्यानंद सिन्हा, कृष्णकांत मालवीय, गणेश शंकर विद्यार्थी, वेंकटेश नारायण तिवारी भी रहे। 'अभ्युदय' एक राजनैतिक पत्र था जो इलाहाबाद के चर्चित पत्रों में से एक माना जाता है, इस पत्र में समय-समय पर साहित्यिक तथा सामाजिक विषयों पर भी लेख प्रकाशित होते रहते थे। किन्तु सन 1932 में घासीराम व्यास की तीन कविताएँ इंकलाब जिंदाबाद, खटके, पीठ दिखैयो नहीं आदि प्रकाशित होने के कारण इस पत्रिका को ब्रिटिश सरकार ने जुर्माना लगाकर हमेशा के लिए बंद कर दिया। सन 1907 में ही इलाहाबाद से उर्दू के साप्ताहिक पत्र 'स्वराज' का प्रकाशन भी होता है, जिसके पहले संपादक शांति नारायण भटनागर थे। इसके दो वर्ष बाद सन 1909 में पंडित सुन्दरलाल के संपादकत्व में कर्मयोगीपत्र की भी शुरुआत होती है। इन पत्रों में संपादकों द्वारा आजाद भारत के लिए अनेक लेख छापे गए जिसके कारण सन 1910 में इन दोनों पत्रों को ब्रिटिश सरकार द्वारा सरकार विरोधी घोषित कर हिंदी प्रदीप के साथ ही हमेशा के लिए बंद कर दिया गया। इसी के साथ सन 1908 में भारतवासीसमाचार पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ जिसका संपादन कार्य इन्द्रनारायण दिवेद्वी ने संभाला। यह पत्र अपने शुरुआती दौर में दैनिक था किंतु कुछ समय बाद ही साप्ताहिक हो गया।

सन 1910 में इलाहाबाद के लोकप्रिय सामाजिक कार्यकर्ता पंडित कृष्णकांत मालवीय द्वारा मासिक पत्रिका मर्यादा का आरम्भ किया गया और 1920 में यह पत्रिका बनारस के ज्ञानमंडल से प्रकाशित होने लगी। मर्यादा के समानान्तर ही इलाहाबाद से दो अन्य समाचार पत्र सर्व शिक्षक सन 1916 में व लड़ाई का अख़बार सन 1918 में शुरू होते हैं। इनका सम्पादन क्रमशः मुकुट बिहारी लाल तथा सत्यानन्द जोशी

ने किया। सन 1917 में सुन्दर लाल द्वारा सम्पादित साप्ताहिक समाचार पत्र 'भविष्य' की शुरुआत होती है जो केवल 6 माह की अवधि तक ही प्रकाशित हो पाया जिसके बाद ब्रिटिश सरकार द्वारा इसे हमेशा के लिए जमानत जब्त कर बंद कर दिया गया। सन 1917 में एम.बी श्रीवास्तव के संपादन में निकली 'मदारी' पत्रिका प्रकाशित हुई जिसको इलाहाबाद की पहली हास्य व्यंग केंद्रित पत्रिका होने का गौरव प्राप्त हुआ। इसी के साथ सन 1920 में साप्ताहिक पत्र 'हिंदुस्तानी' की भी शुरुआत होती है जो केवल एक वर्ष बाद ही बंद हो जाता है।

इस प्रकार इलाहाबाद से द्वितीय चरण में निकलने वाली प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं का संबंध राष्ट्रीय आन्दोलन से रहा है जिसके सम्बन्ध में कलकत्ता की हिंदी पत्रकारिता: उद्भव और विकास पुस्तक में डॉ. कृष्णबिहारी ने इस युग को तिलक युग की संज्ञा दी है। इस युग में केवल भाषा व राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बंधित ही नहीं बल्कि स्त्री शिक्षा और बाल साहित्य आदि को आधार बना कर भी अनेक पत्रिकाओं की शुरुआत होती है, जैसे स्त्री शिक्षा से सम्बंधित प्रयाग से निकलने वाली पहली पत्रिका सन् 1888 में संपादित भारत- भगिनीको माना जाता है। इसी के साथ सन् 1909 में रामेश्वरी नेहरू द्वारा संपादित 'स्त्री दर्पण', सन 1911 में यशोदा देवी द्वारा संपादित 'स्त्री धर्म शिक्षक', सन 1913 में यशोदा देवी द्वारा संपादित मासिक पत्र 'कन्या सर्वस्व', सन 1913 में ओंकारनाथ वाजपेई द्वारा संपादित 'कन्या मनोरंजन आदि स्त्री शिक्षा से सम्बंधित प्रमुख पत्र-पत्रिकाएँ हैं। इसी क्रम में बाल साहित्य से सम्बंधित प्रयाग की पहली पत्रिका के सन्दर्भ में जिसका उल्लेख मिलता है वह आर्य बाल हितैषी पत्रिका है जिसका प्रकाशन 1902 में इलाहाबाद एवं मुजफ्फरनगर से एक साथ आरंभ हुआ। सन 1916 में शिशु, 1917 में बालसखा और भाषा से सम्बंधित श्यामसुंदर दास द्वारा संपादित 1900 में सरस्वती, कृष्ण कान्त मालवीय द्वारा 1910 में सम्पादित मर्यादा और सन 1913 में गिरिराज कुमार घोष द्वारा संपादित 'सम्मेलन' आदि पत्रिकाओं का हिंदी साहित्य व भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

पत्रकारिता के तीसरे चरण में इलाहाबाद से निकलने वाले जिस समाचार पत्र का उल्लेख सर्वप्रथम मिलता है वह 1921 में पंडित मोतीलाल नेहरू द्वारा शुरू किया गया देशबंधु दैनिक है, जिसके संपादक ठाकुर श्रीनाथ सिंह थे। सरस्वती पत्रिका के बाद इलाहाबाद से निकलने वाली जिस पत्रिका को सबसे ज्यादा ख्याति मिली वह सन 1922 में प्रकाशित चाँद पत्रिका है। इसके प्रथम संपादक रामरिख सहगल थे और आगे चल कर इस पत्रिका का संपादन आचार्य चतुरसेन शास्त्री, मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव, शंकर दयाल श्रीवास्तव, उमेश मिश्र, महादेवी वर्मा आदि ने भी किया। इस पत्रिका में राष्ट्रीयता के साथ-साथ समाज के उन अनछुए पहलुओं को भी स्थान दिया गया जिन पर अभी तक ध्यान नहीं दिया गया था। चाँद का इलाहाबाद से 'वैश्य' अंक, 'अछूत' अंक और 'फांसी' अंक निकले थे और उस समय उन्हें काफी प्रसिद्धि मिली थी, किंतु 1940 में यह पत्रिका भी बंद हो गई।

इसी तरह औपनिवेशिक शासन काल के दौरान इलाहाबाद की पत्र-पत्रिकाओं के तीसरे चरण में भी बहुत से नवीन पत्र-पत्रिकाओं की शुरुआत होती है जिनमें प्रमुख इस प्रकार है - सन 1922 में रघुनंदन झा द्वारा संपादित साप्ताहिक पत्र 'साधवी सर्वस्व', सन 1924 में मासिक पत्र 'मनोरमा', सन 1924 में भवानी प्रसाद गुप्त के संपादकत्व में साप्ताहिक पत्र 'अग्रहरि जीवन' और छोटेलाल केसरवानी के संपादकत्व में 'केसरवानी' पत्र इत्यादि। 'अग्रहरि जीवन' और 'केसरवानी' जातीय पत्रिकाओं को आधार बनाकर प्रकाशित होती थी। इसी क्रम में सन 1927 में रघुनन्दन शर्मा द्वारा संपादित मासिक पत्र 'खिलौना की शुरुआत होती है, यह पत्र बाल साहित्य को केन्द्रित कर प्रकाशित किया जाता था। इनके अगले चरण में सन 1928 में मासिक पत्र 'भारतेंदु प्रकाशित होता है जिसके संपादक ज्योति प्रसाद मिश्र थे किन्तु यह पत्र आर्थिक अभाव के कारण कुछ ही समय में बंद हो गया।

सन 1928 में 'चाँद' के बाद लीडर प्रेस से साप्ताहिक पत्र 'भारत' का संपादन वेंकटेश नारायण तिवारी द्वारा किया गया। यह पत्र शुरुआत में अर्द्ध साप्ताहिक था किंतु कुछ समय बाद प्रसिद्धि बढ़ने के कारण दैनिक हो गया। इस पत्रिका के संपादकों की सूची में सी.वाई.चिंतामणि, डॉक्टर मुकुंद देव शास्त्री, शांतिप्रिय द्विवेदी, नंददुलारे वाजपेयी, इलाचंद्र जोशी इत्यादि रहे।

इसके अतिरिक्त सन 1929 में सच्चिदानंद शर्मा द्वारा संपादित मासिक पत्रिका 'अरुणोदय' का प्रकाशन लेखक मंडल प्रयाग संस्था के द्वारा प्रारंभ किया गया, इसी वर्ष दो और पत्रिकाओं की शुरुआत होती हैं जिनमें यशोदा देवी द्वारा सम्पादित कन्या चिकित्सा एवं द्विजेन्द्र नाथ मित्र द्वारा संपादित 'माया' का नाम उल्लेखनीय है। सन 1930 से सन 1934 के बीच इलाहाबाद से महिलाओं को केन्द्रित कर सहेली पत्रिका का आरम्भ होता है जिसका संपादन कार्य रूप कुमारी वांचू, विजय वर्मा

तथा रामेश्वरी देवी ने किया। इसी वर्ष हिन्दुस्तानी एकेडेमी द्वारा अपनी स्वतंत्र पत्रिका 'हिंदुस्तानी' की शुरुआत होती है और यह पत्रिका तब से लेकर अभी तक निरंतर एकेडमी द्वारा प्रकाशित की जा रही है।

सन 1931 में इलाचंद्र जोशी द्वारा 'विश्ववाणी' पत्रिका का संपादन किया गया। इस पत्रिका के पहले ही अंक पर ब्रिटिश सरकार द्वारा राजद्रोह का आरोप लगाकर इसे बंद कर दिया गया। इसी के साथ सन 1931 में उमाशंकर द्वारा संपादित मासिक पत्रिका विद्या, सन 1933 में बलभद्र प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित हास्य व्यंग्य पत्रिका 'मदारी', सन 1933 में रामनारायण लाल प्रेस, कटरा द्वारा प्रकाशित बाल संसार, सन 1934 में रामकिशोर मनोज द्वारा सम्पादित मध्य-मासिक पत्रिका 'अक्षय भैया', सन 1934 में ज्योतिर्मयी ठाकुर द्वारा सम्पादित कमिलिनी, 1939 में सज्जाद जहीर और शिवदान सिंह चौहान द्वारा सम्पादित 'नया हिंदुस्तान', 1937 में सुमित्रानंदन पंत द्वारा सम्पादित रूपाभ, सन 1939 में श्रीनाथ सिंह द्वारा संपादित 'दीदी', 1939 में सत्यभक्त द्वारा सम्पादित 'सतयुग' इत्यादि का भी प्रकाशन आरम्भ होता है।

सन 1940 में 'नई कहानियाँ' व 'मनोहर कहानियाँ' नामक दो पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू होता है जो मूलतः कहानियों पर केंद्रित हैं। 'नई कहानियाँ' पत्रिका चांद प्रेस से जुड़ी हुई थी, तो वहीं 'मनोहर कहानियाँ' मित्र प्रकाशन से जुड़ी हुई थी। किंतु कुछ वर्ष बाद इन दोनों पत्रिकाओं को भी बंद कर दिया गया। औपनिवेशिक दौर में पत्रकारिता के क्षेत्र में पहली फोटो पत्रिका के प्रकाशन का श्रेय भी इलाहाबाद को ही प्राप्त है। सन 1941 में 'सचित्र संसार' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन नारायण चतुर्वेदी के संपादन में होता है। इस पत्रिका में पहली बार देश विदेश की घटनाओं, प्रसिद्ध इमारतों, मशीनों, हथियारों, कलाकृतियों आदि को चित्र के माध्यम से समझाने का प्रयास किया गया।

इलाहाबाद से सन 1943 में 'नया साहित्य' नामक मासिक पत्रिका का संपादन भी किया गया जिसके संपादक मंडल में यशपाल, शिवदान सिंह चौहान, रामविलास शर्मा, प्रकाश चंद्र गुप्त, राम प्रसाद घड़ियाल 'पहाड़ी' शामिल थे। इस पत्रिका को साहित्य व प्रगतिशील लेखकों के बीच बहुत लोकप्रियता हासिल हुई। इलाहाबाद से सन 1940 के बाद प्रकाशित कुछ महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में 1940 में 'तरुण', 1940 में 'गुलदस्ता', 1940 में 'हिंदी मार्तण्ड', 1940 में 'तितली', 1941 में प्रतीक, 1941 में 'छाया', 1942 में 'चंडी', 1943 में 'सजनी', 1945 में 'भारत जननी', 1947 में 'संगम' 1947 में 'मोहिनी' इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

निष्कर्षत: इलाहाबाद में औपनिवेशिकता के प्रभाव के बावजूद विपरीत परिस्थितियों में भी इस युग के संपादकों ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ब्रिटिश शासन से मुक्ति पर बल देते हुए अनेक सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, राष्ट्रवादी इत्यादि स्वतंत्र पत्र-पत्रिकाओं की शुरुआत की। स्वतंत्रता पूर्व पत्रिका के संदर्भ में डॉक्टर अर्जुन तिवारी लिखते हैं कि- "हिंदी पत्रकारिता के विकास की कहानी संघर्षपूर्ण थी। पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन में पग पग-पग पर कांटे बिछे हुए थे। सरकारी नीति का कुत्सित रूप भयावह था। समय-समय पर प्रकाशित सरकारी रिपोर्टों से ज्ञात होता है कि अनायास ही संपादकों को चेतावनी देना, पत्रों को जब्त कर लेना, प्रेस को तहस-नहस कर देना उच्चाधिकारियों की हॉबी थी।"

सन्दर्भ

1. श्रीवास्तव, शालिग्राम, प्रयाग प्रदीप, हिन्दुस्तानी, एकेडमी, इलाहाबाद, 1920, प्रथम संस्करण
2. रंजन, गोपाल (सम्पादक), सृजन सरोकार, अंक-2, जनवरी-मार्च 2019
3. चतुर्वेदी, हेरम्ब, इलाहाबाद में पत्रकारिता का विकास: एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण 1865-1947, link- http://pahleebar.blogspot.com/2016/04/blog-post_29.html
4. पाठक, समीर कुमार (संपादक), बालकृष्ण भट्ट रचनावली-भाग 1, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्युटर्स
5. तिवारी, डॉ. अर्जुन, स्वतंत्रता आंदोलन और हिंदी पत्रकारिता, वाराणसी विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1982
6. हिन्दुस्तानी (त्रैमासिक पत्रिका), अंक-1, जनवरी-मार्च 2019, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद
7. गहलौत, भुवनेश्वर सिंह, इलाहाबाद: वे दिन वे लोग, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000 ई.
8. मिश्र, विभूति (संपादक), हिंदी की विकास यात्रा और हिंदी सेवी संस्थाएँ, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग

शोधार्थी , हिंदी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय
सूर्यमणिनगर त्रिपुरा, पिन-799022
ईमेल Poojadelhi29@gmail.com मो. 8742985525

भारतीय ज्ञान परंपरा और बनारस का सांस्कृतिक महत्त्व

दिनेश अहिरवार

'काशी बनारस' का वर्तमान नाम 'वाराणसी' को लेकर ऐतिहासिक, धार्मिक और पौराणिक ग्रंथों के आधार पर सर्व मान्यता है कि 'वरुणा' और 'असी' नाम की दो नदियों के बीच में होने के कारण इसका नाम 'वाराणसी' पड़ा । वर्तमान नाम वाराणसी के सन्दर्भ में बौद्ध साहित्य में कई नामों का उल्लेख मिलता है जो कि काशी बनारस की ऐतिहासिक परंपरा को समृद्ध करते हैं । इसके सन्दर्भ में सुनील कुमार झा अपने वेब पोर्टल 'काशी वैभव' में लिखते हैं कि "उदय जातक कथा में इसका नाम सुरुन्धन (सुरक्षित), सूतसोम जातक में सुदर्शन (दर्शनीय), सोमदंड जातक में ब्रम्हवर्धन, खंडहाल जातक में पुष्पवती, युवंजय जातक में रम्म नगर (सुन्दर नगर) (जा. ४/११९), शंख जातक में मोलिनो (मुकुलिनी) (जा. ४/१५) मिलता है। इसे कासिनगर और कासिपुर के नाम से भी जानते थे (जातक, ५/५४, ६/१६५ धम्मपद अट्ठकथा, १/६७) । अशोक के समय इसकी राजधानी का नाम पोतलि था (जा. ३/३९) । यह कहना कठिन है कि ये अलग-अलग उपनगरों के नाम हैं अथवा वाराणसी के ही भिन्न-भिन्न नाम हैं।" इससे यह स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त सभी नाम वर्तमान वाराणसी के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं ।

भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वाधिक प्राचीन एवं समृद्धशाली संस्कृति है। विश्व की विभिन्न संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति का हमेशा विशिष्ट स्थान रहा है। अन्य देशों की संस्कृतियाँ तो समय की धारा के साथ-साथ विघटित होती रही हैं किंतु भारत की संस्कृति व सभ्यता आदिकाल से ही अपने परंपरागत अस्तित्व के साथ प्रवाहमान बनी हुई है। भारतीय संस्कृति और ज्ञान परंपरा का सर्वाधिक व्यवस्थित रूप हमें वैदिक काल में देखने को मिलता है । वेद हिन्दू धर्म में ही नहीं बल्कि विश्व के सबसे पवित्र और प्राचीनतम ग्रंथ माने जाते हैं । भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही ज्ञान की उदात्तपूर्ण व समन्वयवादी दृष्टिकोण का समावेश दृष्टिगोचर होता है । भारतीय संस्कृति में 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना और जीवन के प्रति अनुराग व आध्यात्मिक प्रवृत्ति का अद्भुत समन्वय है । भारतीय ज्ञान परम्परा की एक अविच्छिन्न धारा रही है जो भारतीय समाज को हमेशा एक नई दिशा प्रदान करती आई है । वेद और उपनिषद भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल आधार हैं उनसे पृथक ज्ञान की कल्पना करना असंगत होगा । वैदिक कालीन ज्ञान परंपरा के संदर्भ में श्यामाचरण दुबे लिखते हैं कि "भारतीय परंपरा को वेद, पुराण और शास्त्रों से जोड़ने की प्रवृत्ति सशक्त रही है और हम आज भी उसके सम्मोहन से मुक्त नहीं हो सके हैं । इन महान ग्रंथों को हम मानव सभ्यता की उल्लेखनीय उपलब्धियाँ मानते हैं, जो वे निःसंदेह हैं ।"1

जब हम भारतीय संस्कृति और ज्ञान परम्पराओं के बारे में अध्ययन करेंगे तो किसी एक समुदाय विशेष की संस्कृति और परंपरा का विश्लेषण करना तर्कसंगत नहीं होगा बल्कि सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति के अध्ययन के लिए हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई, बौद्ध, जैन आदि सभी धर्मों की संस्कृतियों को संजीदगी के साथ अध्ययन करना अधिक समीचीन होगा । तभी हम भारतीय संस्कृति और ज्ञान परम्पराओं का विस्तार से अध्ययन कर सकेंगे । परम्पराओं का एक क्रमिक विकास होता है जिसके आभाव में सभ्यता, संस्कृति के ह्रास होने का खतरा बढ़ जाता है । भारतीय ज्ञान परंपरा और संस्कृति को बचाये रखने में भारत के अनेक संत कवियों और विचारकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । परंपरा और संस्कृति एक साथ चलने वाले मानव सभ्यता के अभिन्न अंग हैं जो हमें एक विशिष्ट पहचान और अस्तित्त्व प्रदान करते हैं । इसके सन्दर्भ में 'समय और संस्कृति' पुस्तक में श्यामाचरण दुबे लिखते हैं कि "परंपरा और उससे अनुप्राणित संस्कृति मानव के सामूहिक अस्तित्व का अविभाज्य अंग होती हैं । परंपरा से एकाएक कट जाना धुरीहीनता की भावना को जन्म देता है । व्यक्ति और उसके समुदाय को परंपरा से एक विशेष पहचान मिलती है ।"2 इस वक्तव्य के आलोक में देखा

जाये तो हमारी भारतीय ज्ञान परम्पराएँ और संस्कृति मानव सभ्यता के विकास में एक अहम् भूमिका निभाती आई हैं जो अन्य परम्पराओं और संस्कृतियों से पृथक न होकर मनुष्यता को जोड़ने का सार्थक व महत्त्वपूर्ण कार्य करती हैं।

'सर्व विद्या और ज्ञान की राजधानी' बनारस भारतीय ज्ञान परम्परा और शिक्षा का प्राचीनतम केन्द्र है। बनारस को ज्ञान के क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान बनाने में यहाँ के विश्व प्रसिद्ध विद्वानों, विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों, विद्यालयों, मदरसों, अध्यात्म, कला, प्राचीन महाकाव्य ग्रंथों, पत्र-पत्रिकाओं, प्राचीन आयुर्वेदिक चिकत्सकीय ज्ञान और यहाँ की अविच्छिन्न प्राचीनतम गुरु शिष्य परंपरा आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान है। राबर्ट रेडफील्ड और मिल्टन सिंगर ने 'महान' और 'लघु' परम्पराओं की अवधारणाएँ विकसित की हैं और उनके अंतः संबंधों की सांस्कृतिक प्रक्रियाओं को समझने का प्रयास किया है। उन्होंने प्राचीन भारत के मनीषियों ने जीवन मूल्यों और आदर्श समाज-व्यवस्था की जो परिकल्पना की, उसे ही महान परंपरा का प्रमुख आधार माना है। भारतीय ज्ञान परंपरा और संस्कृति के सन्दर्भ में श्यामा चरण दुबे अपने लेख 'परंपरा की परिधि' में लिखते हैं कि "परंपरा संस्कृति का वह भाग है जिसमें भूतकाल से वर्तमान और वर्तमान से भविष्य तक एक निरंतरता बनी रहती है। यह जरूरी नहीं है कि परंपरा जीवन के हर क्षेत्र में समान रूप से प्रभावी हो।"3 अर्थात परंपरा मनुष्य जीवन में हमेशा प्रवहमान बनी रहती है और आदमी को एक बेहतर मनुष्य बनाने में उसकी ज्ञान परंपरा और संस्कृति का आमूलचूल योगदान रहता है।

'काशी बनारस' का वर्तमान नाम 'वाराणसी' को लेकर ऐतिहासिक, धार्मिक और पौराणिक ग्रंथों के आधार पर सर्व मान्यता है कि 'वरुणा' और 'असी' नाम की दो नदियों के बीच में होने के कारण इसका नाम 'वाराणसी' पड़ा। वर्तमान नाम वाराणसी के सन्दर्भ में बौद्ध साहित्य में कई नामों का उल्लेख मिलता है जो कि काशी बनारस की ऐतिहासिक परंपरा को समृद्ध करते हैं। इसके सन्दर्भ में सुनील कुमार झा अपने वेब पोर्टल 'काशी वैभव' में लिखते हैं कि "उदय जातक कथा में इसका नाम सुरुन्धन (सुरक्षित), सूतसोम जातक में सुदर्शन (दर्शनीय), सोमदंड जातक में ब्रम्हवर्धन, खंडहाल जातक में पुष्पवती, युवंजय जातक में रम्म नगर (सुन्दर नगर) (जा. ४/११९), शंख जातक में मोलिनो (मुकुलिनी) (जा. ४/१५) मिलता है। इसे कासिनगर और कासिपुर के नाम से भी जानते थे (जातक, ५/५४, ६/१६५ धम्मपद अट्ठकथा, १/६७)। अशोक के समय इसकी राजधानी का नाम पोतलि था (जा. ३/३९)। यह कहना कठिन है कि ये अलग-अलग उपनगरों के नाम है अथवा वाराणसी के ही भिन्न-भिन्न नाम हैं।"4 इससे यह स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त सभी नाम वर्तमान वाराणसी के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं।

भारत की प्राचीन कला और संस्कृति को जानने समझने के लिए बनारस के प्राचीन मंदिरों की मूर्तियाँ, प्राचीन दुर्ग और उनकी दीवारों पर चित्रकला की कारीगरी, हिंदू, बौद्ध और जैन आदि धर्मों की ज्ञान परंपरा और समृद्धशाली संस्कृति के प्रतीक के रूप में देखे जा सकते हैं, जो बनारस के सांस्कृतिक महत्त्व को अधिक मजबूत करते हैं। प्रसिद्ध अमरीकी लेखक मार्क ट्वेन ने माना है कि 'बनारस इतिहास से भी पुरातन है, परंपराओं से पुराना है, किंवदंतियों (लीजेन्ड्स) से भी प्राचीन है और जब इन सबको एकत्र कर दें, तो उस संग्रह से भी दोगुना प्राचीन है।' भारत ही नहीं बल्कि विश्वविख्यात कई आचार्य, दार्शनिक, चिंतक, कवि, लेखक, संगीतज्ञ वाराणसी में रहे हैं, जिनमें कबीर, वल्लभाचार्य, तुलसीदास, रैदास, स्वामी रामानंद, तैलंग स्वामी, शिवानन्द गोस्वामी, मुंशी प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पंडित रविशंकर, गिरिजा देवी, पंडित हरि प्रसाद चौरसिया एवं उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ आदि प्रमुख हैं। साहित्य और समाज के प्रिय कवि गोस्वामी तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ रामचरितमानस की रचना यहीं की और गौतम बुद्ध ने सारनाथ में अपना प्रथम प्रवचन दिया था। एक तरह से देखा जाये तो हम पाते हैं कि बनारस हिन्दू और बौद्ध धर्म के साथ जैन आदि संस्कृतियों का एक समागम स्थल है। यहाँ एक साथ कई-कई संस्कृतियों का समावेश देखने को मिलता है। आधुनिक काल में बनारस ज्ञान परंपरा के केन्द्रों में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ हायर टिबेटियन स्टडीज़ ये चार प्रसिद्ध विश्वविद्यालय बनारस में स्थित हैं। जो भारतीय ज्ञान परंपरा और बनारस के सांस्कृतिक महत्त्व को जीवन्तता प्रदान किये हुए हैं।

'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात विद्या तमाम बंधनों से मुक्त करती है और मनुष्य के लिए कल्याणकारी नये मार्ग प्रशस्त करती है। उद्भावना पत्रिका के संपादकीय 'भारतीय चिंतन की प्राचीन परंपरा और आज के सवाल' में डॉ. राजकुमार शर्मा जी लिखते हैं कि "चिंतन की प्राचीन भारतीय परंपरा 'उपनिषद्' अर्थात गुरु के पास बैठकर अज्ञान

की स्थितियों को नष्ट कर ज्ञान को निरंतर संवाद द्वारा पाने की परंपरा रही है। ज्ञान का यह स्वरुप तर्क मूलक, मूल्यनिष्ठ और आचरण सापेक्ष है; जिज्ञासा मूलक है और सामाजिक उद्देश्यों से बंधा हुआ है। चिंतन का लक्ष्य यहाँ मुक्तिकामी है। मुक्ति का तात्पर्य यहाँ रूढ़ अर्थों में आध्यात्मिक मुक्ति नहीं है बल्कि सब प्रकार के बंधनों से मुक्ति है।"5 ज्ञान हमारे चक्षुओं को खोलकर वास्तविकता से साक्षात्कार कराता है। किसी भी व्यक्ति और समाज की जड़ें उसके अतीत में होती हैं, भले ही वह वर्तमान में जीता है लेकिन भविष्य की चिंताएँ भी विद्यमान रहती हैं। भारतीय ज्ञान परम्पराएँ और अध्यात्मिक शक्तियाँ इतनी मजबूत, कुशल और प्रभावी हैं कि वर्तमान और भविष्य की चिंताओं से हमेशा आगाह कराती रहती हैं। जो मानव कल्याण के लिए हितकारी साबित होती हैं। किसी भी समाज की ज्ञान परम्पराएँ जब विशृंखलित होने लगती हैं तब उस समाज की बौद्धिकता का पतन होने लगता है और वह समाज दुर्गति के पथ पर अग्रसर होने लगता है। इसलिए हमें अपनी भारतीय संस्कृति की ज्ञान परम्पराओं को सहेजने और उनके प्रचार-प्रसार व विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देने की जरूरत है।

बनारस के सांस्कृतिक महत्त्व को उद्घाटित करने वाले प्राचीन दुर्ग स्थलों, मंदिरों, गंगा के घाटों आदि की प्रमुख भूमिका रही है। प्राचीन मंदिरों और महत्त्वपूर्ण स्थलों में विश्वनाथ मन्दिर, अन्नपूर्णा मन्दिर, काल भैरव मन्दिर, तुलसी मानस मन्दिर, संकटमोचन मन्दिर, दुर्गा दुर्गाकुण्ड, भारत माता मन्दिर आदि हिन्दू धर्म की आस्था के केंद्र हैं। गंगा के प्रसिद्ध घाटों में अस्सी घाट, दशाश्वमेघ घाट, मणिकर्णिका घाट, पंचगंगा घाट, वरुणासंगम घाट, तुलसी घाट, शिवाला घाट, हरिश्चंद्र घाट, राज घाट और सारनाथ में बौद्ध धर्म से सम्बंधित ज्ञान के भंडार आदि। भारतीय ज्ञान परंपरा, अध्यात्म और बनारस के सांस्कृतिक महत्त्व के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उत्तर प्रदेश भारत का एक प्राचीन राज्य है जो कि धर्म और आस्था के प्रमुख केन्द्रों में से एक है। किसी भी राज्य या देश को अपनी संस्कृति व गौरवशाली परंपराओं पर गर्व होता है। आज देखा जाये तो प्राचीनकाल से चली आ रही समृद्धशाली भारतीय संस्कृति, धार्मिक व पुरातन ज्ञान परंपराओं पर आधुनिक काल में उपजे वैश्वीकरण और आधुनिकतावादी पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव को हम नकार नहीं सकते हैं।

आधुनिकीकरण और पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय संस्कृति को काफी हद तक प्रभावित किया है लेकिन हमारी जड़ें इतनी मजबूत हैं कि हमारे जीवन मूल्यों और आदर्शों को कोई भी संस्कृति प्रभावित नहीं कर सकती है। भारतीय ज्ञान परंपरा हजारों वर्षों से चली आ रही एक समृद्धशाली परंपरा है। ज्ञान की इस परंपरा में प्राचीनकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल की वैज्ञानिक पद्धतियों का अपार भंडार है जिससे आज हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। कला, धर्म, संस्कृति, इतिहास, भूगोल, पुरातत्त्व और पौराणिक कथाओं आदि के समायोजन से वाराणसी भारतीय संस्कृति का एक महान् केंद्र बनाता है। इसलिए बनारस को भारत की सांस्कृतिक राजधानी भी कहा जाता है। बनारस भारतीय संस्कृति का प्रमुख केंद्र है, जहाँ पर एक साथ कई संस्कृतियों ने जन्म लिया है। यहाँ की भाषा में जो मिठास और आत्मीयता है, वह अद्भुत है। यहाँ के लोगों में ईश्वर, धर्म आदि पर आस्था है इसलिए बनारस को धार्मिक आस्था का केंद्र माना जाता है। हालांकि प्रमुख रूप से हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म को मानने वालों की संख्या अधिक है, फिर भी वाराणसी विभिन्न जाति, धर्म, आस्था और विश्वासों की नगरी है, जिसमें बनारस की एक समृद्धशाली सांस्कृतिक परंपरा मौजूद है जो भारतीय समाज में एक सांस्कृतिक महत्त्व रखती है।

सन्दर्भ सूची :

1. श्यामा चरण दुबे, समय और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2017, पृष्ठ – 24
2. वही, पृष्ठ – 17
3. वही, पृष्ठ – 14
4. http://ignca.gov.in/coilnet/kv_0001.htm
5. उद्भावना पत्रिका, संपादक – अजेय कुमार, गाजियाबाद - दिल्ली, अंक - 84, जुलाई-अगस्त 2009, पृष्ठ – 15
6. अन्य सहायक स्रोत :
7. https://varanasi.nic.in, संस्कृति विभाग, वाराणसी, 10 सितम्बर 2021
8. https://nnvns.org.in, वाराणसी नगर निगम, 10 सितम्बर 2021
9. https://www.bhartiyadharohar.com, 'भारतीय धरोहर' वेब पोर्टल,10 सितम्बर 2021
10. https://kashikatha.com, 10 सितम्बर 2021

पी-एच.डी. - शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ. प्र.) 221005
ईमेल : dineshsagarbhu19@gmail.com

शंकरदेव का 'कीर्तन घोषा'

डॉ. अनुशब्द

इस संदर्भ में शंकरदेव का 'कीर्तन-घोषा' सुधिजनों से विशेष ध्यान एवं उसपर गंभीर चर्चा की माँग करता है। 'कीर्तन' नवधा भक्ति की प्रमुख शैलियों में से एक है। भक्तकवियों ने इसे भक्ति को एक प्रभावशाली माध्यम के रूप में अपनाया है। यह आराध्य देव की भावात्मक और क्रियात्मक सेवाओं के अंग के रूप में स्वीकृत है। मध्यकाल में 'कीर्तन' विधा इतनी लोकप्रिय थी कि कीर्तनकारों का उल्लेख 'आईने-अकबरी' में मिलता है। वहाँ सत्रह प्रकार के गायकों में 'कीर्तनिया' को भी एक प्रकार का गायक कहा गया है। उसके अनुसार कीर्तनिया ब्राह्मण होते थे जो प्राचीन वाद्यों का प्रयोग करते थे एवं सुंदर बालकों को स्त्रीवेश में सुसज्जित कर कृष्ण-स्तुति और उनकी लीलाओं का गायन कराते थे। शंकरदेव ने अपने लंबे तीर्थाटन के दौरान देश के कोने-कोने में भ्रमण कर कीर्तन के विभिन्न प्रचलित रूपों को आत्मसात किया एवं भक्ति के प्रचार के लिए तथा अपने जन कल्याणकारी उपदेशों और संदेशों को प्रेषित करने के लिए अन्यतम साधन के रूप में अंगीकार किया। 'कीर्तन-घोषा' उनके कीर्तनों का ही विशाल संग्रह है।

जिस प्रकार उत्तर भारत के लोकमानस में गोस्वामी तुलसीदास की पैठ है ठीक उसी प्रकार पूर्वोत्तर भारत में, विशेष रूप से असम के जनमानस में महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव रचे-बसे हैं। शंकरदेव(1449-1568) असमिया समाज के साहित्यिक-सांस्कृतिक आइकन हैं। इनके शिष्य माधवदेव इनके विषय में कहते हैं कि- "जग-जन तारण देव नारायण, शंकर ताकेरि अंश।" अर्थात शंकरदेव इस भूमंडल के समस्त प्राणियों के तारणहार नारायण के अंश हैं। शंकरदेव का समग्र साहित्य और उसमें निहित उदारवादी मानवचिंतन उनके भारतबोध एवं राष्ट्रवादी दर्शन को दर्शाता है। प्रमाणस्वरूप शंकरदेव की इन बहुश्रुत और बहु-उद्धृत पंक्तियों को देखा जा सकता है-

"कुकुर चांडाल गर्दाभरो आत्माराम/जानिया सबाको परि करिबा प्रणाम"

अर्थात मानव और मानवेतर प्राणियों, सभी की आत्मा में एक ही परमात्मा का वास है अतः सभी प्रणम्य हैं। सभी के प्रति स्नेह और सम्मान का भाव सम भाव से अपेक्षित है।

अपनी 'स्वर्गादपि गरीयसी' जन्मभूमि, भारतवर्ष के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए शंकरदेव कहते हैं कि-

"धन्य-धन्य कलिकाल/धन्य नर तनुभाल/धन्य-धन्य भारतबरिषे।"

यानि एक तो इस कलियुग में मानव-रूप में जन्म लेना स्वयं में अतिशय सौभाग्य की बात है और उसमें भी भारतभूमि की नागरिकता प्राप्त करना किसी पुण्यसिद्धि से कम नहीं है। इसीलिए वे स्वयं को भाग्यशाली मानते हैं तथा अपनी जन्मभूमि के प्रति गर्व और निष्ठा के भाव को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं-

"जानिया सबे एरा भाषभूष/भाग्ये से भारते भैला मानुष।"

यह तो रही शंकरदेव के व्यापक सोच और संवेदना के विस्तृत फलक की बात अब यदि हम उनके साहित्यिक अवदान और उसके वैविध्य पर ध्यानाकृष्ट करें तो यह ज्ञात होता है कि भक्ति आंदोलन का अखिल भारतीय स्वरूप शंकरदेव और उनके सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अवदानों को शामिल करके ही निर्मित होता है। शंकरदेव बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी हैं। असमिया समाज में उनकी उपस्थिति एक श्रेष्ठ समाज सुधारक, कुशल उपदेशक, सिद्ध पथ प्रदर्शक एवं निर्देशक, गंभीर चिंतक, प्रतिष्ठित साहित्यकार, विलक्षण संगीतकार एवं नाटककार की है। उनके द्वारा प्रवर्तित नव वैष्णववाद और खासकर 'एक शरणिया नाम धर्म' समूचे भक्ति साहित्य में अनूठा है। 'एक शरणिया नाम धर्म' के द्वारा शंकरदेव ने अनेक आचार-विचार-उच्चार के आधार पर विभक्त तत्कालीन असमिया समाज को संगठित किया तथा 'एक देव एक सेव एके बिना नाइ केव' का संदेश देकर बहुदेववादी भारतीय समाज में एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा की जो धर्म के नाम पर प्रचलित बाह्याचारों, बाह्याडम्बरों, पाखंडों एवं कुसंस्कारों का प्रतिपक्ष भी साबित हुआ।

शंकरदेव का रचना संसार वस्तुगत और शिल्पगत दृष्टि से काफी वैविध्यपूर्ण है। उसमें एक से बढ़कर एक नाटक(अंकिया नाट) भी हैं, बरगीत भी हैं, कीर्तन, हरिकथा, लीला, संवाद और गीति भी हैं। असमिया साहित्य अपनी समृद्धि के लिए शंकरदेव की इन अप्रतिम रचनाओं का ऋणी है और सदैव उपकृत भी रहेगा।

इस संदर्भ में शंकरदेव का 'कीर्तन-घोषा' सुधिजनों से विशेष ध्यान एवं उसपर गंभीर चर्चा की माँग करता है। 'कीर्तन' नवधा भक्ति की प्रमुख शैलियों में से एक है। भक्त कवियों ने इसे भक्ति की एक प्रभावशाली माध्यम के रूप में अपनाया है। यह आराध्य देव के भावात्मक और क्रियात्मक सेवाओं के अंग के रूप में स्वीकृत है। मध्यकाल में 'कीर्तन' विधा इतनी लोकप्रिय थी कि कीर्तनकारों का उल्लेख 'आईने-अकबरी' में मिलता है। वहाँ सत्रह प्रकार के गायकों में 'कीर्तनिया' को भी एक प्रकार का गायक कहा गया है। उसके अनुसार कीर्तनिया ब्राह्मण होते थे जो प्राचीन वाद्यों का प्रयोग करते थे एवं सुंदर बालकों को स्त्रीवेश में सुसज्जित कर कृष्ण-स्तुति और उनकी लीलाओं का गायन कराते थे। शंकरदेव ने अपने लंबे तीर्थाटन के दौरान देश के कोने-कोने में भ्रमण कर कीर्तन के विभिन्न प्रचलित रूपों को आत्मसात किया एवं भक्ति के प्रचार के लिए तथा अपने जन कल्याणकारी उपदेशों और संदेशों को प्रेषित करने के लिए अन्यतम साधन के रूप में अंगीकार किया।'कीर्तन-घोषा' उनके कीर्तनों का ही विशाल संग्रह है।

कीर्तन असमिया जातीय जीवन की पहचान है, असम के सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की विरासत है। कीर्तन यद्यपि भागवत के मूलमर्म से आलोकित है फिर भी इसमें मौलिकता का स्वर विद्यमान है। शंकरदेव ने असम की प्राकृतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक स्थिति को बखूबी चित्रित किया है। असम की प्राकृतिक छटा के रमणीय चित्र, फल-फूल, पत्ते, झरना, नद-नदी के नाम स्थान- स्थान पर 'कीर्तन घोषा' में मिलते हैं। कहीं-कहीं असमिया सामाजिक व्यवहार एवं रीति रिवाज को भी उकेरा गया है। कीर्तन में भक्ति की छटा तो है ही साथ में रौद्र, भयानक, अदभुत, शांत, शृंगार, वीर, हास्य आदि रसों का भी समावेश हुआ है। नव रसों की रस गंगा में भक्ति की अभिव्यंजना है। यही प्रवाहमान रस-लोहित ने गेयत्व गुण से भी कीर्तन को सुसज्जित किया है। 'कीर्तन घोषा' के सुमधुर राग असम के नामघर, गोसाई घर, कीर्तन घर आदि में गूंजते रहते हैं। लय,सुर और छन्दोबद्धता का संगम भाव कीर्तन में आद्यांत दिखाई पड़ता है। दुलारी, दशाक्षरी, पद, छवि, अष्टाक्षरी आदि छन्दसज्जा 'कीर्तन घोषा'में भावानुकूलता लाती है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, रूपक आदि अलंकार कीर्तन के भाव माधुर्य को द्विगुणित कर देते हैं। वर्तमान विसंगत,पतनमुखी समाज के लिए 'कीर्तन घोषा' अत्यंत आवश्यक है। कीर्तन में व्यक्त नैतिक संदेश आज की युवा पीढ़ी का मार्गदर्शन करने में तो सक्षम हैं ही उन्हें निराशा, हताशा आदि से उबारकर नयी सकारात्मक राह दिखाने में भी समर्थ हैं। इस सन्दर्भ में 'कीर्तन घोषा' में व्यक्त संदेशों को मानव जाति के लिए किसी अदृश्य सत्ता के सहारा के रूप में देखा जा सकता है। कीर्तन असमिया जनजीवन ही नहीं बल्कि समूचे भारतीय परिवेश में नयी अनुभूति और प्रेरणा का संचार करता है।

कृष्णर किंकरे भणे/शुनिओक सर्वजने/अंतके पाइलेक परा/राम हरि बुलि तरा। -प्रहलादचरित

(अर्थात शंकरदेव अपने को कृष्ण किंकर अर्थात भगवान कृष्ण का दास घोषित कर भक्त समाज को संबोधित करते हुए कहते हैं कि अंतिम समय निकट है। अतः राम हरि के नाम स्मरण से ही मुक्ति सम्भव है।)

'कीर्तन घोषा' में भगवान के सगुण एवं साकार रूप की व्यंजना है। कृष्ण के बिना इस कलिकाल का कोई पारावार नहीं है। इसकी स्वीकारोक्ति कीर्तन में है। कृष्ण के स्मरण से ही पाखण्डी-पापी मनुष्य के पाप नष्ट होते हैं।

हुन सर्वजन एरि आन मन/स्थिर करि एक मति/कृष्ण नाम बिनाइटो कलि युगे

नाहि नाहि आन गति ।।

जानिया कृष्णर चरणे शरण/पशियो सुदृढ़ मति/बोला राम राम छाड़ि आन काम/लभिबा परम गति ।। -देवकीर पुत्र आनयन

(शंकरदेव कहते हैं कि हे भक्त समाज! अपने मन को स्थिरप्रज्ञ बनाकर निर्मल और विवेकपूर्ण करो। कृष्ण के बिना इस कलयुग में और कोई गति नहीं है, मुक्ति का कोई आधार नहीं है। इसलिए इस गूढ़ तत्व को भलीभाँति समझकर भगवान कृष्ण के चरण कमलों में ही आत्मसमर्पण कर दो। सभी कामों को छोड़कर राम-राम की ध्वनि हृदय में स्पंदित करो, तभी परम गति की प्राप्ति होगी।)

कीर्तन में भगवान के अद्वैत रूप की कल्पना है। भक्त उसी अद्वैत रूप के ब्रह्मत्व में सर्वस्व समर्पित कर मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। यही चैतन्य है और इसमें ही जन्म-जन्मातर की पावन शांति है। शंकरदेव लिखते हैं–

मायाते से देखिय विविध परिच्छेद/स्वरूपत तोम्हारे नाहिके किछु भेद

चैतन्यस्वरूपे व्यापि एक निरंजन/तोम्हाकबुलिबे द्वेत कौन जन ?

-उरेषा वर्णन

(यानि माया और अविद्या के कारण ही ईश्वर की सत्ता में द्वैत दिखाई देता है। लेकिन भगवान की सत्ता अद्वितीय है।)

कीर्तन असमिया साहित्य की अपूर्व निधि है। महापुरुष शंकरदेव का कीर्तन असम की ही अमरकृति नहीं है, भारतीय भक्ति आन्दोलन की

प्रगतिशील धारा की अमर गाथा है। इसका मूल 'श्रीमद भागवत' है लेकिन यह उसका अनुवाद मात्र नहीं है। कीर्तन में केवल भक्ति का अजस्र स्त्रोत ही नहीं है बल्कि इसमें मानुष प्रेम की अद्वितीय अभिव्यजंना भी है। साथ ही इसमें मानवतावाद का अप्रतिम स्वर तो है ही राष्ट्रीयता की भावना से भी यह ओतप्रोत है। कीर्तन विश्वजनीन कल्याणी स्वर को भी बुलन्द करती है और उसके प्रसार की पैरवी करती है। इसमें भागवत पुराण की कथावस्तु को आधार भूमि के रूप में स्वीकार किया गया है। 'कीर्तन घोषा' की विषयवस्तु का यदि सिंहावलोकन करें तो उसमें चतुविशति अवतारवर्णन, नाम अपराध, पाखण्ड मर्दन , ध्यान वर्णन, अजामिल उपाख्यान, प्रह्लाद चरित, गजेन्द्रोपाख्यान, हरमोहन, बलिछलन, शिशुलीला, रास क्रीड़ा, कंस वध, गोपी-उद्धव संवाद, कुंजी वांछापूरण, अक्रूर वांछापूरण, जरासंघ युद्ध, कालयवन वध, मुचकुंद स्तुति, स्यामंतक हरण, नारद कृष्ण दर्शन, विप्र पुत्र आनयन, दामोदर विपाख्यान, देवकी पुत्र आनयन, वेदस्तुति, कृष्ण लीला माला, श्रीकृष्ण बैकुंठ प्रयाण, उरेषा वर्णन, भागवत तात्पर्य प्रमुखतः परिलक्षित होते हैं।

शंकरदेव ने 'कीर्तन घोषा'में कहीं-कहीं भागवत के मूल को हू-ब-हू ग्रहण किया है, कहीं-कहीं मूल अंश का सार ग्रहण किया है तो कहीं-कहीं मूल से अलग मौलिक सृजन भी किया है। शंकरदेव ने कीर्तन में ऐसे प्रसगों को उतारा है, जो भागवत के मूल अंश से अलग हैं। इस पद में उनकी मौलिकता का प्रमाण मिलता है–

सुखे थाकि निज थाने/महाकाल अवसाने/मोर शरीरते याइबा लीन
एहिबुलि वनमाली/शंकरक आंकोवालि/समज्याक निलंत सादरि।
(कीर्तन घोषा, हरमोहन, 83)

(शंकरदेव ने ईश्वरीय सत्ता को वंदनीय सिद्ध किया है। उनका कहना है कि मनुष्य जीवनपर्यंत सुख-दुःख की आपाधापी में जीता है और अंतकाल में कृष्ण रूपी वनमाली में ही जीव विलीन हो जाता है। शंकरदेव भी भगवत कृपा की अभिलाषा रखते हैं और उसी अज्ञात-अद्वैत सत्ता में स्वयं को विलयित कर एकाकार,एकरूप हो जाने का भाव व्यक्त करते हैं।)

असमिया परम्परा के एकशरण भगवती धर्म के मूल चार स्तंभों दशम, घोषा, रत्नावली में कीर्तन भी महत्वपूर्ण है । डॉ. विरिंचि कुमार बरुवा ने लिखा है– Shankardeva His poetical works–"From the methodical arrangement of the chapters it may be said that though the book was written at different periods, the entire work however was planned. (Aspects of Early Assamese literature, Ed. By Banikanta Kakati, P. 75)

कीर्तन में भक्ति का साधारणीकृत रूप है। सांसारिक मनुष्य के त्रितापक्लिष्ट शरीर को ज्ञान और भक्ति की सुधा पिलाने वाली अमृत गंगा है कीर्तन। विष्णु भगवान की महिमा और उनकी कृपा दृष्टि का परिचय हमें शंकरदेव के 'कीर्तन घोषा'में मिलता है। इस भगवत भक्ति में श्रवण कीर्तन का संयोग है। नवधा भक्ति में कीर्तन को महत्वपूर्ण माना गया है –

कीर्तन की भक्ति भावना दास्यभाव से परिपूर्ण है। शंकरदेव ने जप, तप, तीर्थ, दान, यज्ञादि सभी से भगवत श्रवण-कीर्तन को श्रेष्ठ ठहराया है। केवल हरि भक्ति से ही सभी कर्मों का फल मिल सकता है।

यत महायज्ञ, दान तप जप तीर्थ स्नान/केहो नोहे आक सरि/डाकि बोला हरि हरि। (जरासंधर युद्ध)

(यज्ञ, दान, तप, जप, तीर्थ, स्नान से भक्त समाज का कल्याण नहीं होगा, केवल हरि नाम का स्मरण ही मुक्ति का माध्यम है, मोक्ष का द्वार है।)

शंकरदेव के अनुसार भक्ति के लिए शास्त्रों का अध्ययन मूल्यवान नहीं है, और न ही उसके लिए पूजा-पाठ महत्वपूर्ण है बल्कि जिस समय संसार की माया से मुक्त होकर भगवत कृपा के प्रति भक्त मनःसाधना आरंभ कर देगा, तभी मोक्ष संभव है। वह लिखते हैं–

आउर वेदागम विस्तर शास्त्रः/नहि किछो प्रयोजन।
(अजामिल उपाख्यान)

(वेद-स्तुति, वेद-पाठ, शास्त्र-स्मरण का प्रयोजन नहीं है, केवल हरि नाम ही भक्तों को भव सागर पार कराता है।)

त्रिभुवन के स्वामी और भक्तों के बीच अहेतुक तथा अलौकिक संबंध है। आत्मा से परमात्मा का मिलन ही मोक्ष है। जहाँ हरि का श्रवण-कीर्तन हो, वहीं बैकुण्ठ है और वहीं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यानि पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति है। आत्मा-परमात्मा के एकात्म स्वरूप का वर्णन 'कीर्तन घोषा'इस प्रकार मिलता है-

"भकत जनेसे मोर हृदय/मयो भकतर दिया निश्चय/मोई बिने भकते नेदेखे आन/भकत बिने मोर नाहि ध्यान ।"

(पाखंड मर्दन)

(शंकरदेव कहते हैं कि भगवान में भक्तों का वास है और भक्तों के हृदय में भगवान विद्यमान हैं। भगवान के बिना भक्तों में दूसरी सत्ता नहीं है और भगवान भी सिर्फ भक्तों का ही ध्यान करते हैं।)

शंकरदेव के साहित्य का सौष्ठव केवल असम तक ही सीमित न रहकर समूचे भारत के अखिल स्वरूप को मुखरित करता है। शंकरदेव के अनुसार भारतवर्ष में मानव-जन्म प्राप्त होना, अनेक पुण्यों के बाद ही सम्भव होता है। वह कहते हैं-

जानिया सबे एरा भाषभूष/भाग्यो से भारते भैला मानुष
आक व्यर्थ करा विषय भोले/माणिकक विका काचर मोले।

(शंकरदेव कहते हैं कि बड़े सौभाग्य से ही भारत वर्ष में मनुष्य जीवन मिल पाता है। इसलिए इस मूल्यवान जीवन को संसार की माया में व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए।)

शंकरदेव की असमिया जातीय चेतना वृहत राष्ट्रवाद की पृष्ठभूमि को तैयार करती है। उनका 'एक शरणिया नाम धर्म' एकेश्वरवाद की अभिव्यंजना है जो कि अखिल भारतीय भक्ति आंदोलन के मूल में है। उनकी जिस कीर्तन को असम का 'मौचाक' कहा गया है उसके श्रोता-शिष्य नागा के नरोत्तम, कछारी के राम, गारो के गोविंद, मिरि के बानाई, भोट के दामोदर, मुस्लिम के चांदखाई, कैवत के पूर्णानन्द, भूटिया के जयराम, मिसिंग के परमानंद, आहोम के नरहरि, कोच के चिलाराय आदि हैं। उन्होंने खुद कीर्तन में लिखा है-

ब्राह्मणर चाण्डालर निविचारि कुल/दातात चोरत येन दृष्टि एक तुल

नीचत साधुत यार भैल एक ज्ञान/ताहाके से पंडित बुलिय सर्वजन।

(अर्थात शंकरदेव कहते हैं कि ब्राह्मण-चांडाल में ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं है। जात-पात के विचार से जो व्यक्ति ऊपर उठा, वही पंडित और ज्ञानी है।)

कीर्तन की भाषा सहज, सरल, पात्रानुकूल, भावानुकूल, लालित्यमय एवं सौष्ठवपूर्ण है। इसमें जिस ब्रजावली भाषा का प्रयोग हुआ है वह मैथिली, प्राचीन असमिया और ब्रजभाषा का मिश्रित रूप है। कीर्तन का यही बहुभाषी वैशिष्ट्य उसे सर्वभारतीय स्वरूप प्रदान करता है। वास्तव में जिसके बोल में ही राष्ट्रीयता की अनुगूँज हो, उसके राग और सुर में अखण्ड भारत की परिकल्पना क्यों साकार नहीं हो उठेगी!

भक्ति आंदोलन का मानवतावादी स्वर प्रबल रूप में कीर्तन में विद्यमान है। शंकरदेव ने कीर्तन में मानव को जीवश्रेष्ठ माना है। मनुष्य मनुष्य के बीच प्रेम की पराकाष्ठा को कीर्तन में प्रतिफलित किया गया है-

यह मनुज ज्ञानी,शृंगालो,कुक्करों से हीन हो,किया करता अनेकों क्रूर कर्म मलीन।

(शंकरदेव कहते हैं कि जो मनुष्य इंसानियत के लिए कर्म नहीं करता, जो इंसान को नहीं पहचानता वैसे मनुष्य जानवर से भी बदतर हैं।)

शंकरदेव कृत 'कीर्तन घोषा' में वेदान्त दर्शन के विविध आयामों का परिचय भी मिलता है। इसमें उपनिषद के मूल तत्व ब्रह्मवाद, आत्मवाद, मायावाद, सृष्टि रहस्य, कार्य-कारणवाद, जीव ब्रह्म का अभेदत्व, ध्यान, धारणा, गुरुभक्ति और नामतत्व आदि प्रच्छन्न रूप में मिलते हैं।

वेदान्त दर्शन में अद्वितीय ब्रह्म की कल्पना है। यही ब्रह्म अनित्य और सर्वव्याप्त हैं। जीव समाज के कल्याण के लिए भिन्न-भिन्न रूपों में ब्रह्म का संसार में आगमन होता है। कीर्तन में उस अदृश्य सत्ता के स्वरूप का वर्णन किया गया है-

जीव अंशों तुमि प्रवेशिला गावे गावे/आवे आमि तोमाक भेजोहो सर्वभाने (वेदस्तुति, प्रथम कीर्तन,1655)

(शंकरदेव कहते हैं कि भगवान जीव मात्र के कल्याण के लिए संसार के कण-कण में व्याप्त होते हैं और भक्तजन उसी सत्ता का श्रवण-कीर्तन एवं स्मरण करते हैं।)

'कीर्तन घोषा' में शंकरदेव ने भगवान के चतुर्विंशांति अवतार का भी स्मरण किया है। श्रीमद्भागवत गीता के चतुर्थ अध्याय में उल्लेख है कि जब-जब धर्म की हानि होती है, साधु-संतों पर अत्याचार होने लगता है, तब-तब धर्म की पुनःस्थापना के लिए भगवान मनुष्य जगत में अवतरित होते हैं। कीर्तन में भगवान के निराकार और साकार अस्तित्व की कल्पना की गई है-

प्रथमे प्रणामों ब्रह्मरूपी सनातन/सर्व अवतारर भैला कारण नारायण।

-प्रथम कीर्तन

(शंकरदेव ने पहले पहल ब्रह्मरूपी सनातनी भगवान का स्मरण एवं वंदन किया है और किसी महान उद्देश्य की पूर्ति हेतु संसार में भगवान के अवतरित होने के संदर्भ का उल्लेख किया है।)

वेदान्त दर्शन में ब्रह्म परम आनंद स्वरूप हैं। सच्चिदानंद ही परम गति हैं। धृता और धृति हैं। संसार के समस्त आनंद का मूल स्वरूप सत्य सनातन ब्रह्म ही हैं। 'कीर्तन घोषा' में भी अद्वैत ब्रह्म की परिकल्पना है-

तोमार अद्वेत रूप परम् आनंद पद/ताते मारे मग्न होक चित्र

भैलोहो दासर दास जानि आवे नरहरि/आक्षाक नेरिवा कदाचित

(शंकरदेव कहते हैं कि भगवान का स्वरूप अद्वैत है। इसी अद्वैत सत्ता में शंकरदेव विलीन होना चाहते हैं। कहते हैं कि हे सनातनी भगवान मैं आपके दास का भी दास हूँ। आपके चरणों में ही एकमात्र शरण है। इस भक्त को भवसागर की माया में अकेले मत छोड़िए।)

उपनिषद के मायावाद का वर्णन भी 'कीर्तन घोषा'में मिलता है। इसमें विविध स्थानों पर माया का स्वरूप, ब्रह्म और माया का संपर्क, माया से जीव-जगत में उत्पन्न भ्रम आदि का वर्णन सटीक किया गया

है। जीव ब्रह्म से ही उत्पन्न है लेकिन माया के कारण ब्रह्म और जीव के बीच पर्दा आ जाता है-

तोमारेके मायाये मोहित सर्वक्षणे/तुमि आत्मा तोक्षाम नजारे एको जने
समस्ते भूतरे तुमि आछा हृदयत/तत्व नापाई तोक्षाक विचारे बाहिरत

(शंकरदेव कहते हैं कि माया में पड़कर भक्तजन बाह्य जगत में ईश्वर को ढूंढते रहते हैं लेकिन परमात्मा जीव के हृदय में ही हैं।)

(हरमोहन-द्वितीय कीर्तन)

महापुरुष शंकरदेव की भक्ति-साधना में ध्यान का महत्वपूर्ण स्थान है। कीर्तन के चतुर्थ अध्याय में ध्यान पर उन्होंने विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने ईश्वर के स्वरूप का ध्यान-स्मरण करने के लिए भक्त समाज का आह्वान किया है-

मस्तकर परा पाद पर्यन्त/नमाईव मनक दुनाई देखन्ते/ध्वज वज्र पद्म अंकुश जावे

प्रदक्षिणे नामि परिव पावे/एतेके हुइवेक परम सिद्धि/हरिसे जाना जगतर निधि

(शंकरदेव कहते हैं कि भक्त समाज को भगवान के चरणों में ही आत्मसमर्पण करनी चाहिए। वही परम सिद्धि हैं और मनुष्य जीवन की निधि हैं।)

बहरहाल, शंकरदेव का 'कीर्तन घोषा' भारतीय कीर्तन परंपरा को समृद्ध और संपुष्ट तो करता ही है अपनी बहुआयामिता की वजह से सुधिजनों को अभिभूत भी करता है। इसका लौकिक, अलौकिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय स्वर इसके विषयगत वैविध्य को दर्शाने के साथ-साथ शंकरदेव के व्यक्तित्व की व्यापकता को भी प्रकट करता है। वास्तव में शंकरदेव भक्ति आंदोलन के शीर्षस्थ भक्त कवि हैं। असम को जात-पात की रूढ़ियों से मुक्त कर नव मानवतावाद का संदेश देने वाले उद्भट संत हैं। गौरतलब है कि महान साहित्यकारों की प्रवृत्ति ही रही है कि उनका व्यक्तित्व और कृतित्व सार्वजनीन, सार्वकालिक, कालजीवी और कालजयी बन जाता है। शंकरदेव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों से अखिल भारतीय स्वरूप का दर्शन होता है। उन्होंने तीर्थ भ्रमण के जरिए देश के कोने-कोने तक ज्ञान की व्यापकता दर्शाकर विभिन्न स्थानों के लोगों के मन की संकीर्णता को दूर किया। दो बार तीर्थ भ्रमण कर अखंड भारत की परंपरा को साकार बनाने की कोशिश की। उन्होंने केवल असम के कल्याण की ही बात नहीं की बल्कि समूचे भारतवर्ष के कल्याण की बात की। इसीलिए उन्होंने कीर्तन में भारतवर्ष में मनुष्य के रूप में जन्म लेने को सौभाग्य की बात माना है-

भारतत जन्म पाई विलम्बक नजुवाय/सदाय घुषियो राम हरि

(शंकरदेव कहते हैं कि भारतवर्ष में जन्म लेकर जीवन को व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए बल्कि सदैव राम और हरि का स्मरण और कीर्तन करना चाहिए।)

वास्तव में, शंकरदेव का 'कीर्तन घोषा' जीवन और समाज के विविध प्रसंगों पर एक सार्थक, सशक्त एवं समग्र टिप्पणी है जो आने वाली पीढ़ियों को समाज में सलीके से रहने और सौहार्द्रपूर्ण तरीके से जीवन जीने की कला सिखाता है। भारतवासियों में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का संचार करता है।

संदर्भ-सूची:

1. मागध, कृष्ण नारायण प्रसाद, महाकवि शंकरदेव विचारक एवं समाज सुधारक, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2015
2. सोनारम चुतीया, श्री भवप्रसाद चलिहा आदि द्वारा संपादित, महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव वाक्यामृत, असम साहित्य सभा, 1998.
3. बेजबरुआ, लक्ष्मीनाथ, श्री मन्त शंकरदेव और माधवदेव, ज्योति प्रकाशन, पानबाजार, गुवाहाटी, 1997
4. डॉ. गोहाईं, हीरेन, कीर्तन पुथिर रस विचार, बनफूल प्रकाशन, गुवाहाटी, 2013
5. स.मेधि, कालिराम, महापुरुष शंकरदेवर वाणी, एलबीएस पब्लिकेशन, गुवाहाटी, 2017
6. स. बायन, भवजीत, श्री श्री शंकरदेव- माधवदेव विरचित कीर्तन घोषा आरू नामघोषा, आर. जी. पब्लिकेशन
7. डेका, भबनंद, शंकरदेव'ज कीर्तन घोषा, वॉल्यूम-1, इंग्लिश प्रोज ट्रांसलेशन ऑफ़ असामीज क्लासिक होलीबुक : 1, क्रिएटस्पेस इंडिपेंडेंट पब्लिशिंग प्लेटफ़ॉर्म, 2016
8. शर्मा, डॉ. नवीनचन्द्र, असमर लोकसाहित्य, ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी, 2014
9. नेओग, महेश्वर, असमिया साहित्यर रूपरेखा, गुवाहाटी, 2012
10. शर्मा, डॉ. सत्येन्द्रनाथ, असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत्त, अरुणोदय प्रेस, गुवाहाटी, 2011
11. बोरा, प्रफुल्ल चंद्र, शंकरदेव अध्ययन, ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी, 2013
12. बर्मन, शिवनाथ,श्रीमंत शंकरदेव: कृति आरू कविता, असम पब्लिशिंग कंपनी, गुवाहाटी, 2014

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, नापम, असम 784028
मो - 8876049200

रामकथा: विमर्श की नई दृष्टि

(आशुतोष राना की पुस्तक' रामराज्य)

डॉ. राकेश शुक्ल

विश्व में रामकथा के अतिरिक्त शायद ही कोई ऐसा आख्यान हो; जिसके इतने अधिक आयाम, पाठ तथा अर्थ-संरचनाएँ हैं। बाल्मीकि रामायण से लेकर अद्यावधि सृजित उपलब्ध सैकड़ों कृतियों के बावजूद उक्त आख्यान को नित नए संदर्भों में आज भी लिखा जा रहा है; तथा सामयिक प्रासंगिकता के अनुकूल उसका मूल्यांकन, पुनर्मूल्यांकन भी किया जा रहा है। महत्व की बात यह है कि यह न सिर्फ लेखकों, साहित्यकारों के आकर्षण का विषय है; वरन् सन्तों, धर्माचार्यों तथा कला एवं संस्कृति के मनीषियों को भी अत्यंत प्रिय रहा है।

जाने-माने फिल्म कलाकार आशुतोष राना ने एक उपन्यास के रूप में 'रामराज्य' शीर्षक से रामकथा में अनेक नवीन और मौलिक उद्भावनाएँ की हैं। यह सच है कि हमारे लोक नायकों या आराध्यों के विषय में कुछ कहना या लिखना जो हमारे लिए देवतुल्य या पैगम्बर हों, खतरे से खाली नहीं होता, और फिर गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीराम के चरित्र की उदात्तता के जो मानक निर्मित कर दिये हैं, उसके आगे तो महर्षि बाल्मीकि के राम से भी जनमानस पूर्णतः सहमत नहीं हो पाता है, तब ऐसे में श्रीराम के चरित्र को पूरी मर्यादा के साथ चित्रित करने में आशुतोष राना को पूर्णतः सफलता मिली है।

राम वन गमन से लेकर सीता परित्याग तक की ग्यारह सर्गों में निबद्ध यह कथा न सिर्फ पाठकों को बाँधे रखती है; वरन् उनकी अन्तश्चेता का परिष्कार भी करती है। सामान्यतः रामकथा की सभी कृतियों में कैकेई प्रसंग की मूलकथा यह है कि अपनी प्रिय दासी मन्थरा के उकसाने पर वह राजा दशरथ से दो वरदान माँगती हैं। पहला-भरत के लिए राज्य, और दूसरा-राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास। पर इस कृति में लेखक ने राम वन गमन और भरत के राज्याभिषेक का सूत्रधार राम को ही माना है। इस हेतु राम किसी न किसी प्रकार माता कैकेई को अपने दो वर माँगने के लिए विवश करते हैं। कैकेई इस बात के लिए जब किसी भी प्रकार तैयार नहीं होतीं तब श्रीराम उन्हें समझाते हैं कि उनका जन्म राज सिंहासन सम्हालने के लिए नहीं हुआ है। सिर्फ अवध के कल्याण के लिए नहीं, जगत कल्याण के लिए हुआ है। वे कैकेई से कहते हैं, "रावण की साधना का लक्ष्य सत्ता थी और राम की साधना का लक्ष्य समाज है। रावण प्राप्ति के भाव से भरा हुआ था और राम परिष्कार की प्रेरणा से प्रेरित हैं।'' इस पूरे संवाद में कैकेई को लगता है कि, ''राम, राम नहीं एक अलौकिक चेतना हैं, जिसका स्वरूप विस्तारित होता जा रहा है।'' और अन्ततः जब कैकेई राम से पूछती हैं कि तुम चाहते क्या हो पुत्र? मैं तुम्हारा क्या इष्ट साध सकती हूँ? तब वे कहते हैं, "मैं स्वयं की शक्ति का अर्जन नहीं, समाज में शक्ति का सृजन करना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि यह संसार निर्भरता के विकल्प से मुक्त होकर आत्मनिर्भरता के संकल्प से बद्ध हो, और उसके लिए तुम्हारे जनवासी राम को वनवासी राम होना पड़ेगा। मुझे भूखण्ड जीतकर साम्राज्य विस्तार में रुचि नहीं है, अपितु मैं मनुष्यों के भावखण्ड को जीतकर उनके परिष्कार का हेतु होना चाहता हूँ।'' इस प्रकार हम कह सकते हैं कि श्रीराम के संकल्पों को पूरा करने के लिए कैकेई ने नीलकण्ठ की भूमिका अपनाई थी, जो युगों-युगों तक लांछनों का गरल पीकर राम को लोकनायक बनाती हैं। श्रीराम और कैकेई के संवादों के माध्यम से लेखक ने ज्ञान और दर्शन की जो मंदाकिनी बहाई है, उससे पाठकों के चित्त का विस्तार होता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है, "राम ने उत्सुकता से पूछा, "माँ, प्रेम और ज्ञान में क्या अन्तर होता है?'' "वही अन्तर होता है पुत्र, जो कली और पुष्प में होता है। अविकसित ज्ञान, प्रेम कहलाता है और पूर्ण विकसित प्रेम, ज्ञान कहलाता है।''

सुपर्णा-शूर्पणखा प्रसंग में भी आशुतोष ने लीक से हटकर अलग परिकल्पना की है। सुपर्णा-शूर्पणखा एक ही स्त्री पात्र के दो भाव रूप हैं, जिनका विस्तार से चरित्रांकन करते हुए लेखक ने यह प्रतिपादित किया है कि शूर्पणखा राम के प्रति आसक्त होकर उनके पास नहीं गई थी, राम तो उसके लिए प्रतिशोध का साधन थे। सुपर्णा का पति और रावण के अंगरक्षक दल का सेनापति विद्युतजिह्व लंकापति बनने का स्वप्न देखने लगा था। महिष्मति के राजा सहस्त्रार्जुन और रावण के बीच हुए युद्ध में विद्युतजिह्व ने रावण के साथ विश्वासघात किया था, जिससे क्रोधित होकर रावण ने उसकी छाती पर पद प्रहार करते हुए उसे मृत्यु के घाट उतार दिया था, तभी से वह अपने भाई के प्रति प्रतिशोध की भावना से भरी हुई थी। यथावसर उसके पिता विश्रवा (रावण का भी पिता) ने भी उससे कहा था कि, "तुम्हें अपने बुद्धि-कौशल का प्रयोग करते हुए राम और रावण को एक-दूसरे से युद्ध करने के लिए प्रेरित करना होगा।'' लेखक ने इस प्रसंग को अभिनव तथ्यों और तर्कों के साथ प्रस्तुत करते हुए सुपर्णा और राम के बीच सार्थक संवादों की रचना की है, जिससे सुपर्णा के चरित्र की सकारात्मकता पर भी हमारा ध्यान जाता है। उसके नाक-कान काटने के प्रसंग को भी लेखक ने मिथ माना है, उनका मानना है कि शूर्पणखा के गर्हित आचरण पर लक्ष्मण के द्वारा उसका शाब्दिक अपमान किया गया था, इसे ही 'नाक-कान काटने' का रूपक माना गया है।

पंचवटी', 'लंका', 'हनुमान', 'विजयपर्व-कुम्भकर्ण', 'विजयपर्व-विभीषण', 'विजयपर्व-रावण' तथा 'सीता परित्याग' शीर्षकों के अन्तर्गत लेखक ने रामकथा को आधुनिक बोध से संवलित दृष्टि के अनुरूप व्याख्यायित किया है। पंचवटी प्रकरण में लेखक ने यह सिद्ध किया है कि

श्रीराम ने वन में प्रवास करके न सिर्फ जनजातियों एवं वनवासियों को संगठन सूत्र में बाँधने का कार्य किया वरन् उनमें स्वाभिमान तथा स्वालम्बन की भावना भी उत्पन्न की। साथ ही उन्हें प्रतिकार करना भी सिखाया। पंचवटी क्षेत्र के ग्राम प्रमुख गोकर्ण का पुत्र मधुकर्ण राम से कहता है, "यह तो आपके सान्निध्य का प्रताप है राम, जो हमें पहली बार मनुष्य होने की अनुभूति हुई, अन्यथा रावण के सेनापति खर को हमें मारते हुए आनन्द मिलता था, और हमें मरते हुए संतोष।"

सीताहरण के पहले उन्हें कुछ दिन अग्नि में निवास करने के सर्वमान्य आख्यान को भी लेखक ने तार्किक ढंग से व्यक्त किया है। पंचवटी में श्रीराम सीता को मानसिक, आत्मिक एवं शारीरिक रूप से और अधिक दृढ़ बनाने में लगे हुए थे, तभी एक दिन सीता ने उनसे कहा, "आर्यपुत्र, आपने अभ्यास की अग्नि में मुझे इतना तपा दिया है कि कभी-कभी मुझे लगता है जैसे यह मैं नहीं, मेरी छाया है। ..... माया को छाया से ही निरस्त किया जा सकता है और मेरे व्यक्तित्व में प्रच्छन्न रूप से इस छाया को प्रकट करने के लिए मैं यम, नियम, कठोरतम अभ्यास और भीषण चुनौतियों रूपी किसी भी अग्नि में प्रवेश करने के लिए तत्पर हूँ। अब से पंचवटी में वह सीता नहीं रहेगी, जिसका निर्माण विधाता ने राम के लिए किया था, अपितु वह सीता रहेगी जिसका परिष्कार स्वयं राम ने किया है।"

सेतुबंध रामेश्वरम् प्रकरण में भी पार्थिव शिवलिंग निर्माण तथा महारुद्राभिषेक के अवसर पर आचार्य के रूप में रावण को आमंत्रित करने का विवरण अत्यन्त रोचक और लेखक की मौलिक कल्पना है। इस हेतु पहले लक्ष्मण और बाद में हनुमान का रावण के दरबार में जाना और उसके साथ संवाद का प्रसंग खासा दिलचस्प है। रावण का यह कथन कि, "उसका जन्म राम के संकल्पों को पूरा करने के लिए हुआ है।" तथा महारुद्राभिषेक के अवसर पर उपस्थित होकर राम को विजयी भव का आशीर्वाद देने से एक अलग तरह के रावण से हमारा परिचय होता है।

लेखक ने कुम्भकर्ण प्रसंग की कथा का भी प्रक्षालन किया है। उन्होंने लिखा है कि कुम्भकर्ण विकट योद्धा ही नहीं, एक महान वैज्ञानिक भी था। वह निरन्तर अध्ययन, मनन, साधनालीन तथा वैज्ञानिक आविष्कारों में संलग्न रहता था। गोपनीयता की वजह से रावण ने उसके छह महीने निद्रालीन रहने की बात प्रचारित की थी। कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें युद्ध के विवरण उस तरह नहीं है, जिस तरह अन्य कृतियों में होते हैं, वह तो नेपथ्य में चलता रहता है, प्रत्यक्ष तो दार्शनिक विचारों की शृंखला चलती है। योद्धा यदि एक-दूसरे को ललकारते हैं, तो भी वे सूक्तियों की वर्षा ही करते हैं।

पुस्तक	:	रामराज्य	लेखक	:	आशुतोष राणा
मूल्य	:	500	प्रकाशक	:	कौटिल्य बुक्स

रावण की नाभि में अवस्थित अमृत कुण्ड पर भी लेखक ने आधुनिक बोध के अनुरूप विचार किया है। जिन कामनाओं, वासनाओं और इच्छाओं के कारण मनुष्य कभी मृत्यु के विषय में नहीं सोचता, वही उसका अमृतत्त्व है। लेखक ने रावण का महाप्रयाण भी अलग ही अंदाज में दिखाया है। वह युद्ध के अन्तिम दिन मंदोदरी से विदा लेते समय कह देता है कि, "रावण राज्य में स्वर्ण की नगरी के नाम से जाने जानी वाली ये लंका रामराज्य में स्वर्ग-सी-नगरी लंका के रूप में जानी जाएगी। इसलिए निश्चिन्त रहो और मेरे महाप्रयाण का प्रसन्न मन से स्वागत करो; क्योंकि रावण का तेजपुंज आज सदा के लिए राम के हृदय में विलीन होने वाला है।"

सीता परित्याग की कथा को लेखक ने रामानन्द सागर द्वारा निर्मित धारावाहिक 'उत्तर रामायण' की कथा के अनुरूप ही दिखाया है। राम आजीवन मर्यादा पालन के शिव संकल्प से बँधे हुए हैं। सीता पर लगे एक प्रवाद के कारण वे अनेकशः अपमान की अग्नि में जलते हैं और उन्हें लगता है कि अपनी निर्दोष प्रियतमा पत्नी को साथ लेकर अयोध्या का परित्याग कर पुनः वन को चले जाएँ, पर सीता अनेकशः उन्हें राजधर्म या राजकर्तव्य का बोध कराती हैं, और स्वनिर्वासन का निर्णय लेती हैं। उनका कथन है, "प्रजा के सुख और संतोष के लिए यदि राजा को स्वयं असंतोष की अग्नि में जलना पड़े तब भी उसे प्रजा को संतोष प्रदान करना चाहिए। राजा के लिए अपने प्रियजन, परिजन से कहीं अधिक महत्वपूर्ण या सर्वोपरि उसके प्रजाजन होते हैं।" यह अलग बात है कि लेखक के शब्दों में, "अयोध्यावासियों के भावखण्ड की रक्षा के लिए सभा भवन के गहरे अंधकार में अकेले खड़े श्रीराम का क्रंदन प्रजा के वंदन पर भारी पड़ रहा था।"

अनेक विशेषताओं के बावजूद कृति की अपनी सीमाएँ भी हैं। लेखक ने अनेक अलौकिक कथा-प्रसंगों को विज्ञान सम्मत तर्क की कसौटी पर कसते हुए उसे मिथकीकरण से बाहर निकालने की कोशिश की है; किन्तु उसका सर्वत्र निर्वाह नहीं हो सका है। खर-दूषण से युद्ध के समय फूस के पुतलों द्वारा बाणों का संधान, बालि की काँख में रावण के कुछ दिन दबे रहने आदि के प्रसंग इन पूर्व उपलब्ध अवधारणाओं का अतिक्रमण नहीं करते हैं। फिर भी इस आख्यान में ऐसा बहुत कुछ है, जिससे रामकथा को समझने की एक नई दृष्टि मिलती है। अनेक बार पढ़ी-सुनी गई यह कथा कहीं से उबाऊ नहीं लगती। पात्रों के गरिमामय चरित्रांकन और उत्कृष्ट भाषा-शैली के कारण भी इसका महत्व असंदिग्ध है।

205, प्रगति नगर,सोनकच्छ, जिला देवास, मध्यप्रदेश(455118)
मो. 9926476410 ईमेल bhupendrabhartiya1988@gmail.com

गुरू ज्ञान

अरे गुरू जी आप! शायद आपने पहचाना नहीं मैं राकेश आपका शिष्य। पच्चीस साल पहले मैं आपकी कक्षा में था। आप के प्रोत्साहन का ही नतीजा है कि मैं इंसपेक्टर बन सका। बैठिये सर अरे ! चाय लाओ मिश्रा जी। गुरू जी इतने दिनों बाद मिले हैं। बताइये गुरू जी कैसे आना हुआ। गुरू जी बोले, बेटा मुझे चेहरा तो जाना पहचाना लग रहा है पर ठीक से कुछ याद नहीं आ रहा। स्कूल छोड़े हुये भी पंद्रह साल हो गये। मुझे बड़ी खुशी हो रही है कि तुम अपने ही शहर में इतने बडे ओहदे पर हो। अभी थोड़ी देर पहले मैं सड़क पर गाड़ी खड़ी कर फल ले रहा था कि पुलिसवालों ने गाड़ी उठा ली। मैंने कहा तो बोले थाने से मिलेगी। वही लेने आया हूं। बस इतनी सी बात है गुरू जी आप बिल्कुल चिंता न करें। मैं अभी आपकी गाड़ी दिलवाता हूं। इंसपेक्टर ने आवाज देकर मुंशी को बुलाया और कहा देखो ये हमारे गुरू जी हैं इनका स्कूटर दिलवाओ। आप तो गुरू जी चाय पीजिये। चाय पीकर गुरू जी मुंशी के साथ गोदाम की ओर चल पडे। रास्ते में मुंशी ने गुरू जी से कहा दो सौ रूपये दे दीजिये। गुरू जी बोले पैसे किस बात के। मुंशी मुस्कराया और बोला गुरू जी आप मेरे साहब के गुरू हैं तो मेरे भी गुरू हुए और मैं आपका सम्मान भी करता हूं पर गाड़ी गोदाम में आ गई है तो पैसे तो देने ही पडेंगे। शाम को यही साहब जब हिसाब लेने बैठेंगे तो भूल जायेंगे कि दिन में उनके गुरू आये थे या पिता जी। उस समय तो सफेद कागज पर भी गांधी जी को ढूंढते हैं और उसी को पहचानते हैं। दो सौ में सौ तो उन्हीं के हो गये, पचास मेरे और बीस-बीस गोदाम के सिपाहियों के। दस रूपये चाय वाले को भी तो देने हैं जो अभी आपने पी थी। मुंशी की बात सुन गुरू जी को चाय की उल्टी सी आने लगी और सोचने लगे कि शिक्षण काल में इस तरह का ज्ञान तो उन्होंने किसी को भी नहीं दिया था।

समझौता

हेलो मम्मी ..... हां सब ठीक है पर सब लोग अपने सामान के बारे में उल्टी-सीधी बातें कर रहे थे। ननद कह रही थी उसका सूट कहां से उठा कर दे दिया है कितना भी प्रेस कर लो सिलवटें ही नहीं जाती। सासू मां को भी कपड़े पसंद नहीं आये। मोटरसाइकिल के बारे में बातें हो रहीं थी। बगल के पांडे जी कह रहे थे अपनी बेटी को ही तो दे रहे थे दस हजार और लगाकर लैटेस्ट मॉडल देना था, ये सब मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लग रहा। मैं शांत होकर सब सुनती रही। दो ही दिन तो हुये हैं पर लगता है कि कई महीने हो गये शादी को। बेटा तुम चिंता मत करो और अबकी बार बात चले तो कह देना यहां से तो सब सामान अच्छा ही है। है क्या उन भिखमंगों के पास। बैठने को चार कुर्सियां तक तो ठीक हैं नहीं, बात करते हैं लाखों की। ठीक है मम्मी बाद में बात करते हैं मुझे कोई बुला रहा है। और मेनका अपने काम में जुट गई पर उसका मन नहीं माना और दस मिनट बाद ही फिर लगा दिया बेटी को फोन। हां बेटा और सब ठीक तो है। हां मां अभी तो आपसे बात की थी ना। बस खाना बनाने जा रही थी। अच्छा चलो रखती हूं। रोज का नियम था मेनका बेटी से दिन में दो बार तो बात करती ही थी। और इधर उसकी बेटी भी दिन की एक-एक बात मां को बताती। धीरे-धीरे एक साल गुजर गया। कई बार बेटी ने मां के कहने पर ससुराल में सवाल-जवाब भी करने शुरू कर दिये। मां के कहने पर ही उसे गाय के दूध की जगह भैंस का दूध बंधवा दिया था। अब तो वह छोटी से छोटी बातों पर भी मां की ही सलाह लेती थी। और मां भी अपना पूरा अनुभव उड़ेल देती। ससुराल वालों को यह बात पसंद नहीं आ रही थी। कई बार बेटी का पति से इस बात पर झगड़ा भी हो चुका था कि बेटी के घर में इतनी दखलंदाजी क्यों। परिस्थितियां सुधरने का नाम नहीं ले रहीं थीं बल्कि धीरे-धीरे माहौल बिगड़ ही रहा था। और वह दिन आ ही गया जब बेटी का फोन आया। मां अब मैं यहां नहीं रहूंगी। यह लोग आप लोगों को भी बुरा भला कहते हैं। अब मुझसे सहन नहीं होता। आप तो बस पापा को भेज दो मैं आप के पास ही रहूंगी। हां-हां बेटा तुम चिंता मत करो। अभी तुम्हारे मां बाप जिंदा हैं हम शाम को पंहुच रहे है तुम अपना सामान पैक कर लो। गहने भी रख लेना। हम आते हैं। बेटी को छह महीने से उपर हो चुका था मायके आये हुये अब वह यहां बोर हो चुकी थी। उसका मन कर रहा था कि पति के पास चली जाये। आखिर वह कितना ख्याल रखता था। उसने तो कभी कुछ नहीं कहा बल्कि उसकी हर बात मान लेता था। सोच रही थी शायद नये घर में थोड़ा समझौता कर लेती और छोटी छोटी बातें मां तक न पंहुचाती तो शायद यह नौबत नहीं आती।

डी 13, टावर 13, टाइप थ्री , ईस्ट किदवई नगर
नई दिल्ली 110023 मो. 9560706305

क्योंकि वह तो माँ है

पति बाजार से आया, फ्रूट सब्जी ले कर आया, सब्जी की थैली उसने अपनी पत्नी को पकड़ा दी, फ्रूट वह स्वयं काटने लगा। कटे फ्रूट की थाली पत्नी को पकड़ा दी , पत्नी ने बच्चों को बुलाया , सब ने मिल कर फ्रूट खाया। बच्चे खेलते-कूदते घर से बाहर निकल गये।

उधर घर के अलग माले में बूढ़ी माँ ने बाहर जाकर सब्जी वाले से सब्जी व फल खरीदे। फल काटे ,अपने बूढ़े पति को खिलाया। एक और प्लेट तैयार करके बाहर से पोता पोती को बुलाया ....उन्हें कटे फलों से सुसज्जित वह थाली पकड़ा कर कहा .....लो ,ये तुम्हारे लिए और तुम्हारे मम्मी पापा के लिए है। उसके बाद कुछ बचे हुए फल उसने खाये या नहीं खाये ...किसी को नहीं पता। सबको खिलाये बिना उसके हलक से कुछ उतर भी कैसे सकता था क्योंकि वह तो सबकी माँ है .....।

गरीब कौन

किसी काम के सिलसिले में बाहर जाना था। कोई दो शहरों में... दोनों शहरों में अपना कोई रिश्तेदार भी नहीं था...थोड़ा रहने, खाने, सोने की सुविधा ही हो जाती। चलो, जाना तो है ही,कोई ना कोई उपाय तो करना ही होगा, नहीं तो होटल में ही ठहरना होगा। रमेश मन ही मन सोच रहा था कि अचानक सुबोध का ख्याल आ गया। सुबोध उसका परम मित्र है। उसके सुख-दुख का साथी। उसने उससे बात की। सुबोध ने कहा परेशान होने की कोई जरूरत नहीं। एक शहर में तो उसकी दूर की रिश्तेदार उसकी बुआ रहती हैं जो उसके पापा की कज़िन हैं और एक शहर में उसकी मौसी रहती हैं। मैं उन्हें फोन कर दूँगा, तुम्हें किसी प्रकार की कोई असुविधा नहीं होगी। बुआ तो फाइनेंशली ठीक-ठाक ही हैं फिर तुम्हारे एक रात रहने का बंदोबस्त हो जाएगा। मौसी तो बहुत मोटी आसामी हैं। उनका घर क्या महल है कोई दिक्कत नहीं.... तुम आराम से टेंशन फ्री होकर जाओ। पहले जाना हुआ बुआ जी के घर पर। बहुत ही साधारण सा घर था। दरवाजा खटखटाया, बुआ जी ने खोला, उनका व्यवहार ऐसा था जैसे बहुत पहले की जान पहचान हो। अद्वितीय प्रेम भाव उनके चक्षुओं से छलक रहा था मानो जैसे विदुर के घर कृष्ण आए हों। साधारण खाना भी इतना स्वादिष्ट हो सकता है यदि उसमें प्रेम की मिठास घोल दी जाए। साधारण से घर में हर चीज करीने से सजी हुई थी। उनका पति और बेटा तो वहाँ से हिले भी नहीं। खाना खाने से लेकर उनके घर से विदा होने तक सभी बातें रमेश के हृदय में एक अमिट छाप छोड़ रही थीं और उनका प्रेम से यह कहना, फिर आना बेटा और बहुत ना नुकर करने पर भी जबरदस्ती मिठाई का डिब्बा रमेश के हाथों में पकड़ा देना, जोकि रमेश ने बातों-बातों में ही बता दिया था कि उसकी मनपसंद मिठाई गुलाब जामुन है। एक अजनबी के प्रति इतना अधिक स्नेह ....ऐसे लोग भी हैं आजकल की स्वार्थपरक दुनिया में। उनके प्रेम से लबरेज़ हृदय के साथ रमेश बस पर सवार हो गया।

अगला पड़ाव था मौसी जी के घर पर। घर क्या था ....महल था। कालबैल बजाया ....वाचमैन दौड़ता आया....सौ तरह के सवाल करने पर ही उसे अंदर आने दिया गया। अंदर कोई पार्टी चल रही थी। नौकर रमेश का सामान पिछवाड़े के कमरे में ले गया और इशारे से उसे पीछे आने के लिए कहा। साधारण शक्ल सूरत और साधारण वस्त्रों वाला मेहमान उनकी पार्टी और प्रेस्टीज़ के अनुरूप ना था। थोड़ी देर बाद नौकर उसे खाना दे गया और किसी चीज की जरूरत हो तो बता दे कहकर चला गया। सुबह शीघ्र ही रमेश को निकलना था। नौकर उसे चाय के साथ हल्का-फुल्का सा नाश्ता देकर चला गया। रमेश घरवालों से मिले बिना नौकर को ही बता कर चल पड़ा। घर के लोग अभी उठे भी नहीं थे। बस में बैठे हुए रमेश विचार करने लगा एक घर कम संपत्ति परंतु प्रेम,आदर ,सत्कार और सम्मान से भरपूर था और दूसरा घर धन संपदा से भरपूर और मानवीय मूल्यों से विहीन था। "बुआ जी तो फाइनेंशली ठीक-ठाक ही हैं परंतु मौसी जी बहुत मोटी आसामी हैं" यह शब्द बार-बार रमेश के कानों में गूँज रहे थे। रमेश सोच में पड़ गया कौन अमीर और कौन गरीब ?

484, आजाद नगर (निरंकारी भवन के पीछे)
करनाल हरियाणा-132001 मो. 7876059615, 7206915615

कपड़े पड़े हुए हैं गीले

धूप न निकली,
पछुआ सर सर,
जो धोए हैं,
ऊनी कपड़े,
कल से पड़े हुए हैं गीले।

सूरज कुहरे की चादर में,
दुबका अब भी दोपहरी तक,
गाँव अलावों का डेरा है,
हीटर पर है हर शहरी तक,
हिलती डालें,
छिप नीड़ों में,
खग सोए हैं,
तुलसी झुलसी,
पत्ते पड़े हुए हैं पीले।

निकियाये हैं, छीमी-दाने
सीझ न पाते घिकुरे हैं वे,
नल के जल इतने ठंडे हैं,
जमे हुए हैं, ठिठुरे हैं वे,
बारिश से हैं
गेहूँ हँसते,
जो बोए हैं,
आलू के तन,
कुछ कुछ पड़े हुए हैं ढीले।

आम आदमी की अँगुरी में
पड़ी हुई है सर्द अँगूठी,
नदियों की छाती पर लेटी
बर्फीली यह सदी अनूठी,
श्वेत श्वेत हर
दिशा, क्षितिज, घर,
जो मोए हैं,
शीत कणों से,
सिकुड़े पड़े हुए हैं टीले।

असाढ़ के पहले दिन

बदरी तो आई थी, लेकिन
हँसकर चली गयी।

ये असाढ़ के पहले दिन ही,
सूखे-सूखे हैं,
धरती की फैलावट के मन,
भूखे-भूखे हैं,
आये उस अंधड़ सँग पगली
फँसकर चली गयी।

सहमी सी थी हवा और मुँह
खोल नहीं पायी,
साँसत में थी धूप, और कुछ
बोल नहीं पायी,
काली नागिन, फन फैलाये
डँसकर चली गयी।

पानी की टंकी के नीचे,
टँगे हुए छत्ते,
पीपल की डालों पर लटके,
पीत हुए पत्ते,
आँधी भी जूही जूड़ों में,
खँसकर चली गयी।

थिरक रहे थे मोर, खेत भी
कुछ मुसकाये थे,
'बारिश आएगी', बच्चे यह
शोर मचाये थे,
एक सुहानी छटा, आँख में
धँसकर चली गयी।

'शिवभा' ए- 233, गंगानगर, मेरठ- 250001 उ.प्र.
संपर्क - 9412212255

हस्तक्षेप

आज पीड़ित हैं बहुत मानवता
हर किसी को जिबाह करने को तैयार
मजहब की सतरें पढ़ते हुए सिपहसालार
विजय का मना रहे त्योहार
अंधी सदियों ने बोला है हल्ला
रोशनी की मीनारों पर
गुल कर दी गई हैं बत्तियाँ
किसी झरोखे तक से नहीं आ सकती
कोई उम्मीद की किरण
मचा है हाहाकार
बेबसी, दहशत और दमघौंटू हालात
हर सांस पर लटकी तलवार
ममता सीने पर रख पत्थर
फेंक रही बच्चों को दीवार के पार
कैद की जा रही खिलती कलियाँ
होंगी हैवानियत की हवस की शिकार
सांस रोके किसी न किसी कौने में
छिपने का करती प्रयास अल्हड़ जवानियाँ
पैदा होने का है उन्हें मलाल
अंधाधुंध भाग रहे जवान कदम
उन्हें नहीं मिल रहा कोई भी द्वार
आज कोई नहीं रक्षक
न कोई व्यवस्था न सरकार।
हैवानियत ने कर दिये तय आसूल
हिजाब में लिपटी रहेंगी खूबसूरत सांसें
नहीं ले पायेगी खुले में सांस
या तो बिछोने बनायेंगी
या कोठे सजायेंगी
कुछ जनेगी तो
उन्हें आतंकवादी बनायेंगी
सारा विश्व देखता रहेगा।
यह त्रासद अजूबा
संयुक्त राष्ट्र बेमानी हो जायेगा
भारत तो देता रहा हमेशा सत्य का साथ
अकेला पड़ गया है वह
सत्य का साथ देने में लड़खड़ायेगा
हैवानियत बहुत डराने वाली होती है
हैवानियत का
अब केवल झूठ ही साथ निभायेगा
या फिर हैवान ही हैवान के काम आयेगा
तटस्थता नहीं है कोई विशेषता
हस्तक्षेप ही मानवता को बचायेगा
हस्तक्षेप.. हस्तक्षेप.. हस्तक्षेप....

BH 48, शालीमार बाग (ईस्ट) दिल्ली-110088
मो -9899651272

क्रोध

स्वयं शिवा का शोध हूँ
जनित हुआ विरोध हूँ
जिसे ना रोक पाओगे
वही अमूल क्रोध हूँ
मैं सत्य हूं असत्य हूँ
मगर बड़ा वीभत्स हूँ
मैं सर्वशक्तिमान उस
शिवांश का महत्व हूँ
स्वयं से मैं निरस्त हूँ
कभी नहीं आश्वस्त हूँ
मैं वेग से भी तेज हूँ
स्वयं का भी घनत्व हूँ
जगाता शूरवीर को
जलाता हूं रुधिर को
प्रचंड अग्नि में सदा
गलाता हूं शरीर को
मिटाता हूं थकाता हूँ
मैं स्वेद को बहाता हूँ
जो ना रुके थमे कभी
वो आंधियां भी लाता हूँ
मैं शक्ति से अपार हूँ
अनल का धुंधकार हूँ
सहन का मैं गुबार हूँ
मैं दंभ का प्रचार हूँ
मैं व्याघ्र का चरित्र हूँ
स्वयं बड़ा विचित्र हूँ
मैं सत्य से अबोध हूँ
इसीलिए मैं क्रोध हूँ

रावण

प्रतिशोध की क्रोधाग्नि में
रावण सदा जलता रहा
होती गई उसकी गति
प्रतिपल सदा मरता रहा ॥

छाया मिली ना प्रेम की
ना टिक सका उसका वचन
बनने को आतुर था सदा
वह राम प्यारी का प्रियम
कुलदीप सारे बुझ गए
वह अंत तक लड़ता रहा
प्रतिशोध की क्रोधाग्नि में
रावण सदा जलता रहा ॥

मंदोदरी कहती रही
पहचान लो श्री राम को
वह विष्णु रूपी राम हैं
चित में धरो इस ज्ञान को
मैं काल का भी काल हूँ
वह दंभ वश कहता रहा
प्रतिशोध की क्रोधाग्नि में
रावण सदा जलता रहा ॥

आई घड़ी जब मृत्यु की
तब खुल गए उसके नयन
लज्जित हुआ पुरुषार्थ में
तब आ गया प्रभु के चरण
वह एक दर्पी दैत्य जो
दुर्भाग्य से लड़ता रहा
प्रतिशोध की क्रोधाग्नि में
रावण सदा जलता रहा ॥

78/61, डी 1, चाँद पुरा सलौरी, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश 211004
मो - 7348447326

रंग

पुरुष और
पितृसत्तात्मक पुरुष में
उतना ही अंतर है
जितना शुद्ध और
अशुद्ध में होता है
होता है
असली और
नकली में भेद

यह बिल्कुल ऐसा ही है
जैसे काले रंग के घोल में
डुबोकर रंगा जाता है
कोई सफेद कपड़ा।

और इन्हें रंगती भी हैं
इसी घोल से
रंगी हुई औरतें
मैंने पूछा
रंगना जरूरी है?

वे बोले तब
परम्पराएँ
नहीं टूटने देंगे कभी
हमारे यही संस्कार हैं।

उन्होंने मेरा विरोध किया
और कहा फिर
तुमने पहना है श्वेत
चरित्र से हीन

पूछती हो सवाल
तुम हमारे समाज का
हिस्सा नहीं हो।

करोगी पुरुष भी ऐसा
पैदा एक दिन
जिसमें ना हो
कोई भी दाग़
होगी गायब
पितृसत्ता की छाप।

लौट जाओ,
हमारी संस्कृति को
तुमसे खतरा है।

मैंने विरोध किया
और कहा फिर
शक्ति, शिव को
नहीं रंगती,
ना शिव शक्ति को
शुद्धतावादी बनो!
तुम्हें अर्धनारीश्वर
कभी माफ नहीं करेगा।

दोषी हो तुम..!

हिंसा रोकी जानी चाहिए
अहिंसकों द्वारा
लेकिन मुझे नहीं मिला
कोई भी व्यक्ति...
जिसने हिंसा ना की हो!
हिंसा केवल...
शारीरिक ही नहीं होती
मानसिक भी होती है।

मैंने उनसे पूछा-
"आप अहिंसा में
विश्वास रखते हो?"
वे बोले कि आज तक उन्होंने
किसी को मारा नहीं
एक भी थप्पड़...!

मैंने भी पूछा
सच बताओ..
तुम अहिंसक हो?
वे बोले हाँ, बिल्कुल
हमने खाए हैं थप्पड़!

मैंने फिर पूछा
थप्पड़ खाना
अहिंसा की श्रेणी में आता है?
वे बोले गांधी ने सिखाया!

तुम्हारी आत्मा,
तुम्हारे मन पर होने वाले
शोषण
और सैकड़ों थप्पड़ों को
झेलते रहना
तुम्हें कैसे अहिंसक बनाता है?

सच बताओ! उस दिन मानसिक
शोषित को देख
मूक थे ना तुम...?
अत्याचार होते हुए देखना भी
घोर अपराध है
और झेलना भी...
फिर तो तुम अपराधी भी
हुए स्वयं के!

फिर तुम कैसे अहिंसक हुए?
बल्कि तुम हिंसक हो
अपनी आत्मा
अपने मन के रूदन को
अनदेखा करने वाले
क्रूर प्राणी हो तुम!
इसी क्रम में होने वाले
शारीरिक कष्ट को झेलने वाले
दोषी हो तुम...

तुम्हारा शरीर, तुम्हारा स्वस्थ मन,
तुम्हारे देश की धरोहर है
तुम अपने देश को
नुकसान पहुँचा रहे हो।

तुम्हें कोई अधिकार नहीं
नई पीढ़ी को तुम्हारी तरह
बनाने का...
तुम्हारे जैसे लोगों की
देश को कोई आवश्यकता नहीं है।

शोधार्थी हिंदी विभाग, केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय
तेजस्विनी हिल्स, पेरिया पोस्ट कासरगोड़ा , केरल 671316
मो - 9717535818

छूना महज छूना भर नहीं होता

जैसे परिणाम से बड़ी होती है प्रक्रिया
मंजिल से ज्यादा बड़ी होती है राह
वैसे ही मिलन से अधिक मूल्यवान है चाह
मैंने ताप से मुक्ति के लिए शीतलता को पुकारा
और एक चंचल लहर सागर के सीने पर मचल गई
मैं गर्म रेत सा फैला था
वह खिलखिलाती हुई आई
और मुझे चौपाटी में बदल गई

किसी निर्जन द्वीप की तरह
मेरा एकांत भी मेरा नहीं रहा
मेरा एकांत अब दुनिया का मनोरंजन है
मेरा जीवन संसार का कौतूहल है
मैं एक अनसुलझी ज़िंदा पहेली हूँ
सुंदर अक्षरों में लिखी अर्थहीन कविता हूँ
चीत्कार करते वाणहत मृग की आखिरी हिचकी हूँ

छूना महज छूना भर नहीं होता
एक अंधड़ साथ लेकर चलता है
एक अप्रत्याशित स्पर्श
बिना बोले छोड़ जाता है अनेक प्रश्नवाचक चिन्ह
कुछ गुलाबी स्वप्न
अकेलेपन की चुभन
और महासागर सी पसरी हुई अंतहीन प्रतीक्षा

स्मृतियाँ

मस्तक का ताप हमेशा बुखार की अलामत नहीं होता
स्मृतियों के दाब से भी होता है गर्म माथा
अलबत्ता गर्म होते ही माथा ठनकता है
जैसे बँधी थैली खुलते ही
खनकता है सिक्कों का कारवाँ
माथा घूमना बीमारी का वाइस है
बूढ़े लम्हे जब सर पर बैठकर माथापच्ची करते हैं
तब घूमना ही पड़ता है माथे को
और बीमार हो जाना होता है एक आदमी को
बीमारी से ज़्यादा तकलीफदेह होता है
बीमारी का अहसास
और यह तब उभरता है
जब तुम पास नहीं होती

तलाक़

हर रिश्ते के टूटने से पहले
टूट जाते हैं दो भरे पूरे लोग
दो सांस लेते ज़िंदा दिल
और टूक टूक हो चुकी होती है
अस्त्र शस्त्रों से न कटने वाली अजर अमर आत्मा

बड़ा गहरा रिश्ता है टूटन और तकलीफ का
तकलीफ रिश्तों में आए तो फ़िक्र बढ़ जाती है
लेकिन रिश्तों में टूटन आने पर
तकलीफ और फ़िक्र मर जाती है
अनुशासन का दायरा लांघ जाता है क्रोध
मन की दुनिया से देशनिकाला दे दिया जाता है
एहसासों के हरे पौधों पर लगे खुशनुमा फूलों को

कितना अजीब है
कि दिल में मिलन की तड़पन है
कि दोनों के सीनों में एक दूसरे की धड़कन है
मगर ज़बान से निकले तीन शब्द
दो भीमकाय ज़िंदगियों पर भारी हैं

तलाक़ सिर्फ एक रिश्ते का टूटना भर नहीं
सपनों के सूरज का डूब जाना है
क्षितिज के इन्द्रधनुष का झर जाना है
ज़िंदा शरीर में भावनाओं का मर जाना है

हाउस नंबर 380, थर्ड फ्लोर, पॉकेट 9, सेक्टर 21, रोहिणी,
दिल्ली 110086 मो. - 9136397400

चुप्पी

जो तुमने सुनना छोड़ दिया
तो हमने भी कहना छोड़ दिया
तुम चुप हो अब
हम चुप हैं अब
चुप्पी भाती अब दोनों को
शोर-शराबे की दुनिया में
हम दोनों ने रहना छोड़ दिया।

चुप्पी दिन की, चुप-चुप रातें
चुप्पी से ही अब मीठी बातें
चुप्पी है अमृत का प्याला
पिया प्यार से जिस दिन उसको
रुकी,सूखी सी दरिया में हमने बहना छोड़ दिया।

चुप्पी का हसीन पहर यह
चुप्पी का हसीन सफर यह
झूठ, दिखावा, जालफरेबी
वह दुनिया कुछ मटमैली-सी
उजड़ी-उखड़ी उस दुनिया में हमने रहना छोड़ दिया।

चुप-चुप ही मिलती अब निगाहें
चुप्पी से ही खुलती नई राहें
नेह निमंत्रण देता है अब
अंबर का हर कोना-कोना
अपनी जीवन नैया हमने उसी दिशा में मोड़ दिया।
जो तुमने सुनना छोड़ दिया
तो हमने भी कहना छोड़ दिया॥

सदा उसी की जय है

रुकती नहीं नदी की धारा
रुकता नहीं समय है,
चलता रहे निरंतर जो भी
सदा उसी की जय है।

अकर्मण्य की हर राह है मुश्किल
बैठे-बैठे मिले ना मंजिल
गहरे पानी में जो उतरे
पार उसका जाना तय है,
चलता रहे निरंतर जो भी
सदा उसी की जय है।

अज्ञान बढ़ाए मन का बोझा
मूर्ख बनाएँ पंडित-ओझा
गुरु का सद्ज्ञान मिले जब
बचता नहीं संशय है,
चलता रहे निरंतर जो भी
सदा उसी की जय है।

छल करने को बनता भोले
सत्य जान, असत्य जो बोले
बल के मद में निर्बल को रौंदे
होता उसका क्षय है,
चलता रहे निरंतर जो भी
सदा उसी की जय है।

101 सी ब्लॉक , नंदा देवी अपार्टमेंट
पाटलिपुत्र रेल परिसर दीघा, पटना-800012
मो: 7903131921, ईमेल: dilipk2809@gmail.com

माननीय विदेश मंत्री डॉ. एस जयशंकर तथा श्री रुस्लान कज़ाकबायेव विदेश मंत्री, किर्गिस्तान द्वारा 11 अक्टूबर, 2021 को भारत किर्गिज़ डिक्शनरी ऑफ़ वडर्स ऑफ़ कॉमन ऑरिजिंस का विमोचन किया गया जिसके प्रकाशन में भा.सां.सं.प. ने सहयोग किया।

क्षेत्रीय कार्यालय, गोवा द्वारा दिनांक 09 सितंबर 2021 को आयोजित कला विश्व कार्यक्रम के दौरान श्री नचिकेत नांगरे जादूगर मैजिक शो का प्रदर्शन करते हुए।

डॉ. विनय सहस्रबुद्धे, अध्यक्ष, आईसीसीआर द्वारा 28-30 सितंबर 2021 के दौरान बुडापेस्ट में हिन्दी दिवस समारोह का उद्घाटन किया गया तथा एलते विश्वविद्यालय में 'भारत@75वर्ष, भूतकाल से भविष्य तक' विषय पर भाषण दिया गया।

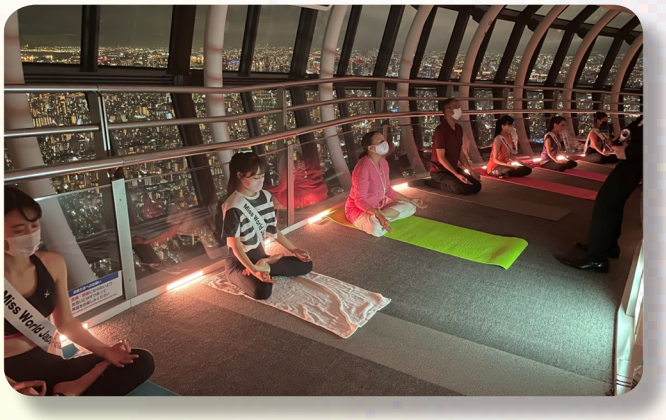

विवेकानन्द सांस्कृतिक केंद्र, भारतीय दूतावास, टोक्यो द्वारा मिस वर्ल्ड जापान, 2021 के फाइनलिस्ट प्रतिभागियों के लिए विश्व के उच्चतम टॉवर "टोक्यो स्काईट्री" के शिखर पर योगाभ्यास का आयोजन।

विवेकानन्द सांस्कृतिक केंद्र, भारतीय दूतावास, टोक्यो द्वारा आयोजित गाँधी जयंती समारोह में जापानी गायिका मिकी शिमादा और एमि हासेगावा द्वारा "वन्दे मातरम " की प्रस्तुति।

भारत के प्रधान कौंसलावास, सिडनी संस्कृत प्रशाला के अध्यापकों और छात्रों से वार्तालाप करते हुए तथा उन्हें संस्कृत को बढ़ावा देने और नवीन शिक्षा शास्त्र के माध्यम से युवा पीढ़ियों को जोड़ने के लिए उनकी निस्वार्थ सेवा के लिए बधाई दी। इस अवसर पर माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने सिडनी संस्कृत प्रशाला के प्रयासों की मन की बात द्वारा प्रशंसा की।

भारत के प्रधान कौंसलावास द्वारा हिंदी दिवस के अवसर पर विविध सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन इंडो – ऑस्ट्रेलिया बाल भारती विद्यालय के साथ किया गया।

महात्मा गांधी जयंती के अवसर पर – महात्मा गांधी को जुबिली पार्क और यूनिवर्सिटी ऑफ़ न्यू साउथ वेल्स, सिडनी के लॉन में पुष्पांजलि अर्पित की गई।

कोलंबो के महामहिम उप उच्चायुक्त श्री विनोद कुमार जैकब ने परम धम्म चैत्य पिरिवेन, रत्मलाना में आयोजित राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी की 152वीं जयंती पर मुख्य अतिथि के रूप में शिरकत की।

भारतीय राजदूतावास, दुशांबे द्वारा सितंबर 2021 को हिंदी दिवस के दौरान आयोजित कार्यक्रम में ताजिकिस्तान में हिंदी सीख रहे विभिन्न छात्र एवं छात्राओं ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।

भारतीय राजदूतावास, दुशांबे द्वारा सितंबर 2021 को हिंदी दिवस के दौरान आयोजित हिंदी नाटक "आओ हिंदी सीखें" कार्यक्रम के दौरान पद्मश्री प्राध्यापक हबीबुल्लो रजाबोव तथा अन्य ताजिक हिंदी प्राध्यापक उपस्थित रहे।

परिषद द्वारा दिनांक 17 सितंबर 2021 को हिंदी पखवाड़े के दौरान सामान्य हिंदी, टिप्पण एवं पत्र लेखन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

श्री दिनेश कुमार पटनायक, महानिदेशक, आईसीसीआर, कालिंदी कॉलेज द्वारा दिनांक 3-4 सितंबर 2021 को आयोजित आईसीसीआर समर्थित सम्मेलन विषय: “Revisiting Gandhi an Perspectives on Development: Reflections on Culture Society and Politics” के समापन समारोह को संबोधित करते हुए।

भा.सां.सं.प. द्वारा 15 सितम्बर 2021 को "स्वतंत्र भारत@75: लोकतांत्रिक परंपराएं" (Independent India@75: Democratic Traditions) वर्चुअल माध्यम से आयोजित सम्मेलन में माननीय विदेश मंत्री डॉ. एस. जयशंकर, मुख्य अतिथि संबोधित करते हुए।

"स्वतंत्र भारत@75: लोकतांत्रिक परंपराएं" (Independent India@75: Democratic Traditions) वर्चुअल माध्यम से आयोजित सम्मेलन में माननीय डॉ. विनय सहस्त्रबुद्धे, अध्यक्ष, आईसीसीआर एवं श्री दिनेश कुमार पटनायक, महानिदेशक, आईसीसीआर।

17 सितंबर 2021 को ऑनलाइन आईडीवाई प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता पुरस्कार समारोह के दौरान सुवा के उच्चायुक्त श्री पी. एस कार्थिगेयन समारोह को संबोधित करते हुए तथा श्री संतोष मिश्रा, निदेशक (एस.वी.सी.सी) स्वागत भाषण देते हुए।

17 सितंबर 2021 को ऑनलाइन आईडीवाई प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता पुरस्कार समारोह के दौरान एसवीसीसी के छात्रों द्वारा प्रस्तुति।

02 अक्तूबर 2021 को गांधी जयंती के दौरान उपस्थित उच्चायुक्त श्री पी.एस कार्थिगेयन, महामहिम प्रेमिला कुमार तथा श्री संतोष मिश्रा, निदेशक (एस.वी.सी.सी) व अन्यज अतिथिगण।

माननीय विदेश मंत्री डॉ. एस. जयशंकर द्वारा 15 सितंबर, 2021 को मध्य अमेरिकी देशों के द्विशताब्दी वर्षगांठ समारोह के अवसर पर उद्घाटन भाषण

क्षेत्रीय कार्यालय पटना द्वारा "कला विश्व अभियान" क्षितिज शृंखला कार्यक्रम के तहत दिनांक 15.09.2021 को "श्रीमती अतासी मित्रा " द्वारा " सुगम संगीत" की प्रस्तुति।

श्री दिनेश कुमार पटनायक, महानिदेशक तथा मुख्य अतिथि द्वारा 13 अक्टूबर 2021 को कमानी ऑडिटोरियम में "राजकुमारी श्रीरत्ना की कहानी" के संगीतमय प्रस्तुतीकरण के अवसर पर शुभ दीप प्रज्वलन।

क्षेत्रीय कार्यालय पटना द्वारा "कला विश्व अभियान" क्षितिज शृंखला कार्यक्रम के तहत दिनांक 22.09.2021 को "श्री नीलांजन मित्रा " द्वारा " सुगम संगीत" की प्रस्तुति।

दिनांक 14 सितंबर 2021 को हिंदी दिवस के अवसर पर परिषद के सभी अधिकारी एवं कर्मचारी परिषद के सम्मेलन कक्ष में राजभाषा शपथ लेते हुए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....

.....

.....

.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....

.....

.....

.....

विवरण	शुल्क			प्रतियों की सं.	रुपये/US$
गगनांचल वर्ष	एक वर्ष	₹	500 (भारत)		
		US$	100 (विदेश)		
	तीन वर्षीय	₹	1200 (भारत)		
		US$	250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय		10%		
	पुस्तक विक्रेता		25%		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक .....

रु./US$ ..... बैंक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ :
कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं. 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....

नाम .....

पद .....

दिनांक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 43 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ-साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश-विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य, विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों और दार्शनिकों जैसे महात्मा गाँधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएँ परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन-योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य और नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिलकर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

अध्यक्ष	:	23378616, 23370698
महानिदेशक	:	23378103, 23370471
उप-महानिदेशक (प्रशासन)	:	23370784, 23379315
उप-महानिदेशक (संस्कृति)	:	23379249, 23370794
हिंदी अनुभाग	:	23370237, 23379309-10 एक्स. 2268/2272

गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रकाशन

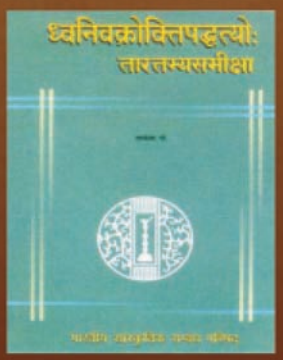

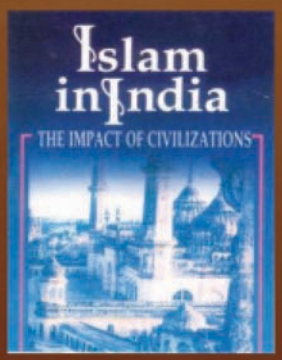

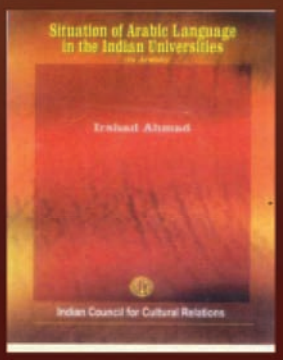

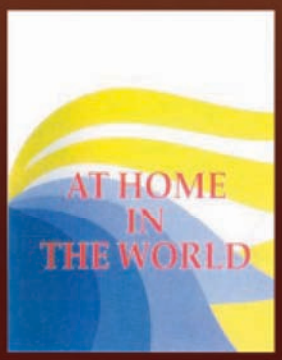

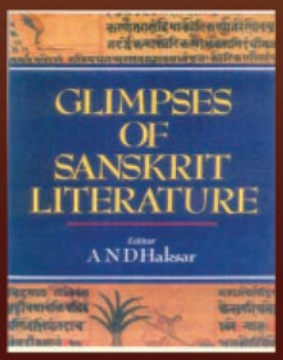

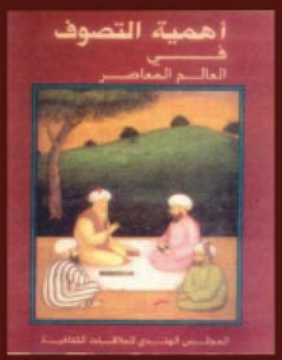

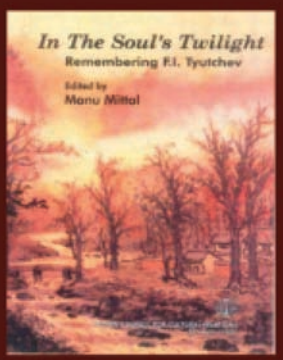

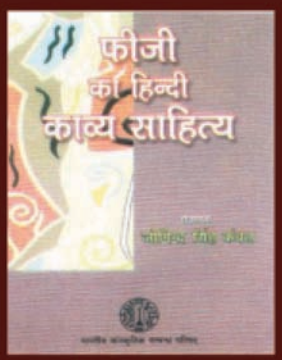

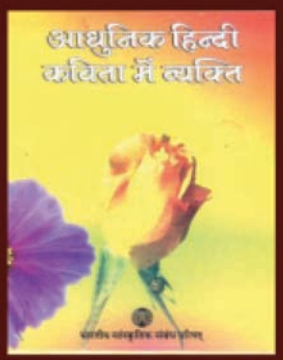

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
फोन : 91-11-23379309, 23379310
ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट : www.iccr.gov.in

आवरण परिकल्पना : ममता गोयनका